भारतीय विपणन में सरकार की भूमिका का मूल्यांकन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि-हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

शोधकर्ता

हरिश्चन्द्र मालवीय

निर्देशक

डॉ० जी० सी० अग्रवाल

एम० कॉम०, एल० एल० बी०, डी० फिल्०, जी० आईकेम (स्टेनफोर्ड)
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

वाणिज्य तथा व्यवसाय प्रशासन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१९८९

प्राक्कथन

वर्तमान समय में हमारे देश की सरकार ने लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना एवं समाजवादी समाज की संरचना के पुनीत संकल्प का व्रत लिया है । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सरकार ने व्यवसायिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप के औचित्य को भी आत्मसात किया । हमारी सरकार आर्थिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने हेतु जिन नीतियों का अनुसरण करती है वे भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त है । बदलते आर्थिक परिवेश में विपणन की महत्ता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । सरकार ने विपणन की क्रियाओं में अनेक रूपों से हस्तक्षेप किया है । सरकार विपणन क्षेत्र में हस्तक्षेप करते समय सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों एवं उपभोक्ता संरक्षण से प्रेरित और मार्गदर्शित होती है । आज के विपणन युग में "उपभोक्ता" या "जन-समुदाय" के हितों की रक्षा सरकार के लिये सर्वोपरि स्थान रखती है । उपभोक्ता के हितों की रक्षा व उन्हें उचित मूल्य पर उचित वस्तुयें उपलब्ध कराने से न केवल उपभोक्ताओं का बल्कि देश का भी आर्थिक विकास संभव हो सकेगा । इस हेतु सरकार विपणन में अपनी भूमिका दो रूपों में निभाती है, स्वयं विपणन क्रियाओं को संपादित करके तथा विभिन्न अधिनियमों द्वारा ।

प्रस्तुत शोधकार्य विपणन में सरकार की भूमिका को मूल्यांकित करने के उद्देश्य से किया गया है । इसके द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया गया

है कि विपणन में सरकार की भूमिका क्या रही है और किस सीमा तक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है । और सरकार की भूमिका को किस प्रकार प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है ।

शोध अध्ययन पाँच सर्गों में विभाजित किया गया है । प्रथम सर्ग में विपणन की अवधारणा, आधुनिक विपणन विचार, विपणन में राजकीय हस्तक्षेप का औचित्य तथा भारत में विपणन सरकार के सम्बन्ध का ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में अध्ययन किया गया है । द्वितीय सर्ग में विपणन में राजकीय हस्तक्षेपों के स्वरूपों का अध्ययन विश्लेषणात्मक रूप में किया गया है । इस सर्ग के दो उपसर्गों में राज्य द्वारा विपणन क्रियाओं में भाग लेने का विशद् अध्ययन एवं विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से विपणन में राजकीय नियंत्रण को परिभाषित किया गया है । तृतीय सर्ग में सरकार एवं सहकारिता का विवेचन करते हुए सहकारी विपणन तथा उपभोक्ता सहकारिता के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया गया है । समाज के सभी वर्गों विशेषकर कमजोर वर्गों को उनकी आवश्यकतानुसार आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराने हेतु सरकार के एक महत्वपूर्ण यन्त्र सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्याख्या एवं विश्लेषण चतुर्थ सर्ग में किया गया है । सभी सर्गों के विवेचन एवं विश्लेषण के उपरान्त समस्याएं एवं उसके निराकरण हेतु किये गये सुझावों का प्रस्तुतीकरण पंचम सर्ग में है ।

प्रस्तुत शोध पूज्यनीय गुरूवर डा॰ जी॰सी॰ अग्रवाल प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसाय प्रशासन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के सफल निर्देशन एवं सहयोग से किया गया है । मैं अपने गुरूवर का हार्दिक कृतज्ञ हूं, जिनकी प्रेरणा, सहयोग एवं शुभाशीर्वाद से ही यह शोध कार्य संभव हो सका ।

मैं अपने पूज्यनीय पिताश्री श्री विजय नारायण मालवीय एवं माता श्रीमती श्याम मनी मालवीया के प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूं, जिनसे मुझे प्रेरणा एवं मार्गदर्शन का स्त्रोत मिला । मैं श्रद्धेया श्रीमती प्रेमलता अग्रवाल, श्रीमती उमा मालवीया एवं श्रीमती तारा देवी के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूं, जिनकी स्नेहाशीष एवं प्रेरणा से यह शोध कार्य संभव हुआ । मैं श्री मधुकलष, श्री राजेश अग्रवाल, श्री प्रदीप अग्रवाल, डा॰ वी॰एम॰ बैजल, श्री राजेश मालवीय, श्री राजकुमार मालवीय, श्री अजयकुमार मालवीय, श्री श्रीराम पुरवार, श्री ओम प्रकाश पुरवार, डा॰ (श्रीमती) रेशमा अग्रवाल, डा॰ (श्रीमती) नीला अग्रवाल, श्रीमती शशी मालवीया, श्रीमती शशी बैजल, एवं श्रीमती रेनू मालवीया का भी आभारी हूं जिनसे मैं बराबर प्रेरित होता रहा । डा॰ अन्जनी कुमार मालवीय के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं, जिन्होंने समय-समय पर बौद्धिक मार्ग निर्देशन प्रदान किया । हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री डा॰ प्रभात शास्त्री का भी मैं आभारी हूं जिनकी प्रेरणा एवं सहयोग से यह कार्य पूरा हो सका ।

मैं अपने मित्रों श्री विनोद कुमार वैश्य, श्री आनन्द अग्रवाल, श्री राकेश जैन, श्री सुनील गोयल एवं अपने अनुज श्री गणेश प्रसाद मालवीय, श्री संतोष मालवीय एवं श्री निमिष अग्रवाल को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूं । जिन्होंने इसमें सहयोग प्रदान किया ।

इस कार्य में श्री नरेन्द्र अग्रवाल का सहयोग भी प्रशंसनीय है, जिन्होंने निर्धारित समय में टंकण कार्य सम्पादित किया ।

एक बार पुनः मैं अपने श्रद्धेय गुरूवर डा॰ जी॰सी॰ अग्रवाल के चरणों में श्रद्धा के सुमन अर्पित कर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं जिनकी विराट अनुकम्पा एवं प्रेरणा से यह शोध कार्य अल्प समय में पूर्ण हो सका ।

इलाहाबाद, 1989 {हरिश्चन्द्र मालवीय}

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

तालिका सूची

प्रथम सर्ग

भारतीय विपणन में सरकार की भूमिका

प्रथम सर्ग

भारतीय विपणन में सरकार की भूमिका

आधुनिक परिवेश में संसार के लगभग सभी देश किसी न किसी रूप में या तो स्वयं विपणन अथवा व्यवसायिक क्रियाएं कर रहे हैं या सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये विपणन क्रियाओं पर विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से नियंत्रण कर रहे हैं । लोकतांत्रिक समाजवादी सरकार की स्थापना विश्व के अधिकांश भागों में हो रही है । सरकार एक संस्था है जिसके पीछे जन अनुज्ञा, जन समर्थन एवं जन शक्ति होती है । इस संस्था का कार्य अपने सदस्य नागरिकों के हितों की रक्षा करना एवं उसका बहुमुखी विकास करना होता है । इस पवित्र एवं महानतम उद्देश्य व दायित्व की पूर्ति के लिये राज्य को प्रत्येक वह कार्य करने का अधिकार होता है जो कि जनहितों की परि-धि में आता है । इन दायित्वों की पूर्ति के लिये सरकार व्यवसाय एवं विपणन की स्थापना, संचालन, विकास तथा विस्तार से सहयोग करतीहै।

---

1. शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन, आगरा पृष्ठ 432

एवं अवांछित क्रियाओं का नियमन एवं नियंत्रण करती है । इस दृष्टि से आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य सा होता जा रहा है । यह अवश्य है कि सरकारी हस्तक्षेप एवं नियंत्रण की दिशाएं तथा तौर-तरीके बदलते रह सकते हैं । कारण कि प्रत्येक पीढ़ी अपनी समस्याओं को अपनी दृष्टि से देखती है । इस प्रकार सरकार देश में राजनीतिक एवं आर्थिक संस्कृति का पोषण करती है और साथ ही अपने नागरिकों के बहुमुखी व्यक्तित्व के विकास हेतु आर्थिक क्षेत्र का नियमन एवं नियंत्रण करती है । प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार चाहे वह समाजवादी हो, या पूंजीवादी अथवा साम्यावादीहो, राष्ट्रीय हित के लिये व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओं पर नियंत्रण कामोपेशी रूप में करती है । इस हस्तक्षेप से विश्व के हर राष्ट्र में एक नया आर्थिक दर्शन विकसित हो रहा है जो सरकारी क्षेत्र को अपरिहार्य बनाता जा रहा है और सभी सम्बद्ध पक्षों के समक्ष व्यवसाय एवं विपणन सम्बन्धों की स्थापना की चुनौती भी प्रस्तुत करता जा रहा है । आज सरकार एक प्रमुख सेवायोजक के रूप में सामने आ रही है इस लिए व्यवसाय व विपणन तक सरकार सम्बन्धों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है ।

---

2. बजाज एवं पोरवार, सरकार, समाज एवं व्यवसाय रिसर्च पब्लिकेशन इन सोसल साइंस, पृष्ठ 132

समाज के भौतिक प्रौद्योगिक और सांस्कृतिक आधारों में परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक अवस्थाओं में भी परिवर्तन आया । विश्व बाजार का विकास, विस्तृत प्रौद्योगिकी परिवर्तन, विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में होने वाला वृद्धित औद्योगीकरण, तथा नये उत्पादों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप विपणन प्रक्रिया में सरकारी हस्तक्षेप नितांत आवश्यक है । प्रत्येक उपभोक्ता स्वभाव से उचित मूल्यों पर अच्छी से अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है । किन्तु आधुनिक विषम प्रतिस्पर्धा, जमाखोरी, एवं काला बाजारी तथा अनियमित पूर्ति के परिणामस्वरूप होने वाली मूल्यवृद्धि उपभोक्ता वर्ग को झकझोर देती है । इस प्रकार वितरण व्यवस्था में लगे निजी-विक्रेता स्थिति का दुरूपयोग कर उपभोक्ताओं का अधिकतम शोषण करने लगते है । कल्याणकारी राज्य में सुरक्षा व न्याय दिलाने के साथ ही साथ आवश्यक वस्तुयें उचित व्यवस्था द्वारा जन साधारण को सुलभ कराना सरकार का दायित्व है ।

विपणन की अवधारणा

विपणन स्वयं में एक आर्थिक संस्कृति है जो सामाजिक संस्था के रूप में समाज में उसके आर्थिक मूल्यों का विकास करने और समाज को उच्च जीवन स्तर प्रदान करना, समृद्धि एवं खुशहाली प्रदान करना और सार्वजनिक कल्याण में सहयोग करना, विपणन जैसी संस्था के लक्ष्य माने गये है । विपणन वर्तमान में निजी और सरकार के स्वामित्व के आधीन अपनी क्रियाओं का संगठन एवं संचालन करती है ।

इसका कार्य क्षेत्र एवं कार्यों का प्रभाव दिनों दिनअभिवृद्धित होता जाता है। विपणन की नीतियां तकनीकें और क्लेवर भी राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप तेजी से बदल रहे हैं। आधुनिक यांत्रिकी जगत में विपणन की प्रक्रिया अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत हो गयी है। विपणन प्रक्रिया में विभिन्न पक्षों का अलग-2 हित होता है समाज के बदलते परिवेश में विभिन्न पक्षों के हितों को सुरक्षित रखने विशेषकर समाज के कमजोर एवं निर्धन व्यक्तियों को उनकी आवश्यकता के अनुसार वस्तुएं उपलब्ध कराने उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सन्तुष्टि प्रदान करने के उद्देश्य से आज विभिन्न देशों में सरकार द्वारा विपणन प्रक्रिया में भाग लिया जा रहा है।

विपणन का प्रयोग कई अर्थों में किया जाने लगा है। बदलते परिवेश में विपणन का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत होने के कारण विपणन की एक सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। यह निर्विवाद है कि वैदिक एवं पौराणिक युग में भी विपणन की क्रियाओं के स्पष्ट प्रमाण दर्शित होते है। सुर एवं असुर द्वारा समुद्र मंथन और उसमें निकली दुर्लभ वस्तुओं का वितरण वास्तव में विपणन की क्रिया कही जा सकती है। यद्यपि विपणन के स्वरूप में अन्तर होना स्वाभाविक हो सकता है। प्रारम्भ में औद्योगिक समाज में विपणन उत्पादन अभिमुखी था। विपणन की आवश्यकता केवल उत्पादन क्षमता के वितरण के लिये होती थी। ग्राहक के सम्बन्ध में निर्माता अनुमान लगा लिया करता था। ग्राहक की विशिष्ट आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के

लिये कोई प्रयास भी किया जाता था । इसका मुख्य कारण उत्पादन क्षमता की तुलना में ग्राहकों की माँग का अधिक होना था । इस प्रकार प्रारम्भ में विक्रेता बाजार की स्थिति थी जहाँ पूर्ति की तुलना में माँग अधिक थी । ग्राहक वस्तुओं की प्रतीक्षा किया करते थे वस्तु के विक्रय की कोई समस्या उस समय नहीं थी । उत्पादन अभिमुखी प्रबन्ध में सामाजिक दायित्वों के प्रति पूर्वतः उदासीनता थी । व्यवसाय का प्राथमिक उद्देश्य लाभ कमाना था । सेवा अथवा सामाजिक दायित्वों का कोई स्थान नही था । व्यवसाय में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया द्वारा अधिकाधिक लाभ कमाने का प्रयास किया जाता था ।

परन्तु जब ग्राहकों की माँग और उत्पादन क्षमता में साम्य स्थापित हुआ तो प्रबन्धकों को अपने विपणन दर्शन पर पुर्नविचार के लिये बाध्य होना पड़ा उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ प्रतिस्पर्धा में भी वृद्धि हुयी । प्रभावशाली विक्रय शक्ति के अभाव में इस बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के समय में उत्पादित माल का विक्रय करने में कठिनाई अनुभव की जाने लगी । विक्रय शक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिये प्रबन्ध में विज्ञापन, विक्रय संवर्धन, विपणन अनुसंधान, विक्रय प्रशिक्षण आदि का सहारा लिया । इतना होते हुए भी अभी तक उत्पादन अभिमुखी प्रबन्ध की प्रचलन था । यद्यपि ग्राहक के महत्त्व को महसूस किया गया, परन्तु यह केवल संयुक्त उत्पादन के विक्रय के साधन के रूप में ही था । उत्पादन अभिमुखी प्रबन्ध में भिन्नता करने के लिये इसे विक्रय अभिमुखी प्रबन्ध की संज्ञा दी जा सकती है ।

प्रतिस्पर्धा में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप विक्रय अभिमुखी प्रबन्ध वाली कठिनाइयों के सम्मुख कठिनाइयां बढ़ी । उपभोक्ता मांग में तेजी से परिवर्तन के कारण संगठन लगातार समस्या ग्रस्त रहने लगा । इन कठिनाइयों का विश्लेषण यह बतलाता है कि ये कम्पनियां ऐसे उत्पादों के विक्रय का प्रयास कर रही थीं जो कि पहले काफी लोकप्रिय थे, परन्तु इन्होंने स्वयं को बदलते हुए उपभोक्ताओं के अनुरूप बनाने का प्रयास नहीं किया । अब उन्होंने अनुभव किया कि बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिये ग्राहकों के महत्त्व को स्वीकार करना होगा । जब ग्राहक के महत्त्व को समझा गया तो ग्राहक अभिमुखी नवीकृति विपणन दर्शन बन गया । वास्तव में देखा जाय तो इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यवसाय का सम्पूर्ण प्रबन्ध दर्शन ही बदल गया ।

औद्योगिक समाज में बदलते हुए व्यवसायिक अभिमुखीकरण

विपणन के अन्तर्गत औद्योगिक समाज में समान्यतया चार अभिमुखीकरण दर्शित होते हैं ।

1- उत्पादन अभिमुखीकरण :- इस स्थिति में वस्तुओं और सेवाओं का अभाव था । अतः मुख्य समस्या उत्पादन वृद्धि की थी, न कि विक्रय की ।

2- वित्तीय अभिमुखीकरण :- इस स्थिति में व्यवसायिक ईकाइयों ने अनुभव किया कि लाभों के लिये मुख्य अवसर विलय एवं वित्तीय एकीकरण द्वारा औद्योगिक ढांचें को विवेकपूर्ण बनाने पर निर्भर है ।

3- विक्रय अभिमुखीकरण :- इस स्थिति में वस्तुओं के अभाव के स्थान पर ग्राहकों का अभाव महसूस किया गया । विज्ञापन एवं बाजारों में वृद्धि हुई, विक्रय शक्ति का विस्तार किया गया, ब्राण्डिंग, पैकेजिंग एवं विक्रय संवर्धन महत्वपूर्ण औजार बन गये और विपणन अनुसंधान का प्रयोग किया जाने लगा, जिससे उपभोक्ता आवश्यकताओं को प्रेरित करने और बाजारों की खोज के नये तरीकों का पता लगाया जा सके ।

4- विपणन अभिमुखीकरण :- तीव्र प्राविधिक और सामाजिक परिवर्तन गहन प्रतिस्पर्धा और उच्च संतुष्टि उपभोक्ता आवश्यकताओं के समय में विक्रय अभिमुखीकरण के आधार पर व्यवसाय को लाभ पर नहीं चलाया जा सकता, अतः व्यवसायिक ईकाइयों का झुकाव अब विपणन अभिमुखीकरण की ओर है । यह उल्लेखनीय है कि विपणन अभिमुखीकरण अनेक रूपों में विक्रय अभिमुखीकरण से भिन्न है । विक्रय विचार फर्म के विद्यमान उत्पादों से प्रारम्भ होता है और इसके अन्तर्गत लाभप्रद विक्रय परिमाण को प्रोत्साहित करने के लिये विक्रय और क्रयर्तन का कार्य किया जाता है । इसके विपरीत विपणन विचार फर्म के विद्यमान और भावी ग्राहकों एवं उनकी आवश्यकताओं से प्रारम्भ होता है । जिसके अन्तर्गत इन आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु उत्पादों और कार्यक्रमों में समन्वित किया जाता है और आशा की जाती है कि सार्थक मूल्य संतुष्टि उत्पन्न करके फर्म लाभ कमायेगी । 3

3- फिलिप कोटलर - "मार्केटिंग मैनेजमेंण्ट" प्रेन्टिस हाल आफ इण्डिया नई दिल्ली पृष्ठ 15

आधुनिक विपणन विचार के आधार स्तम्भ

विपणन बेत्ताओं और विद्वानों ने आधुनिक विपणन विचार को सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में वर्णित किया है ।

- ﴾क﴿ ग्राहक अभिमुखीकरण एवं संतुष्टि
- ﴾ख﴿ सुग्रथित विपणन
- ﴾ग﴿ सामाजिक कल्याण

﴾क﴿ ग्राहक अभिमुखीकरण :- ग्राहक आधुनिक विपणन का आधार स्तम्भ है । विपणन की सम्पूर्ण क्रियाएं आज ग्राहकों के कल्याणार्थ की जा रही है । ग्राहक को आज विपणन का बादशाह, कहा जाता है । इस प्रकार ग्राहक विपणन में सर्वोपरि है, अतः कम्पनी के ग्राहक की दृष्टि से देखना चाहिए । ऐसी वस्तु जिसे आसानी से बनाया जा सके, का विपणन करने के बजाय हमें यह ज्ञात करना चाहिए कि ग्राहक क्या चीज खरीदने की इच्छा रखता है । हमें अपना ध्यान उत्पाद की ओर आवश्यकताएं भी सम्मिलित है जिनका ग्राहक का ज्ञान नही है । ग्राहक अभिमुखीकरण का प्रयोग करने वाली कम्पनियां इस विचार को अनेक रूपों में प्रकट करती है । यह निर्विवाद है कि विपणन की प्रत्येक क्रियाएं ग्राहकों के लिये की जाती है । अर्थात विपणन विचार का आधार स्तम्भ ग्राहक है, जिसके चारो ओर व्यवसायिक क्रियाएं चक्कर काटती है । इसके अन्तर्गत ग्राहक को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है । अतः ग्राहक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही व्यवसाय की नीति और कार्यक्रम बनाये जाते

है । सरल शब्दों में हम कह सकते है कि व्यवसायी द्वारा उसी वस्तु का उत्पादन एवं वितरण किया जाता है जो ग्राहक चाहता है । वस्तु का रंग डिजाइन, किस्म, आकार आदि भी ग्राहक की आवश्यकताओं के अनुरूप होता है । ग्राहकों की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप वह उत्पाद या वस्तु में भी परिवर्तन करता रहता है, जिससे परिवर्तित ग्राहक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके ।

ग्राहक अभिमुखीकरण के क्रियान्वयन हेतु उठाये जाने वाले कदम

ग्राहक अभिमुखीकरण के क्रियान्वयन में एक फर्म को निम्नांकित कदम उठाने चाहिए -

1- एक सामान्य आवश्यकता की परिभाषा :- एक फर्म के लिये सबसे पहली आवश्यकता उन आधार भूत आवश्यकताओं की एक आधार परिभाषा को अपनाना है जिसे वह पूरा करना चाहती है या संतुष्टि करना चाहती है । उदाहरण के लिए साबुन बनाने वाली कम्पनी को यह अनुभव करना चाहिये कि वह आधारभूत रूप से सफाई समस्याओं के समाधान के लिये प्रयत्नशील है, वातानुकूल यंत्र का उत्पादन करने वाली कम्पनी आराम व्यवसाय में लगी हुई है । इसी प्रकार टेलीफोन एवं टेलीग्राफ का काम करने वाली कम्पनी वास्तव में संन्देशवादन की आवश्यकताओं की संतुष्टि में लगी हुई है ।

2- लक्ष्य समूहों की परिभाषा :- एक कम्पनी द्वारा सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव नहीं है । अत: कुछ बाजारों का चुनाव करके भी उसे अपनी क्रियाओं का विस्तार करना होता है । एक निर्माता को प्रत्येक बाजार में अनेक बाजार खण्डों की विद्यमानता स्वीकार करना पड़ता है । कम्पनी के सीमित साधनों के कारण उन्हें उन बाजार समूहों और यहां तक की उनकी आवश्यकताओं का चुनाव करना पड़ता है, जिन्हें वह पूरा करना चाहती है । जैसे कपड़ा बनाने वाली कम्पनी को यह निर्णय लेना होता है कि वह बच्चों के लिये कपड़ा बनायेगी या युवकों अथवा वृद्धों के लिये । युवक में उसे लड़के और लड़कियों के समूह को अलग-2 करना पड़ेगा यदि वह युवकों के लिए कपड़ा बनाने का निर्णय लेती है ।

3- विभिन्न उत्पाद और सन्देश :- आधुनिक विपणन विचार उत्पाद विभिन्नीकरण के सिद्धान्त को मान्यता देता है । हम जानते है कि उपभोक्ता अनेक प्रकार के होते है । इन सभी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वस्तु के आकार रंग डिजाइन आदि में परिवर्तन कर दिये जाते है । वैसे उत्पाद मूल रूप से एक ही रहता है ।

4- उपभोक्ता अनुसंधान :- ग्राहक अभिमुखीकरण के लिये यह आवश्यक है कि उपभोक्ताओं की बदलती हुई आवश्यकताओं पर निगाह रखी जाये । उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में परिवर्तनों और नवीन आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए उपभोक्ता अनुसंधान की सहायता ली जानी चाहिए ।[4]

4- फिलिप कोटलर, मार्केटिंग मैनेजमेण्ट, प्रेन्टिस हाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली पृष्ठ 19

ग्राहक अभिमुखीकरण की विचारधारा से लाभ

ग्राहक अभिमुखी विचारधारा के निम्नांकित लाभ हैं -

1- ग्राहकों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने से नवीन उत्पादन सम्भावनाओं का पता लगाने में सहायता मिलती है । ग्राहक आवश्यकताओं को मान्यता देने का उदाहरण स्टेण्डर्स मोटर्स आफ मद्रास का है जिसने दो दरवाजे वाली कार की मॉडल के बजाय चार दरवाजे वाली कार का मॉडल तैयार किया ।

2- जब ग्राहकों द्वारा उत्पाद मूल्य को मान्यता दी जाती है तो उत्पाद अधिक प्रभावशाली बन जाता है ।

3- कम्पनी को यह ज्ञात हो जाता है कि विशिष्ट उत्पादों की बजाय ग्राहक की आवश्यकताएं अधिक महत्त्वपूर्ण है । दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि ग्राहक एक विशिष्ट उत्पाद में रूचि नही रखता है वह तो अपनी आवश्यकता संतुष्टि को प्राथमिकता देता है । अतः यदि एक आवश्यकता को पूरा करने के लिए उसे कोई नवीन या उन्नत उत्पाद उपलब्ध हो जाये तो वह पुराने लोक प्रिय उत्पाद के स्थान पर नवीन उत्पाद का प्रयोग प्रारम्भ कर देता है ।

4- समाज के हितों और संस्था के हितों में अधिक समानता आ जाती है । ग्राहक अभिमुखीकरण का प्रयोग करने वाली कंम्पनी का उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करने वाले उत्पादों की खोज करके उन्हें लाभ पर बेचना होता है ।

(ख) सुग्रथित विपणन

आधुनिक विपणन विचार का द्वितीय आधार स्तम्भ सुग्रथित विपणन या समन्वित विपणन है । यह निर्विवाद है कि "कम्पनी का उद्देश्य ग्राहक उत्पन्न करना है । "परन्तु वे विपणन विचार के क्रियान्वयन में आवश्यक संगठनात्मक कदमों को उठाने में असफल रहती है ।[5]

सुग्रथित या समन्वित विपणन का अर्थ है कि व्यवसाय के विभिन्न विभाग मिलकर कार्य करे । पुरानी विचारधारा के अनुसार व्यवसाय के विभिन्न विभाग जैसे उत्पादन, वित्त, विक्रय, सेविवर्गीय आदि अपने अपने कार्यों को करने के लिये स्वतंन्त्र थे । ये सभी विभाग अलग-अलग समझे जाते थे और इनके प्रबन्ध भी अलग थे । आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत इन सभी विभागों में न केवल समन्वय रखा जाता है बल्कि ये सभी विभाग एक ही व्यक्ति के कुशल नियन्त्रण में रखे जाते हैं, जिसे सामान्यता, विपणन प्रबन्धक, या "मुख्य विपणन कार्यकारी", के नाम से पुकारा जाता है । व्यवसाय के विभिन्न विभागों द्वारा स्वतंत्र रूप से कार्य करने की अपेक्षा जब समन्वित रूप से कार्य किया जाता है तो ग्राहक पर इसका अपेक्षाकृत अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

5- पीटर. एफ. ड्रकर. "दि प्रेक्टिस आफ मैनेजमेण्ट"

पृष्ठ 37

§ग§ सामाजिक कल्याण

ग्राहक संतुष्टि आधुनिक विपणन विचार का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है । व्यवसाय की दीर्घकालीन ख्याति ग्राहक संतुष्टि पर ही निर्भर करती है । वस्तु से संतुष्टि मिलने पर ही ग्राहक उसे बार बार खरीदने के लिये प्रेरित होता है । आज अनेक कम्पनियों ने अपना प्रमुख लक्ष्य ग्राहक संतुष्टि ही बना लिया है । आधुनिक समय में ग्राहक ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारो ओर समस्त व्यवसायिक क्रियाएं चक्कर लगाती है । विपणन का दायित्व न केवल उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पता लगाना है अपितु अपनी संतुष्टि का दायित्व भी विपणन पर है । ग्राहकों की रुचियों, रहन-सहन के तरीकों, अब स्तरों आदि में परिवर्तनों के साथ समायोजन करके ही विपणनकर्ता इस दायित्व का निर्वाह कर सकते हैं । जैसा कि स्पष्ट है कि आधुनिक समय में उपभोक्ता के सम्राट की संज्ञा दी जाती है । यहां यह उल्लेखनीय है कि ग्राहक संतुष्टि का अर्थ लाभार्जन का सर्वथा त्याग करना नहीं होता । बल्कि इसका वास्तविक अर्थ यही है कि ग्राहक को उसकी इच्छानुसार वस्तु प्रदान करके लाभ कमाया जाय । दूसरे शब्दों में आधुनिक विपणन विचार ग्राहक संतुष्टि करते हुए लाभ कमाने पर जोर देता है ।

इन तीन स्तम्भों के अतिरिक्त उपभोक्ता कल्याण आधुनिक विपणन विचारधारा का नवीनतम स्तम्भ है । इसके अनुसार केवल ग्राहक की संतुष्टि ही पर्याप्त नही है अपितु अन्ततः उपभोक्ता के कल्याण का भी ध्यान रखा

रखा जाना चाहिये ताकि सामाजिक कल्याण हो सके । इसका कारण यह है कि आधुनिक युग में विपणन को समाज-कल्याण से पृथक रखना संभव नहीं है । इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए आज विभिन्न देशों की सरकारें विपणन प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर रही हैं ताकि अधिक से अधिक उपभोक्ता कल्याण में वृद्धि की जा सके । अतः यह आवश्यक है कि आज के विपणन युग में उपभोक्ता के कल्याण को दृष्टिगत रखते हुये ही विपणन-क्रियाओं को संचालित किया जाय ।

इस प्रकार आधुनिक विपणन विचारधारा के अन्तर्गत समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन करके उत्पादन को उपभोग के प्रति समर्पित करना है जिससे जन कल्याण में वृद्धि करने के साथ-साथ रहन-सहन के स्तर में भी वृद्धि की जा सके, तथा उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक संतुष्टि प्रदान करके उनसे लाभ अर्जित किया जा सके ।[6]

विपणन के सामाजिक दायित्व

वर्तमान में विपणन के सामाजिक दायित्वों की विचारधारा काफी बलवती होती जा रही है । एक समय था जब विपणन का कार्य केवल उत्पादन

6- शर्मा एवं जैन - बाजार व्यवस्था - साहित्य भवन, आगरा पृष्ठ 5

एवं वितरण करना ही था अर्थात् विपणन केवल लाभार्जन की दृष्टि से किया जाता था, किन्तु बदलते हुए मानवीय मूल्यों, बदलती हुई जीवन दृष्टियों, प्रजातांत्रिक भावनाओं, समता की इच्छाओं, आधुनिक शिक्षा प्रणालियों, स्वतंत्र चिन्तन धाराओं, समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं तथा कल्याणकारी सरकारी नीतियों ने विपणन जगत में एक नयी विचारधारा को विकसित किया जिसे विपणन के सामाजिक दायित्वों की विचारधारा के नाम से जाना जाता है । यह विचारधारा इस पृष्ट भूमि पर आधारित है कि प्रत्येक कार्य समाज में रहकर, समाज के साधनों से, समाज के लिये किया जाता है । इस लिए यह आवश्यक है कि "विपणन सामाजिक नियमों, मानकों एवं हितों को ध्यान में रखते हुए किया जाय । "समाज की विपणन से ये अपेक्षाएं ही उसके दायित्व माने गये है । इन सामाजिक दायित्वों की विचारधारा पर प्रत्येक विकसित एवं विकासमान राष्ट्र चिन्तन करने लगा है । विकसित एवं विकासमान राष्ट्रों में अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि विपणन एवं उसके सामाजिक दायित्व पृथक-पृथक नही है बल्कि वे परस्पर मिलकर सामाजिक दायित्व" बन गये है ।

विपणन के सामाजिक दायित्व से आशय

विपणन के दो पहलू हैं – वैयक्तिक एवं सामाजिक वैयक्तिक पहलू लाभार्जन के प्रेरणात्मक तत्व से सम्बन्ध रखता है और विपणन के विकास संरक्षण तथा कुशल संचालन पर बल देता है । सामाजिक पहलू विपणन के उन

दायित्वों से सम्बन्ध रखता है जो विपणन को समाज के प्रति सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पूरे करने होते है । इन दोनों पहलुओं को परस्पर सम्बन्धित करने वाले दायित्व, विपणन के सामाजिक दायित्वों के नाम से जाने जाते हैं ।

वस्तुत: विपणन स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं है, अपितु एक साधन है । मनुष्य एवं समाज की खुशी, स्वतंत्रता, मैत्रिकता, भौतिक, मानसिक, एवं अध्यात्मिक विकास और उच्च जीवन स्तर ही विपणन के उद्देश्य है । इन उद्देश्यों की पूर्ति करना ही विपणन एवं व्यवसाय का सामाजिक दायित्व है विद्वानों ने विपणन एवं व्यवसाय के सामाजिक दायित्वां को भिन्न-भिन्न रूपों से समझाने का प्रयास किया है ।

"विपणन एवं व्यवसाय के सामाजिक दायित्व का अर्थ ग्राहकों, कर्मचारियों अंशधारियों एवं समुदाय के प्रति दायित्वों से है । इस प्रकार विपणन के सामाजिक दायित्व में स्वयं के प्रति, अपने पूर्तिकर्ताओं के प्रति, अपने प्रतियोगियों के प्रति अपने समुदाय के प्रति, तथा अपने राष्ट्र के प्रति व्यवसाय के उत्तरदायित्वों से है ।"[7]

---

7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय, विपणन गोष्ठी, दिल्ली 1975

विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों की विशेषताएं

विपणन उत्तरदायित्वों की कुछ मूल विशेषताएं निम्नलिखित है -

1- विपणन के सामाजिक दायित्व द्विमार्गीय है तथा पारस्परिक सद्-विश्वास एवं नैतिकता पर आधारित है । इन दायित्वों को द्विमार्गीय इस लिये कहा जाता है क्योंकि जहाँ विपणन से उसके स्वामी, ग्राहक, कर्मचारी, सरकार, समाज आदि अनेक आशाएं रखते है, वहाँ विपणन भी इन वर्गों से कुछ आशाएं रखता है । जब तक पारस्परिक सहयोग न हो तब तक विपण्न के उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।

2- ये उत्तरदायित्व नीतिशास्त्र के क्षेत्र अर्थात विपणन के नैतिक मानको से जुड़े हुए है ।

3- ये उत्तरदायित्व अपने अर्थ, क्षेत्र एवं परिमाण में जड़ नही है, लोचपूर्ण हैं और परिवर्तनशील हैं । कारण कि विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों की यह विचारधारा स्वभाव से नैतिक तथा सांस्कृतिक है ।[8]

और नैतिक तथा सांस्कृतिक मानक, विश्वास एवं मूल्य, और दृष्टिकोण के साथ बदलते रहते है परिणाम स्वरूप विपणन एवं व्यवसाय के सामाजिक उत्तर दायित्वों भी हर युग की संस्कृति, सभ्यता जीवन शैली एवं आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहेंगें, वे जड़ नही रह सकेंगें ।

8- इकोनामिक टाइम्स, दिसम्बर 27, 1977, पृष्ठ - 5

4- विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्व विपणन के वैयक्तिक पहलू तथा सामाजिक पहलू को परस्पर सम्बन्धित करते हैं ।

5- ये उत्तरदायित्व विपणन से सम्बन्धित समस्त वर्गों के सर्वहित, सर्वांगीण विकास एवं सर्वोदय की भावनाओं एवं लक्ष्यों पर बल देते हैं । ये दायित्व राष्ट्रपिता के न्यास सिद्धांत की पुष्टि करते है । [9]

6- ये उत्तरदायित्व विपणन को एक सामूहिक एवं सामाजिक संस्था मानते हैं, जिसका संगठन एवं संचालन समाज की महत्वाकांक्षाओं, आशाओं तथा उद्देश्यों को पूरा करने हेतु किया जाता है ।

7- ये उत्तरदायित्व विधिकरण की परिधि से परे होते है ।

विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों का कार्यक्षेत्र

विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है । व्यवसाय एवं विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों को निम्नलिखित वर्गों में वर्णित किया जा सकता है ।

(क) स्वयं के प्रति

9- आर.के.बजाज, सोसल रोल आफ बिजनेस, रिसर्च, पब्लिकेशन इन सोसल साइंस 1970, पृष्ठ 27-32

(ख) स्वामियों के प्रति

(ग) कर्मचारियों के प्रति

(घ) ग्राहकों के प्रति

(ङ) पूर्तिकर्ताओं के प्रति

(च) प्रतियोगियों के प्रति

(छ) राष्ट्र के प्रति तथा

(ज) राष्ट्रों के प्रति

(क) स्वयं के प्रति दायित्व :-

विपणन का प्रथम सामाजिक दायित्व स्वयं के प्रति है । विपणन को चाहिए कि वह लाभदेयता व अधिकतम कुशलता के साथ कार्य संचालन करे ताकि अन्य सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया जा सके । अकार्यक्षम एवं अनार्थिक फर्म राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर अवांछनीय भार होती है । इस लिये विपणन को चाहिए कि वह समाज द्वारा प्रदत्त मानवीय तथा भौतिक साधनों का प्रत्युत्तम उपभोग करे ताकि मानव समाज को सन्तोषप्रद सेवाएं दी जा सके । और विपणन स्वयं अपना संरक्षण, विस्तार एवं विकास कर सके ।

विपणन के स्वयं के प्रति सामाजिक दायित्व निम्न है -

(1) विपणन क्रियाओं का कुशलता एवं लाभदेयता के साथ संचालन करना,

(2) उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों का सदुपयोग करना,

(3) विपणन के संरक्षण, विकास एवं विस्तार के लिए अल्पकालीन तथा

दीर्घकालीन योजनाएं, कार्यक्रम और नीतियाँ निश्चित करना, एंव

§4§ वाँछित बाजारों में प्रवेश करना तथा विपणन की जन प्रतिष्ठ को बढाना ।

§ख§ स्वामियों या विपणनकर्ताओं के प्रति दायित्व

विपणन को चाहिए कि वह अपने स्वामियों एवं विपणनकर्ताओं के प्रति निम्नांकित उत्तरदायित्वों का निर्वाह करें -

§अ§ समुचित प्रत्याय - विपणन की क्रियाओं को करते समय विपणनकर्ताओं अथवा नियोक्ताओं को समुचित प्रत्याय प्राप्त होना चाहिए । यद्यपि यह स्पष्ट करना कि उचित प्रत्याय क्या है स्पष्ट करना अत्यन्त कठिन है क्यों कि प्रत्याय दरें 7% से 30% तक विभिन्न उद्योगों में भिन्न-भिन्न है, फिर भी समुचित प्रत्याय के बारे में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रत्याय की दरे मुद्रा बाजार में प्रचलित व्यय की दरो से ऊंची होनी चाहिए ।

§ब§ सही समय पर सूचना - विपणन का विपणनकर्ताओं अथवा उनके स्वामियों के प्रति एक दायित्व यह है कि वह स्वामियों को विपणन की प्रगति कार्यक्रमों, योजनाओं, आर्थिक स्थिति आदि के बारे में समय-समय पर सभी सूचना उपलब्ध कराता रहे ताकि उनको विनियोगों की सुरक्षा का विश्वास बना रहे तथा आत्मसंतुष्टि प्राप्त होती रहे ।

§स§ समता का व्यवहार - विपणन का महत्त्वपूर्ण दायित्व यह है कि वह

विभिन्न प्रकार के विनियोगकर्ताओं के मध्य समता, समानता का व्यवहार करें ।

(द) <u>प्रबन्ध स्वतंत्रता</u> - प्रबन्ध स्वतंत्रता भी वर्तमान में विपणन का एक सामाजिक दायित्व उसके स्वामियों के प्रति बनता जा रहा है । यद्यपि राष्ट्रीय एवं सामाजिक हितों को देखते हुए कभी-कभी उसकी इस स्वतंत्रता को तनिक सीमित अथवा प्रतिबन्धित करना आवश्यक होता है ।

(ग) कर्मचारियों के प्रति दायित्व

विपणन के सामाजिक दायित्वों की विचारधारा सेवानियोजकों एवं कर्मचारियों के सम्बन्धों में एक नये परिवर्तनों की उपेक्षा रखती है । संगठन के बहुमुखी विकास के आधारस्वरूप श्रमिक वर्ग के प्रति विपणन को निम्नलिखित दायित्वों का निर्वाह करना होता है :

(क) पर्याप्त एवं आकर्षक मजदूरी तथा वेतन का वितरण करना ।

(ख) रोजगार की सुरक्षा प्रदान करना ।

(ग) कर्मचारियों को न्यायोचित आधार देना ।

(घ) कर्मचारियों को स्वास्थ्यप्रद कार्यदशाएं उपलब्ध कराना ।

(य) कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा एवं ग्राम कल्याण प्रदान करना ।

(र) कर्मचारियों को व्यक्तिगत विकास के अवसर देना ।

(ल) मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना करना ।

(व) कर्मचारियों को प्रबन्ध प्रक्रिया में भागीदार बनाना ।

(घ) ग्राहकों के प्रति दायित्व :-

ग्राहक विपणन का बादशाह कहा जाता है ग्राहकों की संतुष्टि सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं के अनवरत क्रम का परम पुनीत उद्देश्य होता है । इसलिए उपभोक्ता की सन्तोषप्रद सेवा न केवल विपणन अस्तित्व संरक्षण के लिये ही होती है अपितु विपणन का विस्तार और विकास भी ग्राहकों की सन्तोषप्रद सेवा पर आश्रित होता है । इस लिये विपणन को चाहिए कि अपने लिए पूंजी पर उचित एवं पर्याप्त प्रत्याय की उपलब्धि के साथ-साथ ग्राहकों के प्रति न्यायोचित एवं मानवीय भी रहे । ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं के प्रति विपणन के प्रमुख सामाजिक दायित्व निम्न है ।[10]

(क) सभी वर्गों के ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, रुचियों एवं क्रय शक्तियों को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्माण तथा वितरण करना । यह दायित्व विपणन को बाजार विभक्तिकरण एवं उत्पाद विविधकरण की नीतियों को अपनाने पर बल देता है ।

(ख) वस्तुओं एवं सेवाओं की उचित कीमतें निर्धारित करना और उन कीमतों पर वस्तुओं की निरन्तर उपलब्धि को सम्भव बनाना । यह दायित्व विपणन को उचित कीमत नीति एवं पुनर्विक्रय कीमत अनुरक्षण नीति को अपनाने के महत्व को स्पष्ट करता है ।

---

10. बी.एल.पोरवार "व्यवसाय के सामाजिक दायित्व, मार्च 1973, पृष्ठ 149-152

(ग) उत्तम किस्म की वस्तुओं का उत्पादन व वितरण करना और जहाँ तक हो सके अनावश्यक मध्यास्थ श्रृंखला को समाप्त करना । यह दायित्व विपणन को मिलावट न करने एवं सम्भवतः प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा विवरण व विपणन करने की नीति को अपनाने पर बल देता है ।

(घ) उत्पादकों अथवा क्रेताओं अथवा समूहों के पास हो रहे या होने वाले वस्तु संचय एवं केन्द्रीकरण को रोकना और वस्तुओं की पूर्ति को निरंतर बनाए रखना, जिससे उनका कृतिम अभाव उत्पन्न न हो और कीमते न बढ़े ये दायित्व विपणन को नैतिक सिद्धांतों के अनुपालन पर बल देते है ।

(य) वस्तु विक्रय से पूर्व एवं पश्चात् वांछित सेवाएं प्रदान करना । यह दायित्व विपणन को विक्रय उपरान्त सेवा नीति को अपनाने पर बल देता है ।

(र) वस्तु प्रचार के साधनों का पूर्वतया नैतिक आधार होना चाहिए यह दायित्व विपणन को असत्य विज्ञापन नीति के परित्याग की आवश्यकता को स्पष्ट करता है ।

(ल) उपभोक्ताओं के साथ सौजन्यतापूर्ण व्यवहार करना । यह दायित्व विपणन के मधुर जन सम्बन्ध स्थापना की नीति, को अपनाने पर बल देता है ।

(व) उपभोक्ताओं के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना । यह दायित्व विपणन को ग्राहकोन्मुखी विपणन नीति के अपनाने की आवश्यकता पर बल देती है ।

(ङ.) पूर्तिकर्ताओं के प्रति दायित्व

पूर्तिकर्ता विपणन व्यवसाय को सहायक सेवाएं देने वाली संस्थाएं होती है । ये वे संस्थाएं होती है जो विपणन को कच्चा माल, पक्का माल अर्द्धनिर्मित्त माल उत्पादन में प्रयुक्त की जाने वाली मशीनें उपकरण आदि तथा कार्यालय में वांछित सामग्री की सप्लाई करती है । विपणन का कार्य इन संस्थाओं के सहयोग पर निर्भर करता है । इसलिए विपणन को चाहिए कि वह इन पूर्तिकर्ताओं के प्रति निम्नलिखित दायित्व का निर्वाह करें ।

(क) विपणन का यह दायित्व है कि वह पूर्तिकर्ताओं को ग्राहकों, रुचियों, आदतों फैशन, मांग आदि में होने वाली परिवर्तनों की सूचना दे तथा बाजार शोध के निष्कर्षों से सूचित रखे । यही नहीं बल्कि विपणन को चाहिए कि वह पूर्तिकर्ताओं के अपने भावी विकास-विस्तार कार्यक्रम से भी सूचित रखे ताकि उन्हें अपने विपणन की नीतियां तथा योजनाएं बनाने में सहायता मिल सके ।

(ख) विपणन को चाहिए कि वह पूर्तिकर्ताओं को आदेशित माल की सप्लाई करने हेतु पर्याप्त समय दे जिससे उन्हें असुविधा न हो ।

(ग) विपणन का अपने पूर्तिकर्ताओं के प्रति यह दायित्व है कि वह पूर्तिकर्ताओं के उचित मूल्य का भुगतान शीघ्र करें ताकि उन्हें आर्थिक कठिनाई का सामना न करना पड़े ।

§घ§ विपणन का यह दायित्व है कि वह आदेशित मात्रा के आदेशानुसार होने पर उसको स्वीकार करे ताकि पूर्तिकर्ताओं को कोई कठिनाई न हो ।

§च§ प्रतियोगियों के प्रति दायित्व

सामान्यतया, प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में अपने प्रतियोगियों के प्रति विपणन के सामाजिक दायित्व का कोई प्रश्न नही उठता है, क्योंकि स्वस्थ प्रतिस्पर्धा समान राष्ट्र एवं उपभोक्ताओं के हित में होती है । किन्तु आत्मघाती प्रतिस्पर्धा से समाज एवं राष्ट्र केसाधनों का दुरूपयोग होता है । और स्वयं विपणन को भी हानि होती है । इसलिए विपणन का दायित्व है कि वह अन्य सहयोगी संस्थाओं के साथ आत्मघाती प्रतियोगिता न करे । इसका अर्थ यह नही है कि विपणन संस्थाओं को प्रतियोगी संस्थाओं के साथ कोई अनुबन्ध अथवा सामूहिक वार्ता करके प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर देना चाहिए । इस स्थिति से समाज एवं राष्ट्र स्वीकार नही कर सकता है कीमतें बढ़ी है व किस्म गिरती है । अतएव विपणन का यह दायित्व है कि वह उचित प्रतिस्पर्धा बनाए रखे और नैतिकता के सिद्धांतों की अनुपालना करे ।

§छ§ समुदाय के प्रति दायित्व

विपणन समाज के साधनों से समाज के लिए किया जाता है और समाज उसके विस्तार विकास हेतु अवसर जुटाता है । इस लिए विपणन जहाँ किया

जाता है, वहाँ के स्थानीय समाज अथवा समुदाय के प्रति भी उसके कुछ दायित्व होते हैं, जिसे उसे पूरा करना चाहिए । विपणन के समुदाय के प्रति निम्नांकित दायित्व है :

§क§ विकसित सामाजिक आदर्शों तथा आकांक्षाओं के अनुरूप प्रबन्ध को अव्वल कार्यक्षम बनाना ।

§ख§ समाज के सदस्यों को उच्च जीवन स्तर एवं अधिकृत रोजगार के आधार उपलब्ध कराना ।

§ग§ स्थानीय समुदाय को शिक्षा चिकित्सा, मनोरंजन, पुस्तकालय, आवास, गमनागमन तथा बेरोजगारों के लिए प्रशिक्षण आदि को सुविधाओं में सहयोग करना ।

§घ§ सामाजिक विभेद को समाप्त करने में सहायता देना तथा समाजोपयोगी जैसे अल्प बचत परिवार कल्याण आदि में सहयोग देना ।

§य§ सांस्कृतिक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता करना ।

§र§ गरीबी के चक्र को तोड़ने में सक्रिय हिस्सा लेना ।

﴾ज﴿ राष्ट्र एवं सरकार के प्रति दायित्व :-

राष्ट्र की सरकार विपणन को संरक्षण प्रदान करती है और उसके विकास विस्तार हेतु शान्तिपूर्ण व्यवस्था बनाए रखती है । राष्ट्रीय सरकार समाज एवं राष्ट्र के हितों की रक्षा करने के लिए आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप भी करती है नियम और कानून भी बनाती है । विपणन के सरकार एवं राष्ट्र के प्रति निम्नलिखित दायित्वों का निर्वाह करें ।

﴾क﴿ विपणन से सम्बन्धित सरकारी नियमों एवं कानूनों का पालन करना तथा अन्य व्यक्तियों को नियमों तथा कानूनों के पालन में सहायता करना ।

﴾ख﴿ विभिन्न प्रकार के करों एवं चुंगियों का सही तथा नियमित भुगतान करना ।

﴾ग﴿ काला बाजारी, मिलावट, मुनाफाखोरी संचयन आदि को रोकने में सरकार की सहायता करना ।

﴾घ﴿ देश के आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय नीतियों को सहयोग एवं समर्थन देना ।

﴾य﴿ धन अथवा संरक्षण द्वारा राजनीतिक समर्थन प्राप्त न करना ।

﴾र﴿ आर्थिक विषमता एवं एकाधिकारी स्थिति को दूर करने में सरकार की सहायता करना ।

(ल) राष्ट्र के लोक जीवन में भाग लेना जैसे नियमों के निर्माण, नीतियों के निर्धारण तथा सलाहकारी के रूप में हिस्सा बैठाना ।

विश्व राष्ट्रों के प्रति दायित्व

विपणन आज राष्ट्रीय सीमाओं में प्रवेश कर गया है । प्रत्येक राष्ट्र की उपलब्धियाँ विश्व के अन्य राष्ट्रों को लाभान्वित करती है । इसलिए चाहिए कि यह विश्व राष्ट्रों के प्रति भी निम्नलिखित दायित्वों का निर्वाह करें ।

(क) विश्व व्यापार को बढ़ाना एवं उसके हिस्सा लेना ।

(ख) विश्व बाजारों के अच्छी किस्म का रास्ता, टिकाऊ मात्रा उपलब्ध करके राष्ट्रीय ख्याति को बढ़ाना ।

(ग) राशिपातन अथवा अन्य अनुचित रूप से प्रतिस्पर्धा न करना ।

(घ) ईमानदारी एवं सद्भावना पूर्वक विश्व-समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना ।

(य) पिछड़े देशों को औद्योगिक तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय ज्ञान तथा वित्त की उपलब्धि करना ।

(र) अन्तर्राष्ट्रीय विपणन के नियमों का पालन करना ।

भारतीय विपणन के सामाजिक दायित्वों का मूल्यांकन

(क) सरकार और समाज के प्रति - भारतीय विपणन ने सरकार और समाज के प्रति अपने महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह किया है जहाँ कुछ व्यापारियों एवं विपणनकर्मियों ने सरकार एवं समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह किया है वही अन्य अज्ञेय व्यापारियों एवं विपणन कर्मियों ने इस दायित्वों की उपेक्षा की है । उनके व्यवसायिक संस्थाओं ने करों की चोरी करके अधिक मूल्य के तथा कम मूल्य के बीजक बना करके, कालाबाजारी करके मिलावट करके, संयोजन करके अन्य भ्रष्ट व्यवहारों के काम में लाकर, कानूनों का उल्लंघन करके तथा सरकारी नीतियों की उपेक्षा करके सामाजिक दायित्वों के प्रति उदासीनता का व्यवहार प्रकट किया है । हमारे देश में बहुत से लोगों के पास काला धन है इस धनराशि ने लोकजीवन की शुद्धता पर रूकावट डाली है । इन व्यक्तियों में व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को शामिल किया जा सकता है ।

जहाँ तक स्थानीय समुदाय के प्रति सामाजिक दायित्वों के निर्वाह का प्रश्न है, अनेक व्यवसायिक घरानों तथा फर्मों ने उल्लेखनीय कार्य किये है । किन्तु इसके बावजूद भी यह कहना होगा कि अभी ये सेवाएं क्षमता के अनुरूप नही की गयी है । इसी तरह वातावरण एवं पर्यावरण को शुद्ध करने की ओर व्यवसाय तथा विपणन का ध्यान नहीं गया है विकलांगों की सेवाओं एवं रोजगार की ओर भी अभी ध्यान देना शेष है ।

(ख) <u>ग्राहकों एवं उपभोक्ताओं के प्रति</u> - भारतीय विपणन समाज केवल धनोत्पादन में लगा हुआ है। समाज का शोषण, अहित एवं नुकसान उसे अपने पथ से विचलित नही करता है। विपणन, मुनाफाखोरी, चोरबाजारी, संचय, कम नाप, तौल, तस्करी, मिलावट जैसे घृणित कार्यों में लगा हुआ है। यद्यपि कुछ व्यवसायी एवं विपणनकर्मियों ने उपभोक्ताओं एवं ग्राहकों की सेवा करने की चेष्टा की है और कर रहे है। किन्तु अधिकांश विपणन समाज लूट-खसोट में लगा हुआ है। इन्ही कारणों से वर्तमान में सरकार द्वारा विपणन की प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप अपरिहार्य होता जा रहा है।

(ग) <u>स्वयं के प्रति तथा स्वामियों के प्रति</u> - भारतीय विपणन ने स्वयं के प्रति तथा अपने स्वामियों के प्रति सामाजिक दायित्वों का निर्वाह सन्तोषप्रद ढंग से किया है। विपणन एवं व्यवसाय में काफी कुशलता पूर्वक लाभदेयता के साथ अपना संचालन, विकास विस्तार तथा प्रगति की है यद्यपि अनेक व्यवसायिक एवं विपणन संस्थाएं प्रारम्भ होने के कुछ समय बाद भी समाप्त हुई है फिर भी अधिकांश फर्में एवं कम्पनियां समृद्धि के पथ पर अग्रसर हुई हैं। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि भारतीय व्यवसाय एवं विपणन काफी फला फूला है और उसका विकास विस्तार हुआ है। इस लिये कहा जा सकता है कि भारतीय विपणन में अपने स्वयं के प्रति तथा अपने स्वामियों के प्रति सामाजिक दायित्व का निर्वाह सन्तोषप्रद ढंग से किया है।

:

§घ§ विश्व राष्ट्रों के प्रति - भारतीय व्यवसाय एवं विपणन का दृष्टिकोण विश्वराष्ट्रों के प्रति सामान्य सा रहा है । यद्यपि अनेक बार देखने में आया है कि निर्यातित माल की किस्म गिरी हुई थी, माल वापिस लौटा था, माल कम बिक पाया था, कीमतें अधिक थी तथा हमारी वस्तुएं प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर पायी थी, फिर भी विदेशों में व्यापार काफी नही है । भारत में निर्यात विपणन के क्षेत्र में काफी उपलब्धि हासिल किया है । भारत में अपने निर्यात करने वाली वस्तुओं की मात्रा में तथा उसकी वृद्धि भी है तथा कहां-कहां वस्तुओं का निर्यात करना प्रारम्भ कर दिया है इन वस्तुओं में इंजीनियरिंग समान बिजली के समान, चमड़े की वस्तुएं तथा अन्य प्रारम्भिक निर्यात को वस्तुएं शामिल हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय विपणन को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई और यह विपणन कर्मियों का परम कर्तव्य है कि विपणन के सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में सतत् प्रयास करें ।

उपभोक्ता संरक्षण

उपभोक्ता को अर्थव्यवस्थाओं का सम्राट कहा जाता हैं तथा समस्त विपणन क्रियाओं का प्रारम्भिक एवं अन्तिम लक्ष्य समझा गया है । उनकी संतुष्टि को सर्वोपरि समझा गया है । उन्हें सदैव सही मानने पर बल दिया

गया है । अधिक ग्राहक संतुष्टि की उपलब्धि हेतु प्रबन्ध नीतियों एवं कार्य-कलापों को ग्राहकोन्मुखी बनाने का प्रयास किया गया है । किन्तु इतना होते हुए भी आज का उपभोक्ता अपने आप अधिक आरक्षित महसूस करता है । कम नाप तौल, मिलावट, किस्म, गिरावट मूल्य, वृद्धि, कम वजन, असत्य विज्ञापन आदि के सैकड़ों उदाहरण जनता के समक्ष प्रस्तुत होते रहते है । इस सम्बन्ध में प्रमाणिक एवं पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं है । फिर भी सम्बद्ध विद्वानों का यह अनुमान है कि 33% वस्तुयें मिलावटी है ।[11]

विद्वानों का मत है कि उपभोक्ताओं को लगभग 2000 करोड़ रूपये के मूल्य के बराबर प्रति वर्ष पैकटों में कम वजन या माप के जरिये ठगा जाता है ।[12] मूल्य वृद्धि भी पिछले वर्षों में 37.5% वार्षिक दर से होती रही है । अतः उपभोक्ता इस दृष्टि से भी असुविधा में पड़ता जा रहा है । आवश्यकता इस बात की है कि उपभोक्ता को सुरक्षित किया जाना चाहिए और उन्हें स्वयं भी सुरक्षित होने हेतु प्रयास करने चाहिए ।

उपभोक्ताओं के अधिकार

संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी एवं कनाडा जैसे राष्ट्रों में वहां के उपभोक्ता स्वयं तथा वहां की सरकारें उपभोक्ताओं के हितों का

---

11. दि इकोनामिक टाइम्स, नयी दिल्ली, 13 मई, 1970

12. दि इकोनामिक टाइम्स, नयी दिल्ली, 20 अगस्त, 1975

संरक्षण करने हेतु अनेक प्रशासनीय कार्य कर रही है । किन्तु इस दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी प्रयास प्रारम्भ किये जाने शेष हैं । यह तभी संभव है जब कि विश्व स्तर पर उपभोक्ताओं के अधिकारों का निर्धारण किया जाय और तत्पश्चात् विश्व के सभी देशों की सरकारें तथा उपभोक्ता उनके संरक्षण एवं सम्वर्द्धन हेतु मिलकर कार्य करें । सन् 1962 में 15 मार्च को तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति कनेडी ने उपभोक्ता हित सुरक्षा पर कांग्रेस को एक विशिष्ट संदेश भेजा था जिसमें निम्न चार अधिकारों के बारे में कांग्रेस का ध्यान आकृष्टि किया गया था ।[13]

(क) बचाव का अधिकार :- यह अधिकार उपभोक्ता को उन सब वस्तुओं एवं स्थितियों से बचाव करने पर बल देता है जिनसे उनके स्वास्थ्य एवं जीवन को कोई खतरा उत्पन्न हो सकता है जैसे नकली दवाओं, मिलावटी वस्तुओं, त्रुटिपूर्ण विद्युत उपकरणों आदि से बचाव आवश्यक समझा गया है ।

(ख) सूचना पाने का अधिकार :- यह अधिकार उपभोक्ता को उन सब बातों की जानकारी समय पर एवं सभी रूप से स्पष्टता के साथ कराने पर बल देता है जो कि उनके क्रय निर्णयों क्रय प्राथमिकताओं एवं धन के उपयोग को प्राथमिक करती है । उदाहरण के लिये असत्य विज्ञापनों झूठे तथा भ्रामक लेबलों, अनावश्यक ब्रांड विवादों से उपभोक्ताओं को बचाना परमावश्यक है ।

---

13. ली (?), सोसल इसू इन मार्केटिंग पृष्ठ 283

(ग) चयन का अधिकार :- यह अधिकार बतलाता है कि उपभोक्ताओं को इस स्थिति में खड़ा कर देना चाहिए कि अथवा योग्य बना देना चाहिए कि वह विभिन्न वस्तुओं में से स्वयं के लिए सर्वश्रेष्ठ वस्तु का चयन कर सके । प्रतियोगी मूल्य पर जो प्राप्त कर सके और उनकी सेवाओं व सुविधाओं को उपभोग कर सके । इस दृष्टि से उपभोक्ताओं को निरन्तर विभिन्न प्रकार की श्रेष्ठ वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध करायी जानी चाहिए ।

(घ) चुने जाने का अधिकार :- अभी तक केवल ऊपरी तौर पर ही यह स्वीकार किया जाता रहा कि ग्राहक सही है, किन्तु उनकी शिकायतों, परामर्शों एवं विचारों को सामान्य उपेक्षा की जाती रही है । यह अधिकार इस बात की आवश्यकता को बतलाता है कि ग्राहक को सुना जाना चाहिए और वस्तु विकास एवं बिक्री परान्त तक की अवधि में उनसे सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिए । संस्थाओं की विक्रय नीतियों एवं राजनीतियों को ग्राहकोन्मुखी बनाकर इस अधिकार की सुरक्षा की जा सकती है ।

भारत में उपभोक्ता संरक्षण के संदर्भ में किये गये प्रयत्न

उपभोक्ता संरक्षण हेतु भारत में किये गये प्रयत्नों को सुविधा की दृष्टि से तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(अ) सरकारी प्रयत्न :- सरकार ने अनेक अधिनियम पारित किये है । जिनमें

औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम 1951, औषधि नियंत्रण अधिनियम, खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954, आवश्यक वस्तु (पूर्ति) अधिनियम 1955, व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम 1958, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969, पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश 1975 आदि को प्रमुख रूप से सम्मलित किया जा सकता है । किन्तु यह निर्विवाद है कि कानूनों का पालन प्रभावी तरीके से नहीं हो पा रहा है । अधिकारीगण पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य नहीं कर रहे है । परिणाम स्वरूप भारतीय उपभोक्ता उतना सुरक्षित अनुभव नही करता है जितना कि अपेक्षित है । भारतीय प्रमाप संस्था जैसी अनेक संस्थान भी कार्य कर रही है । लेकिन प्रभावी नियंत्रण के अभाव अपेक्षित परिणाम नही दे पा रहा है ।

(ब) निर्माताओं के प्रयत्न :- भारतीय निर्माताओं ने उपभोक्ता संरक्षण की दिशा में अग्रसर होने हेतु 2 अक्टूबर 1966 को फेयर ट्रेड प्रेक्टिसेस एसोसिएशन की स्थापना की है । यह एसोसिएशन 15 मार्च 1968 को कम्पनी अधिनियम के प्राविधानों के आधीन सीमित दायित्व वाली कम्पनी के रूप में पंजीकृत हुआ । यह व्यापारियों, निर्माताओं, उत्पादकों आदि का स्वैच्छिक संघ है जिसका पंजीकृत कार्यालय बम्बई में है । संघ के निम्न उद्देश्य है -

(क) व्यापारिक समुदाय के प्रति उपभोक्ताओं की सद्भावना विकसित करना ।

(ख) व्यापारिक समुदाय द्वारा अपनायी जाने वाली पद्धतियों को संहिता-बद्ध करना ।

(ग) आचार संहिता का प्रचार प्रसार करना और अधिकाधिक अनुपालन हेतु कार्य करना ।

इस संघ ने मोटरगाड़ियों एवं विद्युत उपकरणों के निर्माताओं के लिए कुछ मार्ग दर्शक सिद्धांत भी स्थापित किये है । अन्य व्यवसायों के लिए मार्ग दर्शक सिद्धांत बनाये गये है तथा बनाये जा रहे है । यह संघ उन सदस्यों को सदस्यता से पृथक करने का अधिकार तथा सदस्यता न देने का अधिकार भी रखता है जो निम्नलिखित उत्तरदायित्वों का पालन भली प्रकार नहीं करते हैं अथवा उनका उल्लंघन करते है अथवा करने को सहमत नहीं है ।-

(क) सन्तोषप्रद तथा न्यायोचित मूल्य निर्धारण करना और वस्तुओं को निर्धारित मूल्य पर उपलब्ध कराना ।

(ख) उन मध्यस्थों या व्यापारियों का पता लगाना जो कि निर्धारित मूल्यों से अधिक मूल्य ले रहे हैं ।

(ग) वस्तुओं की कमी के समय पूर्ति को रोककर लाभ न कमाना

(घ) उन वस्तुओं में व्यापार में व्यापार न करना जिनके निश्चित प्रभाव निर्धारित न किये जा सके ।

(य) मिलावट न करना ।

(र) भ्रामक विज्ञापन न करना ।

(ल) आयातित एवं निर्यातित वस्तुओं के बीजक सही मूल्य पर बनाया जाना ।

(ब) बेचने के लिये उपलब्ध की जाने वाली वस्तुओं के नाप, तौल, किस्म आदि का सही होना ।

(स) तस्करी वस्तुओं में व्यापार न करना ।[14]

यह संघ अधिक उल्लेखनीय कार्य नहीं कर सका है । कारण कि देश के अन्य भागों के व्यापारी एवं उद्योगपति इसके अस्तित्व से अनभिज्ञ है । सदस्यों की संख्या भी सीमित है तथा कुछ व्यापारियों ने ही इसकी सदस्यता ग्रहण कर ली है । ऐसे संघ तभी सफल हो सकते है जबकि व्यवसाय-स्व-नियंत्रण सीख लें ।

(स) उपभोक्ता के प्रयत्न :- हमारे देश में उपभोक्ताओं ने स्वयं के अधिकारों तथा हितों के संरक्षण हेतु लगभग 28 संगठन स्थापित करके अपनी जागरूकता का परिचय दिया है । किन्तु दुःख का विषय है कि 27 संगठन शिथिल होते जा रहे है । केवल एक संगठन को जो । उपभोक्ताओं का मार्ग दर्शक संघ । के नाम से जाना जाता है भली प्रकार कार्य कर रहा है । इस संगठन का मुख्य कार्यालय बम्बई में है तथा इसकी अन्य शाखाएं भी महाराष्ट्र में फैली हुई हैं । इसकी स्थापना अप्रैल 1966 में की गयी थी । इस संघ की सदस्यता सब के लिए खुली हुई है । किन्तु महाराष्ट्र के अधिकतर उपभोक्ता इसके सदस्य है । कोई भी व्यापारी इस संघ का सदस्य नही बन सकता किन्तु व्यापारियों को

---

14. बजाज एण्ड पोरवार, सरकार, समाज एवं व्यवसाय, रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइंस, पृष्ठ 121

सह सदस्य बनाया जा सकता है । ऐसे सदस्यों को मताधिकार नही दिया गया है ।

इस उपभोक्ता संगठन का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं में उनके हितों एवं अधिकारों के प्रति एक चेतना प्रसारित करना है तथा व्यय किये गये धन अर्थात दिये गये क्रय-मूल्य का उचित प्रतिफल उपलब्ध कराना है । यह संगठन "कीमत" नामक पत्रिका का प्रकाशन भी करता है । यह संगठन सदस्यों एवं उपभोक्ताओं से शिकायतें आमंत्रित करता है तथा सरकार व सम्बन्धित संस्थाओं से सम्पर्क करके ग्राहक परिवेदनाओं को दूर करता है । यह संगठन उपभोक्ता संवेदना उत्पन्न करने एवं सुरक्षा देने के लिए निम्न कार्य प्रणाली को अपनाता है :-

(क) उपभोक्ता वस्तुओं के परीक्षण में सहायता करना ।

(ख) निर्माताओं एवं उत्पादकों को वस्तु किस्म में सुधार तथा उपयोगिता वृद्धि के उपाय बताना ।

(ग) उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यांकन में राष्ट्रीय प्रयोग शालाओं को सहायता देना ।

(घ) उपभोक्ता जनसभाएं आयोजित करना ।

(य) पत्रिका का प्रकाशन करना ।

(र) प्राप्त शिकायतों के निपटारे में उपभोक्ताओं को सहायता देना ।

यह संगठन बहुत श्रेष्ठ सेवाएं दे रहा है तथा अन्य प्रान्तों के लिए उदाहरण बन रहा है । इस संघ के सामने धनाभावएक प्रमुख समस्या है क्योंकि इसमें लगभग 3000 सदस्य संगठन के वित्तीय कर असमर्थ करने में असमर्थ है ।[15] सदस्यों ने निर्णय किया है कि उन्हें अपने संगठन की सदस्या को तीन माह में दुगना करना है । संगठन के कार्यों का प्रचार प्रसार करने के लिए संगठन ने 24 जनवरी से 31 जनवरी तक एक उपभोक्ता मार्ग दर्शक सप्ताह भी मनाया था । किन्तु इसके बावजूद इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति नही हो सकी जितना की अपेक्षित थी ।

सुझाव -

{क} उचित व्यापार व्यवहार अधिनियम "अतिशीघ्र पारित किया जाना चाहिए ताकि उसके आधीन राष्ट्रीय उपभोक्ता से संरक्षण परिषद लायी जा सके और उचित व्यापार न्यायाधिकरणों की स्थापना की जा सके । सरकार इस सम्बन्ध में विचार कर रही है ।

{ख} सरकारी व गैर सरकारी निर्माणी संस्थानो में उपभोक्ता सलाहकार समितियां होनी चाहिए जो कि उपभोक्ता हितों के संरक्षण पर सुझाव दे सके ।

---

15. इकोनामिक टाइम्स, नयी दिल्ली, 29 जनवरी, 1988

(ग) संगठन उपभोग का निर्माण निश्चित प्रभावों के आधार पर किया जाना चाहिए ताकि ब्राण्ड कुचक्र से उपभोक्ताओं को बचाया जा सके ।[16]

(घ) विद्यमान उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी प्राविधानों के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सरकारी मशीनरी को सक्रिय किया जाना चाहिए और दोषी व्यक्तियों के लिये संक्षिप्त विचारण के व्यवस्था की जानी चाहिए ।

(ङ) बड़े-बड़े नगरों में सरकारी प्रयोग शालाएं होनी चाहिए जहाँ न्यूनतम शुल्क पर उपभोक्ता खरीदी हुई वस्तुओं की जाँच करवा सके ।

(च) उपभोक्ता आन्दोलन देश भर में चलाना चाहिए तथा उनके स्वयं के संगठन स्थापित किये जाने चाहिए जो उन्हें मार्ग दर्शन दे सके ।

(छ) महिला उपभोक्ताओं को आगे आने तथा भारतीय प्रभाव जैसी संस्था बनाने के प्रेरणा दी जानी चाहिए । ताकि ये हर नगर में बिकने वाली वस्तुओं पर अपनी संस्था की छाप लगा सकें । ऐसा करने पर उपभोक्ता को वस्तु की किस्म एवं उपयोगिता के प्रति आश्वस्थ किया जा सकता है ।

---

16. जायरी "कन्जयूमर गाइडेन्स", 1978 में प्रकाशित लेख ।

सरकार द्वारा विपणन क्रियाओं में हस्तक्षेप का औचित्य

आधुनिक समाजवादी सरकारें समाज के सभी वर्गों के उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताएं की सभी वस्तुएं उपलब्ध कराने, उन्हें अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने और समाज में व्याप्त जमाखोरी एवं मुनाफाखोरी को दूर करने, समानता समता एवं शोषण विहीन समाज की स्थापना करने के उद्देश्य से विपणन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करती है । विपणन में सरकार की उचित भूमिका के सम्बन्ध में विचारों में बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है । एक चरम पर ऐसे व्यक्ति हैं जिनका विश्वास है कि किसानों और उपभोक्ताओं के हित में विपणन में सुधार करने के लिए सरकार जो कुछ भी कर सकती है करना चाहिए । वे यह चाहते है कि सरकार को निजी और सहकारी एजेन्सियों के साथ सक्रिय प्रतिस्पर्धा में विपण्न सुविधाओं की स्थापना और संचालन करना चाहिए विपणन में व्यस्त और अनुमत एजेन्सियों द्वारा प्रयोग किये जाने के लिए वाहिकाओं की स्थापना करनी चाहिए, चयनित विपणन क्रियाओं में आर्थिक सहायता देनी चाहिए और वस्तुओं के विपणन के साथ-साथ विपणन की जाने वाली मात्रा के समय स्थान और रीति को नियंत्रित करना चाहिए । ये सभी बाते अब की जाती है । तथा इनकी वकालत की जाती है । विभिन्न राज्यों ने विपणन की सुविधाओं का निर्माण किया है और वे उनका संचालन करते हैं । विभिन्न विपणन क्रियाओं के खेतों पर भंडार से निर्यात तक आर्थिक सहायता की जाती है ।

दूसरे चरम पर वे व्यक्ति हैं जो विपणन में सरकार द्वारा किसी भी हस्तक्षेप का विरोध करते हैं । विशेष रूप से यह विरोध ऐसे व्यक्ति करते हैं जो निजी विपणन में संलग्न है । उनका विरोध ऐसे क्षेत्रों जैसे शोध विस्तार तथा बाजार समाचार को व्याप्त करता है । विपणन में सरकार द्वारा कुछ किये जाने के विषय में उनके हठीले विरोध के कारण वे ऐसे क्षेत्र को आमंत्रित करते हैं जिसको वे बहुत आपत्ति करते हैं । इन दोनों चरमों के मध्य ऐसे कई व्यक्ति हैं । जिन्होंने विपणन क्रियाओं का बहुत अध्ययन किया है । वे विपणन में सरकारी गतिविधियों के लिए एक न्यायसंगत क्षेत्र को स्वीकार करते है लेकिन ऐसे क्षेत्रों में उसके विस्तार का विरोध करते है जो परम्परागत रूप से और स्पष्ट रूप से उपक्रमों के लिये सुरक्षित है ।

विपणन में महत्त्वपूर्ण सरकारी गतिविधियाँ

1- आवश्यक सहायक विपणन सेवाओं, जैसे सरकारी वर्गीकरण, प्रमाणीकरण, निरीक्षण और बाजार समाचार आदि की व्यवस्था करना । इन सेवाओं की प्रकृति के कारण निजी एजेन्सियों द्वारा उपेक्षा की जाती है ।

2- विपणन पद्धति की नीति बनाना । वह प्रभाव में परिवहन-कर्ताओं और क्रेताओं की सुरक्षा के लिये प्रवर्तनीय आधार संहिता की व्यवस्था करती है, एकाधिकार को रोकती है तथा जनहित के विरुद्ध व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाती है ।

3- ऐसे उत्पादकों के समूहों को सहायता करना जो कि विपणन की दशाओं को सुधारने के लिये सामूहिक कार्यवाही करना चाहते है । इसमें सहकारी विपणन संस्थाओं को सहायता देना शामिल है ।

4- कृषि वस्तुओं के समर्थन मूल्य की सीधी कार्यवाही करना । यह सभी सहकारी विपणन कार्यवाही में सबसे अधिक विवादास्पद है ।

5- वैकल्पिक उपभोक्ताओं द्वारा खाद्यान्न के उपयोग में वृद्धि कराने के कार्यक्रम बनाना वितरण का विस्तार करना, तथा नये प्रयोगों तथा विकासों को खोलना ।

6- विपणन में सुधार करने के नये तरीके खोजने के लिये शोध करना।

7- वैकल्पिक विपणन नीतियों और व्यवहारों के प्रभावों से किसानों, उपभोक्ताओं और विपणन एजेन्सियों को परिचित कराने के लिये उचित विस्तार गतिविधियां ।[17]

विपणन में राजकीय हस्तक्षेप का सिंहावलोकन

विपणन तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं में राजकीय हस्तक्षेप राज्य की स्थापना के साथ-साथ प्रारम्भ हुए । अनादिकाल से ही मानव किसी न किसी

---

17. कुम्भट एवं अग्रवाल : विपणन प्रबन्ध, किताब महल, पृष्ठ 542

रूप से मानव समाज के आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करता रहा है । किन्तु जब से राज्य जैसे स्थायी संस्था का विकास एवं विस्तार हुआ है तभी से यह संस्था मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों में अपने हस्तक्षेप को बढाती रही है ।[18] पहले राज्य का प्रमुख कार्य बाहरी आक्रमणों से देश के रक्षा करना तथा आन्तरिक शान्ति सुरक्षा बनाए रखना । इस कार्य को करने के लिये राज्य सेना, पुलिस, और न्यायालयों की व्यवस्था करना था । इन सब कार्यों पर होने वाले खर्चों की पूर्ति के लिए जनता पर आवश्यक कर लगाया जाता था । धीरे-धीरे राज्य की क्रियाओं का क्षेत्र व्यापक होता गया और राज्य की सड़के बनवाने पेड़ लगवानें, नहर खुदवाने, बांध बंधवाने, पुल तैयार करवाने, स्कूल अस्पताल खुलवाने, कानून पारित करने और निर्धन, अपाहिज व भिखारियों के लिये आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करने के कार्यों को भी सम्पन्न करना पड़ा । समृद्धि के बढ़ने के साथ-साथ उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून भी राज्य द्वारा बनाये गये आन्तरिक एकता बनाये रखने के लिये राज्य को धार्मिक एकरूपता स्थापित करने के भी कार्य करने पड़े । राज्य ने आगे चलकर सम्बन्धित हस्तांतरण और प्रसंविदा कानून बनाये ताकि मानव समाज की प्रगति को स्थापित तथा गत्यात्मक दिशा दी जा सके प्राचीन मित्र चीन तथा अन्य यूरोपीय राज्यों तथा भारत तथा अन्य एशियाई राज्यों के इतिहास इस बात के अकारण प्रमाण प्रस्तुत करते है कि राज्य मनुष्य के आर्थिक जीवन को निश्चित सिद्धांतों तथा नीतियों के आधार पर नियंत्रित करता रहा है ।

---

18. प्लेटो "दि रिपब्लिक ।।" पृष्ठ 369-70

यूनान की सभ्यता ऐसे राज्यों का उदाहरण अवश्य देती है जहाँ प्रजातन्त्रीय व्यवस्थाएं थी और राज्य आर्थिक जीवन में न्यूनतम हस्तक्षेप करता था । किन्तु रोमन अधिकार के बाद यूनान में व्यक्तिगत क्रियाओं एवं राज्य सैनिक शक्ति द्वारा संचालित व नियन्त्रित करने लगा था । रोमन साम्राज्य के पतन से वहाँ राजकीय हस्तक्षेप काफी बढ़ गया । जागीरदारी प्रथा के पक्ष में किसानों की प्रत्येक व्यक्तिगत क्रिया पर जगीरदारों तथा सामन्तों का पूर्ण नियंत्रण हो गया था ।

10वीं शताब्दी के उपरान्त राजाओं और सामन्तवादी व्यवस्थाओं की अधिकतर सत्ता शिथिल होने लगी थी और आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्त-क्षेप कम होने लगा था । इस परिवर्तनों के कारणों में धार्मिक वैचारिक क्रांति, व्यापारिक उन्नति, पूंजी संचयन की भावनाएं पुर्नजागरण तथा नये महाद्वीपों की खोज को सम्मिलित किया जा सकता है । वस्तुत: 10 वीं शताब्दी तक हुये परिवर्तनों ने मानव जाति को एक नयी व्यवस्था देना शुरू कर दिया था । और परिणाम स्वरूप शक्ति सम्पन्न राष्ट्रवादी तथा वणिकवादी राज्य स्थापित होने लग गये थे । समस्त आर्थिक एवं राजनैतिक शक्तियां केन्द्रीय सरकारों के हाँथों केन्द्रित होने लग गयी थी । 15वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक वाणिज्यवादी विचारकों में व्यापार व उद्योग के क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप की नीति का जोरदार समर्थन किया । और राज्य की नीतियों में हस्तक्षेप की नीति को प्रमुख स्थान उपलब्ध करा दिया था । इससे राज्य का आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप बढ़ी, तेजी से बढ़ने लगा था । अधिकांश यूरोपीय राज्यों ने

राष्ट्रीय नीति के द्वारा आर्थिक जीवन को नियमित और नियंत्रित करना शुरू कर दिया था । राज्य ने उपभोग, उत्पादन मजदूरी मूल्य आयात-निर्यात, ब्याज की दरों लाभार्जन के अनुपात आदि पर कठोर नियंत्रण लगाने शुरू कर दिये थे । किन्तु यह स्थिति लम्बे समय तक नहीं चल सकी । और राजकीय हस्तक्षेप का कड़ा विरोध किया जाने लगा था । फ्रांस में फ्रान्सीसी प्रकृतिवादी लेखकों ने यह उद्घोषित करना शुरू कर दिया था कि राज्य के हस्तक्षेप से प्राकृतिक व्यवस्था में गड़बड़ हो जाती है । संसार का चक्र प्रकृति के नियमों पर संचालित होता और प्रकृति स्वयं संतुलन स्थापित करती रहती है । इस लिये राज्य को आर्थिक सामाजिक कार्यों में हस्तक्षेप नही करना चाहिए । इसी प्रकार इंग्लैण्ड में अर्थशास्त्रियों ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया था कि अदृश्य शक्तियों से साधनों का अधिकतम सदुपयोग संभव होता है और राज्य के हस्तक्षेप से उसमें बाधा उत्पन्न होती है । "इन विद्वानों का विचार था कि "जब एक व्यक्ति स्वयं के हित के लिये कोई कार्य करता है तो उसे स्वतः ही समाज का भी हित अग्रसर होता है । स्वतंत्र प्रतिस्पर्धी वातावरण में एक दूसरे के हितों में टकराव उत्पन्न नहीं हो पाता है किन्तु राज्य के हस्तक्षेप से साधनों की सर्वोत्तम उपयोग में लाना कठिन हो जाता है । इस लिये राज्य को आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।" राज्य इस बात से अर्थात् कर्तव्य-पालन से सर्वथा मुक्त है । कि वह निजी व्यक्तियों के उद्योगों का प्रबन्ध करे और ऐसे उपयोग में लाये जिससे समाज के हितों में वृद्धि हो । चूंकि ऐसे कार्यों को करने में सदैव त्रुटियों के होने की संभावना रहती

है और जिसे सम्पन्न करने के लिए किसी भी स्तर की मानवीय बुद्धि और ज्ञान को पूर्णत: पर्याप्त नही कहा जा सकता । प्रकृतिवादी विचारकों का यह भी मत था कि राजकीय हस्तक्षेप कर और अन्यायपूर्ण व्यवहार का जन्म-दाता होता है और व्यक्तिगत प्रेरणा और स्वतंत्रता का विनाशक होता है इस लिये राज्य को वही कार्य करने चाहिए जिससे अदृश्य शक्ति अपना काम सुचारु रूप से चलाती रहे । और प्राकृतिक व्यवस्था स्वतंत्र प्रतियोगिता को बनाए रख सके । इस प्रकार राज्यों को विदेशी आक्रमण से सुरक्षा आन्तरिक शान्ति की स्थापना तथा व्यक्तिगत तौर पर न किये जा सकने वाले सार्वजनिक निर्माण कार्यों को करने की विवेकपूर्ण सलाह दी है ।

उपरोक्त प्राकृतिक अर्थशास्त्रियों के विचारों से आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये अनुकूल वातावरण तैयार होने लगा था । चारो ओर विश्व में स्वतंत्र व्यापार एवं विपणन नीति, को अपनाने के नारे लगाए जाने लगे थे और परिणामस्वरूप स्वतंत्र व्यापार व विपणन नीति को सर्वत्र अपनाया जाने लगा था । इंग्लैण्ड इस नीति का प्रमुख समर्थक बन गया था । विपणन व्यवसाय एवं उद्योग के क्षेत्र में व्यक्तिवादी युग की शुरूआत हुई । किन्तु शीघ्र ही मानव समाज को अपनी भूल का ज्ञान होने लगा था क्योंकि औद्योगिक क्रांति के दुष्परिणामों में स्वतंत्र व्यापार एवं विपणन नीति व आर्थिक स्वतंत्रता के खोखलेपन को प्रकट करना शुरू कर दिया था । इस नीति ने विपणन चक्र को समाप्त करने के लिए अधिकतम सामाजिक लाभ के लिये राज्य के कार्यों में वृद्धि करने पर जोर दिया जाने लगा । इस प्रकार आर्थिक जगत में एक नयी चिन्तन

अथवा विचारधारा का अभ्युदय हुआ । इन विचारकों का मत था कि देश के आर्थिक जीवन का दायित्व राज्य पर ही होना चाहिए । चूंकि राज्य ही ऐसी एक मात्र संस्था है जो राज्य के आर्थिक साधनों का प्रयोग सभी वर्गों के हितार्थ कर सकने में समर्थ है । यह निर्विवाद है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली वर्ग संघर्ष और श्रमिकों के शोषण का स्त्रोत है क्योंकि पूंजीपतियों और श्रमिकों के हित परस्पर विरोधी है । इस लिये उत्पादन प्रणाली पर राज्य का एकाधिकार शोषण की समाप्ति के लिये और आर्थिक समानता के प्रसार के लिये अत्यावश्यक है ।[19] इसी प्रकार पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक क्षेत्रों में राजकीय हस्तक्षेप की अनिवार्यता पर बल दिया गया है ।[20] परिणाम स्वरूप पूंजीवादी व्यवस्था निष्क्रीय सी होने लगी श्रमिकों में एक नवीन आशा का संचार होने लगा था और जनहित के लिये राजकीय हस्तक्षेप की सबल पृष्ठ भूमि तैयार होने लगी थी ।

19वीं शताब्दी के अन्त तक औद्योगीकरण के बढ़ते हुए चरणों में पूंजीवादी राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा को भयावह बना दिया था । बाजार बड़ीतेजी से संकुचित होने लग गये थे । आर्थिक विषमता बेकारी, एवं आर्थिक उच्चावचनों को दूर करने के लिये राष्ट्रीय सरकारें आर्थिक राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित होकर आर्थिक नियोजन को अपनाने लगी थी जिसका मिलाजुला परिणाम

---

19. कार्ल मार्क्स, "दास कैपिटल" पृष्ठ 167

20. कीन्स "दि एण्ड आफ लेसेज फेयर", 1926 पृष्ठ 254

निर्बाधवादी नीति की समाप्ति के रूप में सामने आने लगा था ।

20वीं शताब्दी में तो आर्थिक स्वतंत्रता की नीति को प्रत्येक राष्ट्र ने लगभग छोड़ ही दिया है । इसके पीछे इस शताब्दी की चार महान घटनाएं रही है प्रथम महायुद्ध, रूस की 1917 की क्रान्ति, विश्व मन्दी का काल तथा द्वितीय महायुद्ध । रूसी क्रांति में विश्व को आर्थिक नियोजन की यह सुझाकर सम्पूर्ण आर्थिक जीवन पर राजकीय नियंत्रण को सम्भव बना दिया है । प्रारम्भ में अमेरिका जैसे पूंजीवादी राष्ट्रों ने रूस के आर्थिक नियोजन की कटु आलोचना की थी और इस लिये अपनाने से डरते थे कि कहीं हममें साम्यवाद प्रबल न हो जाय । किन्तु विश्व की महामन्दी ने इन देशों को भी राजकीय हस्तक्षेप की नीति को अपनाने पर विवश कर दिया था । संयुक्त राष्ट्र संघ ने न्यूडील तथा फ्रांस के क्रम प्रयोगों की सफलता ने आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप की अनिवार्यता को अपरिहार्य बना दिया था । इस प्रकार धीरे-धीरे आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप विश्व राष्ट्रों की प्रमुख नीति बन गया है ।

वर्तमान में तो प्रत्येक राष्ट्र चाहे वह समाजवादी हो, चाहे पूंजीवादी हो, अथवा साम्यवादी हो, वह सामाजिक हित के लिये व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओं पर नियंत्रण कामोवेशी रूप में करता ही है । आज राज्य विपणन एवं व्यवसाय की स्थापना से लेकर उसकी समाप्ति के बाद तक कि क्रियाओं का नियमन तथा नियंत्रण करता है । यही नही बल्कि राज्य अधिक से अधिक

जनकल्याण को ध्यान में रखते हुए तथा समाज के सभी वर्गों के उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं को सभी वस्तुओं को उपलब्ध कराने के लिये स्वयं अपने उपक्रमों की स्थापना करके प्रतिस्पर्धा के रूप में आर्थिक क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित कर रहा है । इस प्रकार विश्व की अर्थव्यवस्थाएं आज उस स्थिति में पहुँच गयी है । जहाँ राजकीय हस्तक्षेप के अभाव में विपणन व्यवसाय एवं उद्योग के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

राजकीय हस्तक्षेप के कारण

प्रत्येक राष्ट्र अपने को एक लोक कल्याणकारी राज्य का स्वरूप प्रदान करना चाहता है और अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करना चाहता है और पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं की बुराइयों से बचना चाहता है । प्रत्येक अविकसित क्षेत्रों का पता लगाना चाहता है और आत्म निर्भरता की वांछित स्थिति तक पहुंचना चाहता है । इन्हीं आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये वर्तमान में प्रत्येक राष्ट्र के आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप एक अनुपेक्षणीय अनिवार्यता बनता जा रहा है जिसका अभाव राष्ट्रीय सुरक्षा, समृद्धि एवं उन्नति के मार्ग में बाधाओं का पहाड़ खड़ा कर सकती है । "प्रगतिशील अर्थ व्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप पूंजीवादी संकट के उपचार के रूप में पनपा है किन्तु कम विकसित राष्ट्रों में राज्य की आर्थिक शक्ति में वृद्धि के पीछे उनका पिछड़ापन भी है ।
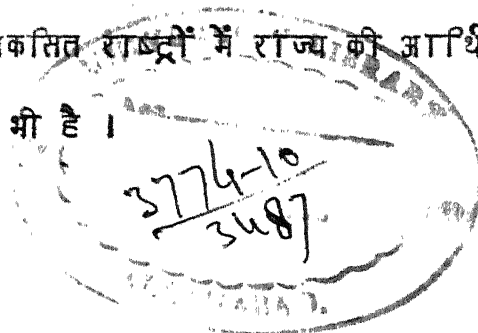
अब विश्व राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था ऐसी स्थिति में पहुंच गयी है जहाँ राजकीय हस्तक्षेप का कोई विकल्प नहीं रह गया है । इसलिए आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप उचित है अथवा अनुचित, यह प्रश्न निस्सार होता जा रहा है । इस समय प्रश्न यह उठता है कि विपणन के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप कब, कैसे और किस सीमा तक किया जाना चाहिए । इसका कारण यह है कि राजकीय हस्तक्षेप को आर्थिक विकास और जनहित के दृष्टिकोण से स्वीकार कर लिया गया है । कोई भी राष्ट्र अपनी सरकार से सक्रिय प्रोत्साहन पाये बिना आर्थिक विकास नहीं कर सका है । समझदार व्यक्ति इस झमेले में नही पड़ते है कि आर्थिक विकास राज्य के कार्यों से होता है या निजी क्षेत्र के रूचि या उत्साह से । वे जानते हैं कि आर्थिक विकास दोनों के सहयोग से होता है । वे तो केवल उसके सम्मिश्रण की मात्रा के बारे में चिन्तनरत रहते है । सरकार का यह कर्तव्य होता है कि वह अपना सहयोग विपणन क्रियाओं के नियमन, नियंत्रण एवं संचालन के रूप में दे सकती है । वास्तव में राजकीय हस्तक्षेप के निम्न आधार प्रस्तुत किये जा सकते है ।[21]

(अ) सरकार विस्फोटक प्रौद्योगिकी परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले सामाजिक प्रभावों के प्रति जागरूक बन जाये ।

(ब) विपणन एवं व्यवसाय निरन्तर रूप से इस बात को समझने में विफल रहा है कि औद्योगिकी विकास समाज में परिवर्तन लायेगा ।

---

21. दि इकोनामिक टाइम्स, नयी दिल्ली 26 दिसम्बर 1977 पृष्ठ 9

(स) व्यवसाय व विपणन समुन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करता आ रहा है किन्तु ऐसे प्रयोग के कारण उत्पन्न होने वाले दायित्वों की ओर नकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहा है ।

(द) विपणन ने सतत् रूप से उपभोक्ता के हितों की अवहेलना की है और करता जा रहा है ।

इस प्रकार जब विपणन समाज की अपेक्षाओं एवं आशाओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है और सामाजिक दायित्वों के प्रति उदासीनता प्रकट करता है, तब सरकार को नियंत्रण एवं विनिमय प्रावधान लागू करने आवश्यक हो जाते है । विपणन एवं व्यवसाय में राजकीय हस्तक्षेप के निम्न कारण है ।

1. कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य

कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के लक्ष्य में राजकीय हस्तक्षेप को आर्थिक क्षेत्र में निमंत्रित किया है क्योंकि किसी भी कल्याणकारी राज्य में राजनीतिक स्वतंत्रता का उस समय तक कोई अर्थ नही होता है जब तक कि आर्थिक सुरक्षा एवं स्वतंत्रता वहाँ के नागरिकों को न हो । आर्थिक सुरक्षा एवं स्वतंत्रता की उपलब्धि के लिये राज्य को सच्चे संरक्षक सलाहकार एवं सहायक के रूप में कार्य करना होता है । राज्य को इस बात का भी अथक प्रयास करना होता है कि उत्पादन में वृद्धि हो और लोगों कोजीवनान्तर ऊंचा उठ सके । उस प्रयत्न की सफलता राजकयी हस्तक्षेम को अपरिहार्य बनाती जा रही है ।

2. सन्तुलित आर्थिक विकास हेतु

सन्तुलित आर्थिक एवं विपणन के समग्र विकास के लिये राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक होते जा रहे है । प्रारम्भ में निजी क्षेत्रों की प्रधानता के कारण ये क्षेत्र वही विपणन की क्रियाओं को करते थे जो आर्थिक रूप से सुदृढ़ थे । किन्तु बहुत से क्षेत्र इस प्रकार के क्रियाओं से छूट जाते है अतः सन्तुलित विकास राजकी हस्तक्षेप के अभाव में संभव नही हो सकता ।

3. आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष रूचि की अनिवार्यता

आज हर राष्ट्र की सरकार के लिये यह आवश्यक होता जा रहा है कि वह राष्ट्र के आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष रूचि ले तथा जनता के जीवन स्तर को ऊँचा करें । इतना ही नही वरन् विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य पायी जाने वाली खाई को पाटने के लिये भी राजकीय हस्तक्षेप अनिवार्य रूप से विस्तार पा रहा है ।

4. आवश्यक कार्यों के सम्पादन का दायित्व

आवश्यक कार्यों के सम्पादन के दायित्वों को पूरा करने के उद्देश्य से सरकार विपणन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करती है । वे आवश्यक कार्य जो वास्तव में विपणन एवं व्यवसाय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकते है । जैसे, याता-यात संचार साधनों बिजली, आदि की व्यवस्था करने का पूर्ण दायित्व अब सरकार का हो गया है ।

5. जमाखोरी एवं कालाबाजारी दूर करने हेतु

समाज में व्याप्त जमाखोरी एवं मुनाफा खोरी को दूर करने के उद्देश्य से सरकार विपणन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करती है जिससे कि इन मुनाफाखोरों एवं जमाखोरों के विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है ।

6. अन्य कारण

देश में सामाजिक पूंजी के निर्माण के लिये, आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिये, एकाधिकारों पर रोक लगाने के लिए आर्थिक जड़ता से मुक्ति पाने के लिये बेकारी का सामना करने के लिए और विकास का आधारभूत ढांचा तैयार करने के लिये आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक हो गया है । इसी प्रकार मानवीय समस्याओं की आवश्यकता ने तथा श्रम सम्बन्धी के नियमन ने भी सरकारी हस्तक्षेप को बढ़ा दिया है ।

विपणन में राजकीय हस्तक्षेप के प्रारम्भ

वर्तमान में विपणन प्रक्रिया किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का आधार बिन्दु है । राष्ट्रीय आय के विकास में विपणन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है । सरकार विपणन के माध्यम से देश के समस्त क्षेत्रों का आर्थिक विकास कर रही है इस लिये विपणन में आज राजकीय हस्तक्षेप निर्विवाद रूप से किया जा रहा है । विपणन की क्रिया को प्रारम्भ करने से पूर्व सरकारी

अनुमति आवश्यक है चाहे ऐसी अनुमति लाइसेन्स के रूप में हो अथवा विपणन के संचालन के लिये हो अन्यथा समाप्ति हेतु विभिन्न व्यवसायिक एवं विपणन कानूनों का पालन करना पड़ता है । क्या उत्पादित कियाजाय, कितना उत्पादित किया जाय, कैसा उत्पादित किया जाए, किन कीमतों पर बेचा जाय । कहाँ से खरीदा जाय और कहाँ बेचा जाय आदि सभी क्रियाएं सरकारी नियंत्रण के आधीन संचालित होने लगी है । इसके साथ-साथ विपणन प्रक्रिया में संलग्न कर्मचारियों का वेतन कितना हो, कार्य की स्थितियाँ कैसी हों आदि अनेक क्रियाएं सरकारी हस्तक्षेप का क्षेत्र बनती जा रही है । राशनिंग, कन्ट्रोल, आयात-निर्यात, उत्पाद शोध एवं विकास आदि भी राजकीय नियमों एवं नीतियों के अनुसार विपणन पर नियंत्रण करने लगे हैं । यातायात, वित्त संचार, बैंक, बीमा, तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में राजकीय हस्तक्षेप पनप रहा है । सरकार वांछनीय विधान, कानून तथा क्रियाविधियों को निश्चित करके, कुशल श्रमशक्ति का निर्माण करके तथा विदेशी व्यापार पर प्रभाव डालकर विपणन विकास को प्रोत्साहित कर सकती है । इस प्रकार सरकार प्रत्यक्ष उपभोक्ता बचत करने वाले, बीमाकर्ता तथा गारण्टी देने वाले, उत्पादन करने वाले अभिकरण के रूप में आर्थिक विकास तथा विपणन विकास में बढ़ावा दे सकती है ।

सरकार निम्नलिखित आर्थिक क्रियाओं के सम्पादनकर्ता, नियंत्रणकर्ता एवं निभायक के रूप में विपणन के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रही है । -

1. <u>विपणन विकास हेतु आधारभूत ढांचा तैयार करना</u> - सरकार विपणन विकास की भूमिका तैयार करती है । इस भूमिका को कार्य रूप देने के लिये आर्थिक विकास का ढांचा तैयार करती है । इस कार्य हेतु विभिन्न प्रकार के यातायात का विकास करना, सुचारु सुविधाएं उपलब्ध करना तथा विपणन अनुसंधान के लिये सुविधाएं उपलब्ध की जाती है । इस आधारभूत ढांचे के निर्माण के साथ ही आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है और विपणन संस्थाओं को अपने लक्ष्यों की स्थापना तथा पूर्ति में सहयोग मिलता है ।

2. <u>नियमन एवं नियंत्रण करना</u> - सरकार देश में सभी प्रकार की वस्तुओं को उपलब्ध कराने, जमाखोरी एवं मुनाफाखोरी को दूर करने, खाद्य मिलावट के निवारण हेतु तथा अन्य विभिन्न कारणों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न के अधिनियम बनाकर विपणन एवं व्यवसाय को नियंत्रित करती है । उदाहरण के लिये लाइसेन्सिंग औद्योगिक नीति द्वारा विद्यमान उद्यमकर्ताओं के उद्योगों का नियमन तथा नियंत्रण किया जाता है । एकाधिकारक प्रतिबन्धात्मक व्यापार व विधि अधिनियम, 1969 द्वारा एकाधिकारी प्रवृत्तियों को नियंत्रित व नियमित किया जाता है । इसी प्रकार अंश पूंजी, निर्गमन वस्तुओं की किस्म का नियमन, कीमतों का नियंत्रण लाभ वितरण का नियमन हानिकारक तथा अस्वास्थ्यप्रद वस्तुओं एवं दवाओं के उपभोग का नियंत्रण स्टाक एक्सचेंजों एवं उपज एक्सचेंजों का नियमन आदि वर्क राज्य करता है ।

3. <u>विपणन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेकर</u> - सरकार विपणन विकास को तीव्र करने तथा आर्थिक विकास में सन्तुलन लाने के लिए स्वयं विपणन क्रियाओं में प्रत्यक्षत: भाग लेती है । सरकार कभी-कभी राष्ट्रीयकरण की नीति को अपनाकर प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करती है । इसके अतिरिक्त अनेक सहायक क्रियायें जैसे - बीमा, यातायात, सिंचाई, विद्युत संचार आदि को सम्पूर्ण रूप में सरकार स्वयं ही सम्पन्न करती है । औद्योगिक क्षेत्र में अपने स्वयं उद्योग खोलती है । राशनिंग एवं कीमत नियंत्रण के द्वारा वितरण को संचालित करती है । राजकीय व्यापार निगम के माध्यम से वस्तुओं का आयात-निर्यात सरकार करने लगी है । खाद्यान्नों के आन्तरिक व्यापार में सरकार ने हस्तक्षेप प्रारम्भ कर दिया है ।

4. <u>विदेशी व्यापार का नियमन</u> - विपणन विकास में विदेशी व्यापार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । इसलिये सरकार उन विदेशी व्यापार नीतियों को अपनाकर विदेशी व्यापार का नियमन करती है । जिससे आयात कम होते हैं तथा निर्यात बढ़ते है । परिणाम स्वरूप, विदेशी व्यापार सन्तुलन राष्ट्र के पक्ष में रहता है । कभी कभी विदेशी वस्तुओं के आयात पर भारी तस्कर लगाकर स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण भी दिया जाता है ।

5. <u>मूल्य नीति का निर्धारण एवं क्रियान्वयन करना</u> - आर्थिक विकास की दृष्टि से एक सीमा से परे तथा नीचे मूल्यों का बढ़ना एवं गिरना ठीक नहीं समझा जाता है । मूल्यों में स्थिरता लाने की दृष्टिकोण से सरकार

एक उचित मूल्यनीति को अपनाती है । जिससे वस्तुएं उचित कीमतों पर उपलब्ध हो सके, वांछित दिशाओं में साधनों को प्रवाहित किया जा सके, उत्पादन में सतत् वृद्धि हो सके और मांग पूर्ति में अनावश्यक उतार चढ़ाव न हो । अनेक बार कीमत नियंत्रण तथा कीमत समर्थन की नीतियां भी सरकार अपनाती है ।

6. राजकीय एवं मौद्रिक नीतियों द्वारा नियमन करना - आजकल सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा उपभोग को नियंत्रित करके राष्ट्रीय बचत को बढ़ाती है, विनियोग दरों में वृद्धि करती है और विनियोजनार्थ पर्याप्त धन सरकारी हाथों में उपलब्ध कराती है । मौद्रिक नीति के द्वारा सरकार आर्थिक क्रियाओं के सामान्य स्तर को नियमित करती है । ऐसे कार्य हेतु बैंक दर की नीति, खुले बाजार की क्रियाएं, चयनात्मक साख नियंत्रण अधिक सहारा लिया जाता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरकार देश में आर्थिक विकास, आर्थिक, समानता आर्थिक स्थिरता हेतु सम्पूर्ण व्यवसायिक एवं विपणन क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है जिससे सामान्यतः जनहित में वृद्धि होती है ।

प्रमुख व्यवसाय - सरकार सम्बन्ध प्रतिरूप

विपणन, व्यवसाय एवं सरकार के बीच के सम्बन्धों को निश्चित करने अथवा राज्य के हस्तक्षेप की सीमाओं को तय करने में दिशा निर्देशन

(ब) वाणिज्यवादी प्रतिरूप - वाणिज्यवादी प्रतिरूप काफी पुराना है । यह प्रतिरूप 17वीं शताब्दी से चला आ रहा है । महाद्वीपीय यूरोप में अनेक राष्ट्र विशेषकर फ्रांस इसे आज तक अपनाये हुए है । जापान में विपणन सरकार संबंधों के निर्धारण में यह प्रतिरूप महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । ब्रिटिश एवं स्वतंत्र भारत में इस प्रतिरूप ने विपणन सरकार संबंधों को विशिष्ट संरचना को जन्म दिया है । साम्यवादी रूप में भी विपणन व्यवसाय एवं सरकार सम्बन्ध मार्क्स की तुलना में वणिकवादिता के अधिक निकट है । इस प्रतिरूप की मुख्य विशेषताएं निम्न है :

(क) निर्यात विपणन वृद्धि पर विशेष बल दिया गया है । निर्यात अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ एवं विकसित करते है । दूसरे शब्दों में निर्यात उद्देश्य तथा कार्यकुशलता के मापदण्ड होते हैं ।

(ख) औद्योगिक विवाद पारस्परिक कर्ताओं तथा सरकारी हस्तक्षेप के जरिये निपटाये जाते हैं ।

(ग) अर्थव्यवस्था राजनैतिक प्रभुसत्ता को आधारशिला होती है । अर्थ-व्यवस्था एवं राजनैतिक प्रभुसत्ता को यह प्रतिरूप सहविस्तृत मानता है ।

(घ) यह प्रतिरूप विश्व के विरुद्ध अपनी अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक प्रभु-सत्ता को स्थापित एवं संगठित करने पर बल देता है, अर्थव्यवस्था का प्रमुख कार्य राष्ट्र के अस्तित्व को बचाने हेतु आवश्यक साधन उपलब्ध करना होता है ।

§ङ• § उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं मांगों, रूचि, फैशनों एवं संस्कृति को ध्यान में रखते हुए उत्पादन किया जाता है जिससे कि उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सन्तुष्ट रखकर उनके कल्याण में वृद्धि किया जाता है।

§स§ <u>संविधानवादी प्रतिरूप</u> - विपणन सरकार सम्बन्धों से निश्चित करने वाला संविधानवादी प्रतिरूप 19वीं शताब्दी की देन है। यह प्रतिरूप स्वतंत्र व्यापार नीति में विश्वास नहीं रखता है। इस प्रतिरूप में राज्य विपणन कर्मियों एवं व्यवसायकर्ताओं के प्रति सदैव शंकित रहता है। संविधानवादी मॉडल संयुक्त राज्य अमेरिका की देन है। इसकी विशेषताएं निम्न है :

§क§ यह विपणन गतिविधियों के लिए राजनैतिक नैतिकता की सीमाएं निश्चित करता है अर्थात् विपणन एवं व्यवसाय के सरकार से रखने पर विशिष्ट बल इस प्रतिरूप में दिया गया है।

§ख§ यह स्वतंत्र व्यापार नीति में विश्वास नही रखता। इसकी मान्यता है कि सरकार विपणन एवं अर्थव्यवस्था से बाहर नही रह सकती।

§ग§ संविधानवादी एण्टीट्रस्ट कानूनों, विनियम करने वाले एजेन्सियों तथा आपराधिक अभियोगों का प्रयोग करता है। अर्थात यह मॉडल विपणन सरकार सम्बन्धों को कानूनों के जरिये विनियमित एवं नियंत्रित करता है न कि प्रकाशित।

§घ§ यह प्रतिरूप विपणनकर्मियों एवं व्यवसायकर्ताओं के व्यवहारों के प्रति
XX राज्य की दृष्टि से सदैव शंकित रहता है । इस प्रतिरूप का यह
मानना है कि विपणनकर्ता, व्यवसायी एवं उसके संघ विपणन सरकार
सम्बन्धों की स्थापना में सहयोग नहीं करती है ।

§ङ॰§ इस प्रतिरूप में वाणिज्य विभाग अथवा वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय
विपणन का प्रतिनिधित्व करता है और सरकारी नीतियों के क्रिया-
न्वयन का कार्य भी करता है ।

वाणिज्यवादी एवं संविधानवादी प्रतिरूप राजनीतिक अथवा प्रशासनिक
सिद्धांत के बौद्धिक प्रतिरूप है । वे क्या होना चाहिए, के मानक हैं । और
वास्तविकता सदैव आदर्श तक नहीं पहुंच पाती है ।"[23] इस प्रकार स्पष्ट है
कि दोनों प्रकार के प्रतिरूप सफलता प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं । वाणिक-
वादी प्रतिरूप में भी प्रारम्भ से ही विपणन - सरकार में तनाव रहे हैं और
विरोधी सम्बन्ध पैदा होते गये हैं । व्यवसाय अथवा विपणन प्रशासनिक
नियंत्रण की पकड़ से फिसलता रहा है । जापान में विपणन व्यवसाय एवं
सरकार एक दूसरे को जितना साझेदार समझते है, उतना ही विरोधी भी ।
इसी प्रकार संविधानवादी मॉडल में भी कई प्रवेश द्वार पैदा हो गये हैं ।

---

23. पीटर एफ॰ ड्रकर "मैनेजमेंण्ट टास्क, रिसपान्सबिल्टीज एण्ड
प्रेक्टिसेस" पृष्ठ 356

व्यवसाय को सरकार से बाहर रखने की बात कहने वाला प्रतिरूप अपनी बात नहीं रख सकता है । उनके विपणन क्रियाएं व्यवसाय एवं उद्योग आय सरकार के हाथ में है । वास्तव में दोनों प्रतिरूप समयातीत हो चुके हैं और विपणन व्यवसाय एवं सरकार को अधिक मार्गदर्शन देने को स्थिति में नहीं है । यह प्रतिरूप नवीन सम्बन्ध समस्याओं के हल में भी अधिक सक्षम नहीं है अत: विपणन जगत में एक नये प्रतिरूप की आवश्यकता महसूस की जाने लगी ।

नवीन प्रतिरूप की आवश्यकता

विश्व समाजों का आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तकनीकी वातावरण इतना बदल गया है और बदलता जा रहा है कि विपणन-सरकार सम्बन्धों को निर्धारित करने से सम्बद्ध समस्याओं के निवारण के लिए एक नये प्रतिरूप को आवश्यकता है । यद्यपि किसी नये प्रतिरूप का विकास अतिकम समय में नहीं हो सकता, फिर भी नये प्रतिरूप के विकास के लिए जिस-जिस विशिष्ट बातों की पूर्णापेक्षा हम अनुभव करते है, उनको ध्यान में रखकर वर्तमान की विशिष्ट समस्याओं को निपटाया जाना चाहिए । ऐसा करने पर भी एक नया राजनीतिक सिद्धांत और एक नया प्रतिरूप, जो अभी अज्ञात है, प्राप्त किया जा सकता है । ऐसे मॉडल की कुछ प्रमुख आवश्यकताएं अथवा विशिष्टताएं इस प्रकार होनी चाहिए ।

1. आर्थिक संगठन तभी भली प्रकार काम कर पाते है जब कि इन्हें पर्याप्त स्वायत्ता एवं जवाबदेहिता उपलब्ध हो । ऐसी स्वायत्ता एवं जवाबदेहिता गत्यात्मक अर्थव्यवस्था, सुदृढ़ प्रभावी प्रबन्ध तथा सामाजिक खुशहाली के लिए आवश्यक मानी गयी है । इस लिये नया मॉडल ऐसा होना चाहिए । जो अधिक केन्द्रीयकरण व नियंत्रण पर विश्वास न रखता हो, अपितु पर्याप्त विकेन्द्रीयकरण को जरूरी समझता हो । साथ ही प्रतिरूप ऐसा होना चाहिए जिसमें सरकार को प्रभावी नियंत्रण हेतु अधिक जटिल कानूनों की आवश्यकता न हो ।

2. पेशेवर प्रबन्धक वर्ग का विकास तीव्रता से हो रहा है । विपणन के सामाजिक दायित्वों एवं नैतिक आचरणों पर व्यवसायी विचार करने लगे है । विपणन लोक प्रकाशन के लिए एक मॉडल बनता जा रहा है । इन परिस्थितियों में नया प्रतिरूप ऐसा होना चाहिए जोसक्रिय, स्वस्थ एवं सुदृढ़ जनतंत्रीय सरकारों को जन्म दे सके । सरकारों का राजनीतिक निर्णयनकर्ताओं के रूप में बने रहना आवश्यक है । किन्तु प्रतिरूप ऐसा हो कि सरकारें बहुत कुछ करने का केवल आश्वासन ही न दे सके बल्कि कर सके ।

3. मिश्रित अर्थव्यवस्था को उचित स्थान देकर ही कोई राष्ट्र अपना तीव्र तथा सन्तुलित विकास कर सकता है वर्तमान में यह स्पष्ट हो चुका है कि केवल सरकारें अथवा केवल निजी व्यवसाय किसी जन समाज की

जरूरतों को पूरा करने में सक्षम नहीं हो सकते । इसलिये नया प्रतिरूप ऐसा होना चाहिए जो मिश्रित अर्थव्यवस्था की विद्यमानता को स्वीकार हो ।

4. नया प्रतिरूप ऐसा होना चाहिए जो बहुराष्ट्रों को विश्व अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्र राज्यों की प्रभुसत्ता के बीच तालमेल बिठा सके और शान्ति पूर्ण आस्तित्व को जन्म दे सके ।

भारत में विपण्न सरकार सम्बन्ध

भारत में स्वदेशी सरकार और स्वतंत्र प्रजातांत्रिक समाज उत्कट अंकांक्षा एवं अटूट मनोबल के साथ अपने विगत के कलेवर को सराहनीय अधीरता के साथ बदलने के लिए संघर्षरत है, उसकी मिसाल आजादी के पहले के सदियों पुराने भारतीय इतिहास में देखने को नही मिलती है ।[24] सम्पूर्ण भारत आज गरीबी विषमता और पिछड़ेपन से एक जुटहोकर लड़ रहा है । शासन में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास को गत्यात्मक सुनिश्चित दिशा देने का पुनीत संकल्प लिया है ताकि समाजवादी समाज की संरचना पर आधारित कल्याणकारी राज्य की स्थापना अतिशीघ्र की जा सके ।[25]

---

24. ए. दास गुप्ता, बिजनेस एण्ड मैनेजमेण्ट इन इण्डिया" 1975 पृष्ठ 3

25. इण्डिया, 1955, पृष्ठ 123

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये राज्य में आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप की नीति को प्रशासनिक नीतियों में प्रमुख स्थान दिया है । भारत की केन्द्रीय सरकार आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने हेतु जिन नीतियों का अनुसरण करती है, वे भारत के संविधान में उत्पन्न होती है । सक्रिय हस्तक्षेप के लिए सरकार पंच-वर्षीय योजनाओं, औद्योगिक नीति प्रस्तावों, औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम और अन्य अनेक प्रशासनिक अध्यादेशों तथा कानूनों का सहारा लेती है । भारतीय व्यवसाय का कोई ऐसा कोई अंत नहीं है जो सामाजिक हित को प्रभावित करता हो और उसका नियमन नियंत्रण सरकार द्वारा न किया जाता हो । वस्तुत: सरकार ने भारतीय व्यवसाय एवं विपणन के अंग-प्रत्यंग पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर रखा है । इस कठोर नियंत्रण के पीछे भारतीय विपणन की अपनी विशेषताएं तथा राजकीय नीतियां उत्तरदायी है । [26]

वर्तमान भारतीय आर्थिक जगत में राज्य ने अनेक रूपों में सक्रिय हस्तक्षेप किया है । राज्य हस्तक्षेप करते समय सामाजिक तथा राष्ट्रीय हितों के संरक्षण एवं विकास से प्रेरित एवं दर्शित होता रहा है । व्यवसाय एवं विपणन के क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप का स्वतंत्र भारतीय दशाओं में अवलोकन करने पर पता चलता है कि व्यवसाय में विपणन सरकारी हस्तक्षेप प्रमुखता चार रूपों में हुआ है । प्रथम

---

26. पी. टी. नायर, "इण्डियन इकोनामिक पालसी एण्ड डेवलपमेंट, 1965 पृष्ठ 86

रूप में राज्य ने उन विपणन क्रियाओं का नियंत्रण तथा नियमन किया है और कर रही है जिनसे अधिकारियों, कर्मचारियों तथा उपभोक्ताओं के हितों को नुकसान पहुंचा है अथवा पहुंचने की संभावना है । दूसरे में राज्य ने निर्बल वर्गों के रक्षक के रूप में हस्तक्षेप किया है और निरन्तर करती जा रही है । समय-समय पर वृहद विपणन की बढ़ती हुई शक्ति के शमन हेतु भी कदम उठाया है । एकाधिकारी स्थितियों और औद्योगिक संयोजकों के प्रति भी अनुदार रवैया अपनाया है । तीसरे रूप में राज्य ने स्वयं को व्यवसायी बनकर व्यवसाय एवं विपणन के क्षेत्र में प्रवेश किया है और आर्थिक क्रियाओं पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिये राजकीय उपक्रमों की स्थापना के अभियान को तीव्र किया है जिससे देश के आर्थिक जीवन की काया पलट प्रारम्भ कर दी है । चतुर्थ रूप में राज्य ने देश के संसाधनों के विदोहन और समुचित उपयोग को संभव बनाने के लिये प्रबन्ध के रूप में हस्तक्षेप किया है । यह हस्तक्षेप विशाल पंचवर्षीय योजनाओं के रूप में हमारे सामने प्रकट हो रहा है ।

विपणन में राज्य के बढ़ते हस्तक्षेप ने सरकार तथा व्यवसाय के सम्बन्धों मेंतनाव, खिंचाव, अविश्वास और असहयोग को बढ़ाना शुरू कर दिया है आज विपणन और सरकार के सम्बन्ध लगभग टूट से गये है और एक दूसरे के प्रति शत्रुता भाव । [27] रखते हुए पारस्परिक लक्ष्यों की पूर्ति के मार्ग में बाधाएं

---

27. टी. एम. गारेट "बिजनेस एथिक्स "पृष्ठ 197

उपस्थित कर रहे हैं । यह स्थिति सोचनीय और अवांछनीय है । क्योंकि सरकार तथा विपणन दोनों ही संस्थाएं समाज की देन है और समाज के लिए समाज के सहयोग से जीवित है, शक्ति सम्पन्न है इसलिए जब दोनों संस्थाओं का आधार तथा लक्ष्य एक ही है तब दोनों के बीच सम्बन्धों का बिगड़ना अथवा पारस्परिक शत्रुता भाव को विकसित करना समझ में न आने वाली तथा लम्बे समय तक न चलने वाली स्थिति है । यह परम् आवश्यक है कि विपणन व्यवसाय और सरकार के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित की जिससे हमारा भारत वर्ष उन्नति के सोपान पर चढ़ सके । इसके लिए आवश्यक है कि हम सरकार व विपणन सम्बन्धों में सुधार के उपायों पर विचार करें तथा सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु तथा सामाजिक हितों के संवर्द्धन हेतु सरकारी तथा गैर - सरकारी संस्थाओं की भूमिका और नीतियों पर चिन्तन करें । यह सामयिक चिन्तन और विवेकपूर्ण निष्कर्षों का हार्दिक अनुपालन ही वर्तमान भारत की सर्वोपरि अपेक्षा है ।

विपणन सरकार सम्बन्धों को सहयोगी, सहकारी तथा उत्पादक बनाने से सम्बद्ध पहलुओं पर चिन्तन करते समय हमें दो ध्रुव तत्वों को ध्यान में रखना होगा । प्रथम कि राजकीय हस्तक्षेप राष्ट्रीय आर्थिक जीवन का अभिन्न अंग है और आर्थिक क्षेत्र में राजकीय हस्तक्षेप का औचित्य या अनौचित्य का निर्धारण समयातीत प्रश्न है ।[28] द्वितीय निजी क्षेत्र की सहायता और उसका विपणन

---

28. सेन गुप्ता "गर्वनमेंण्ट एण्ड बिजनेस, सिस्टम आफ एडमेनीट्रि अव कन्ट्रोल पृष्ठ 34

राष्ट्र की स्थायी गत्यात्मक प्रगति के लिए परमावश्यक है जिसकी अवहेलना भारत की प्रगति व समृद्धि की मंजिल को बहुत दूर कर देगी । विपणन, व्यवसाय एवं उद्योग करने वालों को यह मानकर चलना होगा कि राजकीय हस्तक्षेप तथा नियंत्रण समाज के हित में हैं । इसलिये उसका अतिक्रमण नही होना चाहिए अन्यथा हस्तक्षेप तथा नियंत्रण का घेरा बढ़ता चला जायेगा जो उनके अस्तित्त्व को अन्तिमत: समाप्त कर देगा ।

राज्य एवं विपणन के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध को सौहार्द पूर्ण बनाये हेतु मानसिक क्रांति के उत्पन्न होने पर ही भारत अपने कल्याणकारी राज्य और समाजवादी समाज की संरचना के पुनीत संकल्पों को पूरा कर सकता है यह मानसिक क्रांति तभी उत्पन्न हो सकती है जब कि सरकार विपणन की अपेक्षाओं तथा विपणन सरकार की अपेक्षाओं को समझे । विपणन सरकार से यह अपेक्षा रखता है कि सरकारी नियम कानून नियंत्रण आदेश और पद्धति व्यवसाय के सतत् विस्तार में बाधक न बने । सरकार भी विपणन से अपेक्षा करती है कि व्यवसायी कानूनों का पालन करें, सीधा भुगतान करें, मिलावट न करें, चोरबाजारी को प्रोत्साहित न करे, संचय न करें, कीमतों में वृद्धि न करे, प्रतिबन्धात्मक व्यापार न करें, और राजकीय नीतियों का पालन करते हुए सामाजिक कल्याण हेतु कार्य करें ।[29] इन पारस्परिक अपेक्षाओं को कोई

---

29. ए. दास गुप्ता, "बिजनेस एण्ड मैनेजमेण्ट इन इण्डिया" सन् 1970 पृष्ठ 269

भी बुद्धिमान समाज और प्रबुद्ध संस्था अनुचित नही मानेगी । ये अपेक्षाएं प्राकृतिक और स्वाभाविक है । इसलिये विपणन और सरकार को इन अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु उनकेन्द्रीय विषयक तनाव और अविश्वास को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए ।

भारत में विपणन सरकार सम्बन्धों में तनाव है जब कि विपणन सरकारी नियमों और नियंत्रणों को अनावश्यक नही मानता है और न ही उसका विरोध करता है तथा सरकार भी विपणन के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखती है । एवं उस पर विश्वास करती है । यद्यपि यह निर्विवाद है कि जितने भी कानून एवं नियंत्रण हमारे देश में विपणन क्रियाओं के नियमन हेतु बनाये व लगाये गये हैं वे स्वयं अविश्वास पर ही आधारित है । स्वतंत्रता के बाद विपणन को अपनी चारित्रिक ईमानदारी और विवश का परिचय देने का कोई अवसर ही नही दिया गया है और नियन्त्रणों का प्रयोग यह मानकर किया गया है कि उनके बिना राष्ट्रीय हित में विपणन कतई कार्य नही करेगा ।[30] विपणन सरकार सम्बन्धों के बिगड़ने तथा तनावपूर्ण होने का कारण सरकार द्वारा राजनीतिक मूल्यों के आरोपण की भांति आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक मूल्यों का आरोपण करना है ।[31]

---

30. ए. एन. अग्रवाल "दि चेन्जिंग डिमेंशन आफ इण्डियन मैनेजमेंट" पृष्ठ 38

31. एन. के. सेठी "मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव" सन् 1972 पृष्ठ 103

विद्यमान विपणन सरकार सम्बन्धों में सामंजस्य के अभाव में दो महत्त्वपूर्ण कारण है । प्रथम राजकीय हस्तक्षेप एवं नियन्त्रणों का क्षेत्र का निर्धारण द्वेषपूर्ण तरीके से होता है । द्वितीय नियंत्रण तथा हस्तक्षेप की पद्धति अविवेकपूर्ण है ।[32] वास्तव में हस्तक्षेप एवं नियंत्रणों की नीतियों तथा क्षेत्रों के निर्धारण में विपणन व्यवसाय एवं उद्योग का प्रतिनिधित्व प्रभावी तौर पर उपलब्ध किया जाना चाहिए ताकि निर्धारित नीतियां और क्षेत्र सहभागी निर्णयों का परिणाम बनकर आ सके और तदुपरान्त विपणन अथवा सरकार को असहयोग करने पर दोषी ठहराया जा सके । इस प्रकार दूसरे कारण के सम्बंध में यह कहा जा सकता है कि सरकार ने अधिकारीगण गुलाम भारत के शासनाधिकारियों की मनोवृत्ति को अपनाकर हस्तक्षेप करते हैं तथा नियंत्रण लागू करते है जिससे व्यवसायिक वर्ग के कठिनाई होती है, उनके सम्मान को ठेस पहुंचती है । और अनैतिक व्यवहारों का जन्म होता है । इस लिये वर्तमान में सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है सरकार हस्तक्षेप और नियंत्रण के क्षेत्रों का निर्धारण करते समय सम्बद्ध व्यवसाय एवं विपणन पत्रों का सक्रिय सहयोग अवश्य ले और नियंत्रणों को लागू करते समय यह ध्यान रखे कि विपणन वर्ग दूसरे दर्जे का नागरिक नहीं है । अनावश्यक परेशानियां पैदा करना अविश्वास करना, वैधानिक मुद्दों पर ध्यान न देना सरकारी नियंत्रण के दोष रहे है । जिन्हें

---

32. ए. दास गुप्ता, "बिजनेस एण्ड मैनेजमेंट इन इण्डिया" सन् 1975
पृष्ठ 171.

दूर किया जाना चाहिए । इस सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग की निम्नांकित दो सिफारिशों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(अ) जहाँ किसी विशिष्ठ नियंत्रण से जनता प्रत्यक्ष सम्बद्ध हो वहाँ जनता को परामर्शात्मक स्थान में साथ लेकर नीति तथा उसके कार्यान्वयन का तरीका निर्धारित किया जाना चाहिए । ऐसी सद्भाविकता अर्थपूर्ण होनी चाहिए तथा जहाँ मान्यता प्राप्त परिषदें हो वहाँ सरकारी विचार विमर्श में उन्हें सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

(ब) नियंत्रण के परिपालन को यदि गुप्त रखा जाता है तो इससे कठिनाई और भ्रष्टाचार पैदा होता है । इसलिये जहाँ तक संभव हो सके लाभकारियों के नाम लोग जानकारी के लिए प्रकाशित कर देना चाहिये ।

निष्कर्ष के तौर पर विपणन सरकार सम्बन्धों में सुधार करने के लिए यह कहा जा सकता है कि राजकीय हस्तक्षेप एवं नियंत्रण की नीति व क्षेत्रों का निर्धारण व्यवसाय विपणन और सरकार को मिलकर करना चाहिए और नियंत्रणों के लागू करते समय सरकारी अधिकारियों को विपणन की क्रियाओं पर अविश्वास नहीं करना चाहिए, तथा उनके द्वारा विपणन व्यवसाय को कठिनाई में नही डालना चाहिए । इसके अतिरिक्त विपणन को अधिकाधिक सहयोग देने के लिए प्रेरित करना चाहिए ताकि नियंत्रणों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सके । इन पारस्परिक संबन्धों में सुधार होने पर ही भारत की समस्त योजनाएं

और संकल्प पूरे किये जा सकते है । इसलिए विपणन सरकार का ऐसा अपूर्व दर्शन विकसित किया जाना चाहिए जो सहकारी हो, उत्पादक हो और पारस्परिक सम्मान और विश्वास पर आधारित हो और जो विश्व के उन राष्ट्रों के लिये भी अनुकरणीय हों जिनकी अर्थ व्यवस्थाएं पूंजीवाद की ओर झुकी हुई है अथवा साम्यवाद की ओर झुकी हुई है और दोनों अतियों के दोषों से ग्रसित है तथा उनसे प्राप्ति के लिए छटपटा रही है । इस महान चुनौती को पूरा करने के लिए ऐसा वातावरण तैयार किया जाना आवश्यक है जो इस बात पर बल देता हो कि सरकार विपणन वर्ग के प्रति उतना ही सद्भाव रखती है जितना कि वह समाज के अन्य वर्गों के लिए और सरकार विपणन को अपना पूरक मानकर भारत की जनता के संकल्पों को पूरा करने की इच्छा रखती है । इस सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों तथा विपणनकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी जाने चाहिए ताकि मानसिक क्रांति शीघ्र उत्पन्न हो सके । यह निर्विवाद है कि विपणन का सर्वांगणीय विकास सरकार की उचित भूमिका के अभाव में संभव नहीं है । विपणन सरकार के मध्य परस्पर मधुर संबंधों का होना परम आवश्यक है जिससे कि राष्ट्र का विकास किया जा सके ।

द्वितीय सर्ग

विपणन में राजकीय हस्तक्षेप का स्वरूप

द्वितीय सर्ग

विपणन में राजकीय हस्तक्षेप का स्वरूप

लोक कल्याणकारी राज्य की विचारधारा मानव समाज के लिए नवीन नहीं है कारण की राज्य की दार्शनिक संकल्पना एवं मूल प्रकृति में ही लोक कल्याण की भावना अर्न्तनिहित है।[34] राज्य की दार्शनिक संकल्पना बताती है कि राज्य किसी सामूहिक जीवन को संगठित करने का एक मार्ग है। राज्य जैसी कानून निर्माता संस्था के अभाव में मानव समाज, "जीवन" "स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति" के अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकेगा और उसका आस्तित्त्व दयनीय बन कर रह जायेगा। राज्यों का आस्तित्त्व ही श्रेष्ठ जीवन के सम्बर्द्धन के लिए है।[35] राज्य की दार्शनिक संकल्पना इस बात की पुष्टि करती है कि राज्य का स्वरूप प्रजातांत्रिक हो या अधिनायकवादी, साम्यवादी हो या फासिस्ट, पूंजीवादी हो या समूहवादी, गणतंत्रीय हो या राजतांत्रीय, किन्तु लोक

---

34. विलियम एबेन्सटिन "ग्रेट पोलिटकल थिंकर" 1967 पृष्ठ 808 इण्डियन एडीसन ।
35. एच० जे० लास्थी "द स्टेट, थियरी एण्ड प्रेक्टिस" 1967

कल्याण का विचार उस राज्य के समुदाय में जब तक विद्यमान है और सरकार लोक कल्याण के उत्तरदायित्व को निभाती है तब वह राज्य लोक कल्याणकारी माना जायेगा ।[36]

राज्य द्वारा व्यवसायिक क्रियाओं एवं गतिविधियों के अंतर्गत प्रतिबन्धात्मक भूमिका का सम्पादन अनेक वैधानिक व्यवस्थाओं के आधार पर किया जाता है । राज्य के विधान या संविधान के अन्तर्गत जनप्रतिनिधियों से निर्मित सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में विधान बनाने सम्बंधी व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं जिसके माध्यम से राज्य व्यवसायिक क्रियाओं पर नियंत्रण करती है । आधुनिक परिवेश में राज्य बदलती परिस्थितियों एवं जन आकांक्षाओं के अनुरूप जन आवश्यकता को ध्यान में रखकर तथा शोषण विहीन समाज की स्थापना के उद्देश्य को पूरा करने के लिए व्यापारिक क्रियाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग ले रही है । इस प्रकार आधुनिक गलाकार प्रतियोगिता में जमाखोरों एवं मुनाफाखोरों से उपभोगताओं के हितों की रक्षा करना लोक कल्याणकारी राज्य का एक प्रमुख ध्येय बन गया है ।

विपणन में राजकीय हस्तक्षेप को सुविधा के अनुसार दो वर्गों में वर्णित किया जा सकता है –

---

36. विलियम एबेन्सटिन "ग्रेट पोलिटकल थिंकर" 1967

(क) स्वयं राज्य द्वारा विपणन क्रियाओं में सम्मिलित होना ।

(ख) विभिन्न प्रकार के नियमन के माध्यम से विपणन की क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना ।

(क) स्वयं राज्य द्वारा विपणन क्रियाओं में सम्मिलित होना -

वर्तमान में प्रत्येक देश की सरकारें विपणन को संरक्षण प्रदान करने और उनके विकास विस्तार हेतु शान्तिपूर्ण व्यवस्था बनाए रखती है और विपणन के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है । प्रत्येक देशों की सरकारें अपने अपने देश में समाजवादी समाज की स्थापना करने एवं समाज के सभी वर्गों के लोगों के आर्थिक विकास तथा उनकी आवश्यकता की सभी वस्तुऐं उपलब्ध कराने के लिये कृतसंकल्प है । समाज में व्याप्त जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं मिलावट जैसी कुरीतियों को दूर करने तथा अधिक से अधिक जनकल्याण करने के उद्देश्य से सरकार स्वयं विपणन क्रियाओं में शामिल होती है जिससे उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक संतुष्टि प्रदान कर उनके रहन-सहन के स्तर में वृद्धि किया जा सके । इस प्रकार राज्य या तो स्वयं व्यवसायिक कार्य करता है अथवा राज्य की ओर से कोई संगठन अथवा संस्था व्यवसायिक या विपणन क्रियाओं को पूरा कराता है । संक्षेप में राज्य विपणन क्रियाओं को न्यायोचित ढंग से चलाने के लिये तथा समता समानता एवं शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिए स्वयं व्यापार करती है जिसे हम राजकीय व्यापार कहते हैं ।

राजकीय व्यापार

किसी भी देश के योजनाबद्ध विकास में राज्य द्वारा किया गया व्यवसाय अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। योजनाबद्ध विकास में, जहाँ पर समस्त महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाओं को योजना के अन्तर्गत आपस में संगठित व समन्वित कर दिया जाता है, उस परिस्थिति में यह युक्तिसंगत न होगा कि व्यवसाय को उसकी अनिश्चितता व उच्चा-वचन के सहारे छोड़ दिया जाय, जिससे कि यह अनिश्चितता व उच्चा-वचन व्यापार को जहाँ भी ले जायें। राज्य व्यापार का उद्देश्य यह है कि वह निश्चित रूप से योजना के ऊपर, जहाँ पर की पूरा व्यवसाय सरकार द्वारा किया जाता है आश्रित रहती है। योजनानुसार देशों की इच्छा यह नहीं होती कि वह व्यक्तिगत एजेन्सियों के माध्यम से व्यवसाय को सम्पादित करें। देश के शासक व्यवसाय में राजकीय हस्तक्षेप उचित समझते है। इसमें छोटे-छोटे व्यापारियों द्वारा वृहत पैमाने से होने वाली समस्याओं से बचा जा सकता है और इसके साथ ही साथ सरकार अपने किये गये वायदों को ईमानदारी से पूरा करने के लिए कृत संकल्प होती है। राज्य द्वारा व्यापार करने वाली सरकार, निजी व्यापार करने वाले देशों से भी समझौता करने से सक्षम होती है जिससे कि निजी व्यापारियों द्वारा किये गये शोषण से भी बचा जा सकता है।

राजकीय व्यापार का मूल उद्देश्य उन देशों के साथ व्यापार को सुगम बनाना है जहां व्यापार सरकार के हाथ में हो और सरकार को उन कठिनाइयों और समस्याओं का समाधान करने में सहायता देना है जिनके लिए निजी व्यापारिक वाहिकाएं अपर्याप्त हों । राजकीय व्यापार निजी व्यापारिक देशों को समान सौदेबाजी की शक्ति के साथ सौदा करने की शक्ति देता है । और इस प्रकार उस शोषण के विरुद्ध रक्षा करता है जिसका एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले बड़ी संख्या में आयातकों और निर्यातकों को एकाधिकारवादी व्यापारिक एजेन्सी से सामना करना पड़ता है ।

राजकीय व्यापार की परिभाषा :-

राज्य द्वारा किये गये व्यवसाय की परिभाषा समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने दी है । सभी विद्वानों की अपनी अलग-अलग परिभाषा हैं । कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें निम्न हैं :-

"संकुचित अर्थ में राज्य व्यापार का तात्पर्य राज्य द्वारा किये गये आयात व निर्यात से या ऐसी एजेन्सियों जो कि राज्य द्वारा नियंत्रित हों, वे व्यवसायिक क्रय-विक्रय हेतु वस्तुओं को खरीदें व बेचें ।" [37]

---

37. रिपोर्ट आफ कमेटी आन स्टेट ट्रेडिंग, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, नई दिल्ली 1950 पृष्ठ 5

"विस्तृत अर्थ में राज्य व्यापार का अर्थ सरकार की ओर से विदेशों से माल की खरीद तथा आधिक्य वाले भण्डार का सरकार के आदेशानुसार देना ।"[38]

"जिस समय राज्य वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन या वितरण, या दोनों क्रियाएं करने लगता है तो ऐसी क्रियाओं को राजकीय व्यापार कहते हैं ।"[39]

"राज्य व्यापार सरकार के विदेशी व्यापार में सीधे या एक एजेण्ट के रूप में कार्य करती है । इसमें वे सारी क्रियाएं आती है जो कि सरकार निर्यात व आयात के पूर्व कार्य करती है ।"[40]

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर स्पष्ट रूप से विदित होता है कि राज्य द्वारा किये गये व्यवसाय चाहे वह सरकार स्वयं करें या अपनी एजेन्सियों के माध्यम से कराये, इसमें समस्त क्रय-विक्रय सम्मिलित होता है । इस प्रकार राजकीय व्यापार की एक अच्छी परिभाषा इस प्रकार से दी जा सकती है :

---

38. गुप्ता, के.आर. वर्किंग आफ स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया, एस चांद एण्ड कम्पनी (प्रा0) लिमिटेड, पृष्ठ 3

39. दि इकोनामिक टाइम्स सितम्बर 6, 1977

40. एकोनामिक कमीशन फार एशिया एण्ड फारईस्ट, स्टेट ट्रेडिंग इन कन्ट्रीज आफ रीजन, जेनेवा, 1964 पृष्ठ 4

"राज्य द्वारा व्यापार से तात्पर्य उस व्यापार से है जो कि सरकार स्वयं या स्वयं द्वारा नियंत्रित एजेन्सियों के माध्यम से तथा इसमें अभाव की दशा में देश विदेशों से आयात तथा आधिक्य की दशा से विदेशों को निर्यात करती है ।"

राजकीय व्यापार का उद्देश्य

राजकीय व्यापार का मूल उद्देश्य उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं की वस्तुएं सही मूल्य पर सभी समय उपलब्ध कराने से है जिनसे कि उपभोक्ताओं को जमाखोरों व मुनाफाखोरों के शोषण से बचाया जा सके । राजकीय व्यापार का उद्देश्य विदेशी व्यापार को परिमार्जित अवस्था में लाने से है तथा प्रतिस्पर्धा करने वाले बड़ी संख्या में आयात की और निर्यातकों को एकाधिकारवादी व्यापारिक एजेन्सी से सामना करना पड़ता है । राजकीय व्यापार के उद्देश्य निम्न है ।

1- स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए आवश्यक वस्तु की उचित और स्थिर मूल्यों पर पर्याप्त और नियमित पूर्ति को सुरक्षित करना ।

2- बढ़ी हुई सौदाकारी शक्ति के द्वारा अधिक अनुकूल मूल्यों पर निर्यात और आयात करना ।

3- मूल्यों और अन्य अभिप्रेरणाओं के माध्यम से आवश्यक कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना ।

4- विशिष्ट उत्पादों के घरेलू मूल्यों को उन उत्पादों के उत्पादन और विपणन को नियंत्रित करके स्थायित्व देना ।

5- उत्पादों के लिए निर्यात बाजारों का पता लगाना तथा वस्तुओं के निर्यात योग्य आधिक्य को बेचना ।

6- अधिक परिमाण में सौदों के लाभ उठाना ।

7- केन्द्रीय रूप में नियोजित अर्थव्यवस्थाओं वाले देशो से व्यापार सुगम बनाना ।

8- विदेशी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्त व्यवस्था वाले माल के आयात को सुगम बनाना ।

9- व्यापारिक समझौतों और वस्तु विनिमय के सौदों के क्रियान्वयन को सुगम बनाना ।

10- गैर नागरिकों के नियंत्रण से व्यापार को स्थानान्तरित करना ।

11- विकास नीतियों के अनुसार व्यापार को दिशा देना ।

12- खजाने के लिए आय बढ़ाना ।

13- विदेशी व्यापार के सौदों से प्राप्त आमदनी के विवरण में परिवर्तनों को प्रभावित करना और

14- स्वास्थ्यकर और सार्वजनिक स्वास्थ्य नियंत्रणों को सुगम बनाना ।[41]

राजकीय व्यापार का विकास

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् दो महत्वपूर्ण घटनाओं के परिणामस्वरूप राजकीय व्यापार का विकास हुआ और प्रत्येक देश की सरकार ने इस ओर अपना ध्यान दिया । प्रथम सोवियत संघ ने 22 अक्टूबर 1918 को एक अधिनियम पारित किया जिससे कि विदेशी व्यापार पर राज्य सरकार का एकाधिकार हो गया । फिर 1929 की विश्व व्यापी महान आर्थिक मंदी थी जो विशेषतया कृषि उत्पादों में हुई । उससे बहुत बेकारी बढ़ी, विश्व के भुगतान संतुलन में असंतुलन उत्पन्न हो गया और पूंजी के संचालन में गिरावट आयी । इन सभी घटनाओं के कारण विदेशी व्यापार में पर्याप्त विपणन व नियंत्रण करना पड़ा । द्वितीय विश्व युद्ध ने भी राजकीय व्यापार के विकास में भी अपनी अहम् भूमिका निभायी, उस समय मूल्य बढ़ रहे थे तथा उत्पादन सीमित था । अतः सरकार ने खाद्यान्न

---

41. इकाफे, स्टेट ट्रेडिंग इन कन्ट्रीज आफ इकाफे रिगन 1964

कपड़े व चीनी आदि का वितरण अपने हाथ में लिया जो राशनिंग के नाम से जाना जाता है । युद्धोत्तर अवधि में समाजवाद एवं नियोजन के अनुभव ने विश्व व्यापार में सरकारी सहभागिता में वृद्धि को प्रोत्साहन दिया ।

भारत में राजकीय व्यापार का विकास एवं इतिहास

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एक ऐसी एजेन्सी स्थापित करने का विचार सरकार के सम्मुख आया जो विदेशी व्यापार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे और उसके साथ ही साथ समय-समय पर इसके उद्देश्यों में परिवर्तन भी होता रहे । युद्ध के समय भारतीय व्यवसायिक संघ द्वारा यह सुझाव स्वतः दिया गया जो कि विदेशी शासकों के सौतेले व्यवहार से डरते थे, वे भारत में भारतीयों को भारतीय व्यापारों से न केवल बल्कि उनके लाभों से भी वंचित करते थे अपितु वे भारतीयों को उनके व्यावसायिक मामले में प्राप्त आदेशों को भी नही देते थे, तो लाभों को रख लिया करते थे । युद्ध की विषम परिस्थितियों के कारण यह समझा जाता था कि सामान्य व्यापारी अपने कार्यों को उचित ढंग से कर पाने में असक्षम है इस लिए सरकार वहाँ पर अपनी एक सरकारी एजेन्सी स्थापित करें । जहाँ पर जिस देश से निजी व्यवसायी व्यवसाय करते है और वे उस व्यापार को करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते है तो वहाँ पर सरकार अपनी एजेन्सी के माध्यम से उनसे व्यापार कर सकती है । इस प्रकार का संगठन विदेशी व्यापार का विकास करने में उपयुक्त सिद्ध हुआ है ।

1947 के अन्त तथा 1948 के प्रारम्भ में इस विषय पर पुनः विचार किया गया । उस समय यह संकेत किया गया कि भारत बहुत मंहगा देश है जहाँ पर मूल्यों में बहुत तेजी के साथ वृद्धि होती है । यहाँ तक कि आयातित खाद्यान्नों के मूल्यों में भी विभिन्नता रहती है । भारत सरकार निजी व्यापारियों के ऊपर निर्यात को छोड़ देती है, और इस प्रकार के व्यापारियों को केवल कुछ ही मूल्यों पर व्यवसाय करने की आज्ञा होती है और इससे उस व्यवसाय पर संरक्षण देती है कि वह उतना मूल्य लगा सकते है जितना कि विदेशी बाजार वहन कर सकते है । जिस कारण उनको इस अवसर से अधिकतमलाभ की प्राप्ति हो सके । इस प्रकार आन्तरिक मूल्यों व निर्यात के मूल्यों से आपस में काफीविभिन्नता रहती है । इस विभिन्नता को समाप्त करने के लिए सरकार निर्यातों पर निर्यात लगाती है । मई 1948 में गोयनका ने यह प्रश्न उठाया कि सरकार खाद्यान्नों पर बहुत बड़ा बिल प्रस्तुत करने जा रही है जिसका लाभ सरकार को नहीं लेना चाहिये जिससे कि आन्तरिक मूल्यों व विदेशी मूल्यों में इतनी विभिन्नता रहे । इस सम्बन्ध में सरकार एक निगम की स्थापना करें, जिससे इन विभिन्नताओं को समाप्त किया जा सके । इसके प्रत्युत्तर में सी. एच.. भाभा जो कि तत्कालीन वाणिज्य मंत्री थे उन्होंने कहा कि सरकार इस पर कर रही है और इसका निर्णय शीघ्र ही देगी ।

मार्च 1949 में के. सी. नियोगी जो उस समय वाणिज्य मंत्री थे,

उन्होंने इस मांग का अध्ययन किया और यह कहा कि सरकार इस संबंध में निर्णय लेगी और इसके साथ ही साथ व्यवसायिक मामलों में राज्य व्यापार का सहारा लेगी । उन्होंने यह कहा था कि "सभी दृष्टिकोण से हम राज्य व्यापार का सहारा लेगी । हम राज्य व्यापार के आधार पर राजकीय सहायता का पूरी तरह से अध्ययन करेंगे और उसके परिणाम से अवगत करायेंगें । उन्होंने कहा विभिन्न देशों के संदर्भ में कुछ विशेष वस्तुओं में राजकीय हस्तक्षेप को सरकार अपने हाथ में ले लेगी । उन्होंनेयह कहा कि मेरा विचार है कि इस प्रकार की समिति का निर्माण कुछ संसद सदस्यों को लेकर जितनी जल्दी से जल्दी हो की जाये । कुछ निश्चित मामलों में मेरे सम्मुख द्विपक्षीय समझौता इस बात की पुष्टि करता है कि सरकार के हस्तक्षेप की कितनी आवश्यकता इस सम्बन्ध में है । इस समझौते को लागू करने से पूर्व व्यवसाय पूरी तरह से व्यक्तिगत हाथ में था । अप्रैल 1949 में केन्द्रीय मंत्रिमंडल की आज्ञा से वाणिज्य मंत्री ने इस प्रकार के नियमों को स्थापित करने का प्रस्ताव रखा तथा साथ ही साथ यह कहा कि कपड़ों का निर्यात उसी देशों को किया जाय जो कि इसका भुगतान कर सके । इसका विचार यह था कि सरकार व्यापारिक लाभ को समाप्त करने के पक्ष में नही थी, बल्कि विदेशी व्यापार में जो हानि होती है उसको कम करना है । इस लिए सरकार ने इस प्रकार के निगमों की स्थापना की । इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया ।

अक्टूबर 1949 में भारत सरकार ने इसका अध्ययन करने के लिए एक समिति डा० पी.एस. देशमुख, संसद सदस्य की अध्यक्षता में नियुक्त की और कहा कि "भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वर्तमान स्थिति और भविष्य की दिशा को देखते हुए यह बहुत ही श्रेयस्कर होगा कि सरकार द्वारा प्रवर्तित एक संगठन का निर्माण किया जाये जो किसी भी क्षेत्र में विदेशी व्यापार को अपने हाथ में ले लेगा । चाहे इस प्रकार के संगठन का ढांचा, क्षेत्र और कार्य प्रणाली कुछ भी हो ।" इस समिति ने एक प्रश्नावली निर्गमित की उसमें यह बताया गया कि केन्द्रीय व राज्य सरकार के कर्मचारियों की विचारधारा का अवलोकन कर, व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधियों से उनकी राय ज्ञात कर तथा समिति ने कांग्रेस पार्टी के संसद सदस्यों द्वारा तैयार किये गये पत्रों को उचित महत्व देते हुए विचार किया गया । देश की मुख्य आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए राजकीय व्यापार में होने वाली समस्याओं और जोखिमों का भी अध्ययन किया । इस समिति ने इस समस्या का काफी गहन अध्ययन किया और अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष अगस्त 1950 में प्रस्तुत की । समिति ने यह सिफारिश की कि राज्य व्यापार निगम की स्थापना एक बहुत ही लाभदायक होगी उसके सुझाव इस प्रकार थे । [42]

1- सरकार के राज्य व्यापार के क्रियाकलापों को जैसे उर्वरक, खाद्यान्नों, लोहा व कोयला के आयातों को अपने अधिकार में लेना ।

2- पूर्व अफ्रीका से कपड़ों के आयात को बढ़ावा देना जो कि कपड़ा प्रधान और कपड़ा उत्पाद के उद्योग में प्रयुक्त होता है ।

3- निजी आयातकों तथा निर्यातकों की हैसियत से प्रवर्तित समझौता करना जिससे कि देश को एकाधिकार प्राप्त हो सके ।

इस प्रकार की आर्थिक व बदलती दशा को ध्यान में रखते हुए 1953 में तीन व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गयी जो कि उपरोक्त संस्तुति पर विचार करें । विचार करने के पश्चात् समिति इस परिणाम पर पहुँची कि वर्तमान परिस्थिति इस बात का अधिकार नहीं देती कि उपरोक्त वस्तुओं का आयात व निर्यात में राज्य व्यापार निगम स्थापित की जाये । उसने यह विचार व्यक्त किया कि "यदि राज्य व्यापार निगम को वास्तविक रूप में लाया जाता है तो सरकार के हाथ में एक अतिरिक्त हथियारों का शस्त्रागार बन जायेगा जो कि सरकारी आर्थिक नीतियों से व्यापार में बहुत प्रभावित होगी । इसके कार्यकलापों पर भी काफी कमी होगी ।[43]

लोकसभा में इस तरह के वाद विवाद में वाणिज्य मंत्री ने कहा कि - "यदि हम लोग इस स्थिति का ईमानदारी से अवलोकन करें तो

---

43. गुप्ता के.आर. वर्किंग आफ स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया, एस. चांद एण्ड कम्पनी, (प्रा.) लिमिटेड, 1970 पृष्ठ 47

हम ये देखेंगे कि यदि किसी भी स्थिति में इस प्रकार की वैधानिक शक्ति और हमारे वित्तीय उपाय अनुपयुक्त सिद्ध हो जाते हैं तो व्यापार में परिवर्तन करके सरकार वहीं मात्रा में लाभ प्राप्त कर सकती है । हम लोग इस प्रकार के अतिरिक्त लाभ को कमाने से पीछे नहीं हटेंगे । इस संदर्भ में हम यह प्रस्तावित करते है कि राज्य व्यापार संगठन का स्थापित करना आवश्यक है प्रथम क्या वह व्यापार के विकास में उतनी सुविधा देगा जहाँ पर कि व्यापार सरकार के हाथ में है, द्वितीय क्या वह सरकार को निजी व्यापारिक संगठन के माध्यम से उत्पन्न समस्या की पूर्ति करने में सहायता प्रदान करेगी ।[44]

उपरोक्त सभी वाद-विवाद के बाद राज्य व्यापार निगम की स्थापना का प्रश्न मंत्रिमंडल में नवम्बर 1955 में स्वीकार कर लिया । राज्य व्यापार निगम "निजी" 18 मई 1956 को भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत एक संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में पंजीकृत हुआ । 6 अप्रैल 1959 से "निजी" शब्द हटा लिया गया । इसकी सहायता के लिए समय-समय पर अनेक निगमों की स्थापना की गयी ।

---

44. गुप्ता के.आर. वर्किंग आफ स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया एस.चांद एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, 1970 पृष्ठ 47-48

राजकीय व्यापार का वर्गीकरण

सुविधा की दृष्टि से राजकीय व्यापार को दो भागों में बांटा जा सकता है -

1. खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार
2. अन्य वस्तुओं में राजकीय व्यापार

1- खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार

जब सरकार खाद्य पदार्थों में स्वयं व्यापारिक क्रियाएं करने लगती है तो ऐसी क्रियाओं को खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार कहते है । सरकार इसके लिए खाद्यान्नों का क्रय करती है एवं आवश्यकता पड़ने पर आयात भी करती है । क्रय करने की पद्धति को सरकारी खरीद कहते है । सरकार देश के कृषकों से उन्हे उचित मूल्य की अदायगी करके बड़ी मात्रा में खाद्यान्नों को क्रय करती है तथा उसका संकलन या स्टाक रखती है । अपने स्टाक को बनाये रखने के लिए सरकार खाद्यान्नों का आयात करती है जिससे कि देश के प्रत्येक उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता की वस्तुएं सही समय पर उचित मूल्य पर प्राप्त हो जाय । इसके पश्चात वितरण की प्रक्रिया शुरू होती है । सरकार जब खाद्यान्नों का वितरण निर्धारित दुकानों तथा निर्धारित मूल्यों पर करने लगती है तो इसको सामान्यत: राशनिंग कहते है ।[45]

---

45. शर्मा एवं जैन बाजार व्यवस्था प्रकाशन साहित्य भव आगरा - पृष्ठ 434

सरकार का यह परम कर्तव्य है कि वह देश के विभिन्न भागों में वहाँ की उत्पादन क्षमता के आधार पर खाद्यान्नों के संदर्भ में मूल्य नीति घोषित करें । सरकार प्रत्येक वर्ष खाद्यान्नों की उत्पादकता एवं उपभोग की पद्धति या मांग और पूर्ति के आधार पर खाद्यान्नों के मूल्य नीति की घोषणा करती है । सरकार का यह महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है कि खाद्यान्नों की पर्याप्त व्यवस्था एवं भण्डारन करे । इसके लिए सरकार निर्धारित मूल्य पर खाद्यान्नों का क्रय कृषकों से करती है और उन्हें उचित मूल्य तत्काल प्रदत्त करती है । इस प्रकार भारत के किसानों से भारत के बाजारों में अनाज की उपज क्रय करके बफर स्टाक बनाने से एक तरफ किसानों को बिचौलियों की लूट से बचाया जा सकता है, दूसरे किसानों के हाथों में कुछ क्रय शक्ति आती है जिससे अपनी जीविका पालन करने के अलावा वह अपनी खेती के लिए आवश्यक चीजें खरीद सकता है और साहूकारों से अपनी कुछ सुरक्षा कर सकता है ।[10]

खाद्यान्नों में राजकीय व्यापार को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जाता है ।

(क) खरीद कार्य

(ख) राशनिंग

(ग) उचित मूल्य की दुकानें

---

10. "नवभारत टाइम्स," लखनऊ 20 सितम्बर 1988 पृष्ठ 20

(क) खरीद कार्य

आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों के एकत्रीकरण व खरीददारी करते समय इस बात का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है कि उत्पादकों को उनकी लगायी गयी पूंजी का उचित लाभ प्राप्त होता रहे तथा उपभोक्ता के साथ न्याय हो । इसे ध्यान में रखकर ही खरीददारी की योजना बनायी जानी चाहिए । हमारे देश की व्यवस्था में योजनाबद्ध तरीके से देश का विकास करना है जब कि वस्तुओं का अभाव व मुद्रा स्फीति अपनी चरम सीमा पर है । ऐसे समय में एक बहुत ही अच्छी और समन्वित क्रय नीति के द्वारा इस दिशा में काफी हद तक सफलता प्राप्त हो सकती है ।

खाद्य पदार्थों में व्यापारिक सफलता उसकी कार्यक्षमता पर निर्भर करती है कि उसका क्षेत्र कितना विस्तृत है, उसकी क्षमता क्या है, कितनी मात्रा में आवश्यक वस्तुओं का एकत्रीकरण कर सकती है, जितनी मात्रा में आवश्यक वस्तुओं की एकत्रीकरण या खरीद करती है उतनी मात्रा शहरों व ग्रामीण क्षेत्र की उन वस्तुओं से आवश्यकता की पूति संभव हो जायेगी । यदि राज्य को खाद्य पदार्थों को जन आंकाक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उसकी पूर्ति करना है तो खरीद की नीति को एक सुव्यवस्थित तरीके से लागू करना होगा । खरीद कार्य तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली व्यवस्था की जीवन वाहिनी है । बिना इसके सार्वजनिक वितरण प्रणाली चल ही नही सकती ।

खरीद कार्य के उद्देश्य

आवश्यक वस्तुओं के न्यायोचित वितरण के लिए यह आवश्यक है कि उचित खरीद नीति को अपनाया जाय । खरीद नीति के साथ ही साथ पर्याप्त भण्डारण की भी व्यवस्था होनी चाहिए । उपयुक्त खरीद नीति व भण्डारन की पर्याप्त व्यवस्था से मूल्य वृद्धि के स्तर में कमी करने और मूल्यों में स्थायित्व प्रदान करने में मदद मिलेगी । मुख्य रूप से खरीद कार्य के निम्न उद्देश्य है :-

1. <u>उत्पादकों को न्यायोचित प्रतिफल प्रदान करना</u> :- खरीद कार्य करने का उद्देश्य यह है कि उत्पादकों को उनके उत्पादन का न्यायोचित प्रतिफल प्राप्त हो । वे जितनी भी पूंजी इस उत्पादन कार्य में लगाये उनको उचित लाभ प्राप्त हो जिससे कि पुनः वे अपने इस कार्य में संलग्न रहें और उत्पादन करें । जब सरकार द्वारा उनको उत्पादन का उचित प्रतिफल प्राप्त होगा और वे आर्थिक उत्पादन के लिए प्रयत्नशील होते हैं, तब उन वस्तुओं का अभाव नहीं होता और वे उत्पादन में रत रहते हैं ।

2. <u>पर्याप्त बफर स्टाक बनाये रखना</u> :- खरीद कार्य का उद्देश्य यह भी है कि पर्याप्त बफर स्टाक आवश्यक वस्तुओं के संदर्भ में बनाया जाये । इस उद्देश्य को भी लेकर खरीद कार्य किया जाता है क्योंकि जब आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का स्टाक बना लिया जायेगा तो अभाव की दशा में

उपभोक्ताओं को वस्तुयें प्रदान की जा सकेगी । इसके साथ ही साथ उत्पादकों को भी आधिक्य की दशा में हानि की आशंका नही रहेगी और उनको उनके उत्पादन का पर्याप्त मूल्य मिलेगा ।

3. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना :- इससे आवश्यक वस्तुओं की खरीद करके उसका भण्डारन कर लिया जाता है जिससे अभाव की दशा में उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की जा सके, इसके साथ ही साथ व्यापारी वर्ग कमजोर वर्गों के उपभोक्ताओं का शोषण न कर सकें । पर्याप्त खरीद करके सरकार मूल्यों में स्थायित्व प्रदान करती है, मूल्यों में स्थायित्व मांग और पूर्ति में संतुलन स्थापित करके करती है जिससे कि मूल्यों में वृद्धि अपने आप रूक जाती है । फलस्वरूप निम्न आय के लोगों के हितों की रक्षा हो जाती है जो कि सार्वजनिक विवरण प्रणाली का मूल आधार है ।

खरीद कार्य की विधि :

खरीद कार्य किस प्रकार से किया जाये जिससे कि सम्पूर्ण देश में इस कार्य को लागू किया जा सके । भारतीय खाद्य निगम खाद्यान्नों के संदर्भ में एक मात्र अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है । सरकार अपने खरीद मूल्यों को घोषित करके उत्पादकों से उनके उत्पादन को क्रय करती है । यह मूल्य उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के गुणों के अनुसार होती है ।

इन मूल्यों को सरकार समय-समय पर निश्चित करती है । खरीद की विधियों का निर्धारण वहाँ की स्थानीय दशाओं को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है ।

सरकार का यह परम कर्तव्य है कि वह देश के प्रत्येक राज्यों में वहाँ की उत्पादन क्षमता के आधार पर खाद्यान्नो के संदर्भ में मूल्य नीति घोषित करे । वास्तव में खाद्यान्नों की यह मूल्य नीति विभिन्न राज्यों में भिन्न - भिन्न होती है क्योंकि प्रत्येक राज्य में खाद्यान्नों की उत्पादन क्षमता दूसरे राज्यों की तुलना में भिन्न रहती है तथा इसके साथ ही साथ खाद्यान्नों की गुणवत्ता में भी अन्तर रहता है । इस प्रकार सरकार राज्य में विभिन्न कृषकों को निर्धारित मूल्य जो सरकार द्वारा तय किया जाता है पर खाद्यान्नों का उत्पादन आवश्यकता के अनुसार नहीं हो पाता तो सरकार खाद्यान्नों की पूर्ति बनाये रखने के लिए वही मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करती है जिससे कि देश में सभी प्रकार के उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्नों की आपूर्ति करायी जा सके ।

खाद्यान्नों के संदर्भ में सरकार की आयात नीति :-

इसकी विधियों या तरीकों को समर्थित मूल्यों के अतिरिक्त लागू किया जाता है जो कि निम्नलिखित है ।

(अ) व्यापारियों व मिल मालिकों पर लेवी ।

(ब) उत्पादकों पर लेवी ।

इस लेवी का मूल्य सरकार अपने द्वारा समय-समय पर निर्धारित करती है । उसी के अनुसार वह किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य प्राप्त होता है । जैसा कि तालिका "।" में समय-समय पर सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य दिखाये गये है :-

तालिका-।

सरकार द्वारा क्रय हेतु निर्धारित मूल्य

वर्ष	धान रु०	ज्वार रु०	बाजरा रु०	मक्का रु०	गेहूं रु०
1974-75	74	74	74	74	105
1975-76	74	74	74	74	105
1976-77	74	74	74	74	105
1977-78	77	74	74	74	110
1978-79	-	-	-	-	112.50
1979-80	-	-	-	-	45
1980-81	105	105	105	105	117
1981-82	116	116	116	116	130
1982-83	-	-	-	-	142
1983-84	-	-	-	-	150
1984-85	-	-	-	-	152

स्त्रोत : आर्थिक एवं सांख्यकीय निदेशालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित भारतीय खाद्य निगम के वार्षिक प्रतिवेदन से

1. राज्य सरकार व उनकी एजेन्सियों द्वारा
2. भारतीय खाद्य निगम द्वारा
3. सहकारी समितियों द्वारा

1. राज्य सरकारी व एजेन्सियों द्वारा :- जहाँ पर भारतीय खाद्य निगम अपने कार्यों को सुगमता पूर्वक नहीं कर पाता वहाँ पर राज्य सरकार की एजेन्सियों के द्वारा यह कार्य किया जाता है । विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार की विधियाँ अपनायी जाती है और उन्हीं विधियों के माध्यम से राज्य सरकार खाद्यान्नों की खरीद करती है । तालिका "2" में राज्य सरकार तथा उसकी एजेन्सियों द्वारा की गयी गेहूँ की खरीद दिखायी गई है :-

तालिका-2

राज्य सरकार व एजेन्सियों द्वारा की गयी खरीद

वर्ष	गेहूँ (प्रति लाख टन)
1980-81	28.63
1981-82	33.05
1982-83	58.00
1983-84	64.00
1984-85	70.00
1988-89	90.00

स्रोत : खाद्य निगम, जुलाई 1984, भारतीय खाद्य निगम, वार्षिक

प्रतिवेदन 1980-81, 1981-82 तथा 1982-83 भारतीय खाद्य निगम

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि खाद्यान्नों की खरीद में सरकारी एजेन्सियों व राज्य सरकार का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । गेहूं के सम्बन्ध में की गयी खरीद वर्ष 1980-81 में 28.63 लाख टन थी, जब कि 1981-82 में यह बढ़कर 33.05 लाख टन हो गयी, गेहूं को खरीद में इसका प्रतिशत लगातार बढ़ता ही रहा है ।

सरकार की खाद्यान्नों में वर्तमान आयात नीति

सरकार तथा उसको एजेन्सियों द्वारा देश में, खाद्यान्नों का पर्याप्त स्टाक बनाये रखने के लिए आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से खाद्यान्नों का आयात किया जाता है । गेहूं, चावल, दालें, व खाद्य तेलों का आयात इस वर्ष 1988-89 में बड़ी मात्रा में किया जा रहा है । 1988-89 में लगभग 2500 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा सरकार खाद्यान्नों के आयात पर व्यय कर रही है । यह निर्विवाद है कि सन् 1987-88 में भयंकर सूखे से प्रभावित होने के कारण हमारा बफर स्टाक बहुत कम हो गया है । इसके अलावा खाद्य जिंसो की कीमतें नियंत्रण में रहे इस कारण आयात की व्यवस्था की जा रही है । गेहूं की फसल अधिकांश रूप से सिंचित क्षेत्र में भी होती है । यद्यपि नागरिक आपूर्ति मंत्रालय की ओर से रबी की फसल अच्छी होने के दावे पेश किये गये हैं

लेकिन अमेरिका से जो खुद सूखे से इस वर्ष प्रभावित है से 20 लाख टन गेहूं खरीदा जा चुका है जो कि खाद्य मंत्री सुखराम के अनुसार भारत के बन्दरगाहों पर 195 रुपये प्रति कुन्तल के भाव पड़ेगा । दालों का आयात 400 करोड़ का किया जा रहा है और खाद्य तेलों का आयात करीब 1,000 करोड़ का होगा इस वर्ष खाद्य तेलों का आयात सर्वाधिक हुआ । चावल का आयात 8.5 लाख टन हुआ । सरकार के पास इस समय 70 लाख टन चावल व 1 करोड़ टन गेहूं का स्टाक है । बफर स्टाक के सम्बन्ध में एक तकनीकी दल भारत सरकार ने गठित किया था जिसकी रिपोर्ट थी कि वर्तमान जनसंख्या के आधार पर 120 लाख टन अनाज का बफर स्टाक सरकार के पास होना उचित होगा । इसके साथ ही 35 लाख टन का स्टाक चालू जरूरतों के लिए भी आवश्यक है सन् 1975-76 व 1976-77 में रिकार्ड बफर स्टाक करीब 2 करोड़ टन का था तथापि वही मात्रा में गेहूं व चावल का आयात किया गया जिसके परिणाम स्वरूप कृषकों की क्रय शक्ति में कमी आयी । 1983-84 में पिछले 20 सालों में सबसे अच्छी फसल हुई । उत्पादन 130 लाख टन से एकदम 152 लाख टन चला गया । फिर भी करीब 50 लाख टन अनाज का आयात किया गया ।

सरकार को खाद्यान्नों का आयात इस लिए अधिक करने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि करीब आधे किसान अपनी उपज बड़ी नियमित मंडियों में बेचने के बजाय गांव के छोटे बाजारों में उन साहूकारों के जरिये

बेचते हैं. जिनसे उन्होंने फसल के लिए ऋण लिया है । इस ऋण पर ब्याज 24 से 30 प्रतिशत सैकड़े का होता है । इस ब्याज के अलावा जो समान किसान उधार देने वाले से ले जाता है उसकी कीमत 10 प्रतिशत अधिक लगाई जाती है वह उपज वह दुकान पर बेचने के लिए लाने को यह बाध्य है उसकी कीमत 10 प्रतिशत कम की जाती है । इस प्रकार अधिकांश किसानों को अपनी गेहूं की फसल का 136 रु० प्रति कुन्टल घर में पड़ता है । यही अनुपात धान की फसल की कीमत के बारे में है ।

एक तरफ हरित क्रांति में पंजाब व हरियाणा जैसे उन्नत प्रदेशों में गेहूं व चावल की उत्पादकता को या तो स्थिर कर दिया है या कमी की ओर अग्रसर कर दिया है वहीं दूसरी ओर खेती का खर्चा हर वर्ष कम से कम 15% प्रतिशत बढ़ रहा है । एक अध्ययन से विदित हुआ है कि खेती की लागत अगर 100 पैसा बढ़ी है तो सरकारी खरीद लगभग 60 पैसा भी नही बढ़ी है । फिर भी सरकार ने पूरे भारत का रेलवे लोडिंग गेहूं की आमद के समय बन्द कर दिया । उत्तर प्रदेश में प्रदेश के बाहर गेहूं जाने पर सखत पाबन्दी लगा दी गयी थी । इस प्रकार घेराबन्दी करके भी 65 लाख टन गेहूं 1988-89 में सरकार ने जमा कर लिया है । गेहूं की जो कीमत विदेशों के किसानों की 195 रु० प्रति कुन्टल अन्य प्रदेशों के किसानों को दी जाय तो शायद हम अपने उत्पादन लक्ष्य से वही ज्यादा उत्पादन कर सकते है । भारत के किसानों से गेहूं व चालव की खरीद की

कीमत कम रखी जाकर इन्ही जिन्सों का आयात ऊंची कीमत पर किया जाय यह पिछले 15 वर्षों से हमारी खाद्य नीति की परम्परा रही है । निम्न आंकड़ों से इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

तालिका - 3

विभिन्न वर्षों में गेहूं के आयात एवं खरीद के मूल्य

वर्ष	भारत के बन्दरगाह पर आयात के भाव (प्रति कुन्टल रूपयों में)	भारत में सरकारी खरीद के भाव (प्रति कुन्टल रूपयों में)
1973	138.1	76.0
1974	190.4	105.0
1975	182.8	105.0
1976	160.1	110.0
1977	124.8	112.5
1978	135.2	115.0
1979	163.3	117.0
1980	163.0	130.0
1988	195.0	-

स्रोत : नवभारत टाइम्स, लखनऊ 20 सितम्बर 1988 पृष्ठ 4

ठीक यही तुलनात्मक स्थिति चावल के आयात भावों का स्थानीय खरीद के भावों की रही है ।

छोटे कारखानों के उत्पादकों को प्रोत्साहित करने के लिए अधिकांश राज्यों में यह प्राविधान है कि राज्य सरकार अपनी खरीद निकालती है तो अपने राज्यों में उत्पादन करने वाली ईकाइयों को अन्य राज्यों की अपेक्षा 15 प्रतिशत कीमत अधिक देती है । यह सिद्धांत भी राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय व विदेशी किसानों की उपज के सम्बन्ध में मान लिया जाय तो गेहूं जैसी अनिवार्य वस्तु के लिए अमेरिका के किसान को 195 रुपये प्रति कुन्टल की कीमत दी जा सकती है तो भारतीय किसान को यही कीमत कम से कम 225 रु० प्रति कुन्टल दी जानी चाहिए और इस प्रकार करोड़ों की विदेशी मुद्रा बचायी जा सकती है ।

2. <u>भारतीय खाद्य निगम द्वारा</u> :- भारतीय खाद्य निगम सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत खाद्यान्नों की खरीद उसका बफर स्टाक तथा भंडार की व्यवस्था करने हेतु एकमात्र संस्था है जो कि वस्तुओं की खरीद समस्त देश में करती है । और सरकार के आदेशानुसार उसको वितरण के लिए उपलब्ध कराती है । सामान्यतया उत्पादक या किसान अपने उत्पाद को मंडियों या बाजारों में लाता है । ये बाजार परम्परागत या अपरम्परा गत भी हो सकते हैं । यदि बाजार भारतीय खाद्य निगम के द्वारा बनाये जाते हैं तो वहां वह उनके उत्पाद की जांच की जाती है । जांच

करने के उपरान्त मूल्यों को आमंत्रित किया जाता है, उनके गुणों के आधार पर । यदि उत्पाद उचित औसत किस्म के अन्तर्गत नहीं आता तो उससे उसको कुछ कम पैसा दिया जाता है ।

भारतीय खाद्य निगम अपने द्वारा खरीद की कार्य विधि को रवी व खरीफ की फसल होने के बहुत पहले प्रारम्भ करता है । रबी की फसल के संदर्भ में क्षेत्रीय प्रबन्धकों को जनवरी माह में बुलाया जाता है और उन्हें यह कहा जाता है कि वे उत्पादन कितना होगा, और खरीद का मूल्यांकन करें कि सम्बन्धित क्षेत्रों की इस सम्बन्ध में क्या आवश्यकता होगी और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति इससे हो सकती है या नहीं । खरीद की योजना विभिन्न क्षेत्रीय आधार पर फरवरी या मार्च के प्रारम्भ में प्राप्त हो जाती है और इस सम्बन्ध में वरिष्ठ क्षेत्रीय प्रबन्धकों के मध्य तथा मुख्य कार्यालय के अधिकारियों से विचार विमर्श के पश्चात् इसको अंतिम रूप प्रदान किया जाता है । इस योजना के कार्यान्वयन व प्रबन्धन के लिए जैसे कि वित्त कोष कर्मचारी, मशीन, भण्डारन क्षमता और प्रत्येक माह में खाद्यान्नों की विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यकता है कि उत्पादन वाले क्षेत्र से अभाव वाले क्षेत्र में कितना खाद्यान्न हस्तांतरित किया जायेगा, जिससे कि उस क्षेत्र के कमजोर वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति किया जा सके ।

खरीद कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व भारतीय खाद्य निगम उस राज्य की भाषा में समाचार पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन प्रकाशित करता है और इसके

साथ ही साथ वह रेडियो व टेलीविजन पर भी विज्ञापन करता है । इसके अतिरिक्त वह रजिस्टर बनवाकर छपवाता है और उसका वितरण भी करता है कि सरकार द्वारा समर्थित मूल्य की घोषणा कर दी गयी है और उसका विभिन्न प्रकार से वह प्रचार व प्रसार करता है ताकि किसान इस मूल्यों से भली भांति अवगत हो जाये । इस संदर्भ में भारतीय खाद्य निगम व राज्य सरकार की मंडियों का भी विवरण कर दिया जाता है । कार्य विधि के सुचारू संचालन के लिए यह आवश्यक होता है कि किसान अपने उत्पाद को पांच से आठ किलोमीटर से अधिक दूर न ले जाये, जिससे कि उन्हें असुविधा हो । यदि इस सम्बन्ध में वहां नियमित मंडियां नहीं है तो इस प्रकार के क्रय केन्द्रों को खोला जाता है कि किसान अपने उत्पाद को पांच से आठ किलोमीटर के अन्तर्गत ही बेच दे और उन्हें परिवहन की असुविधा न उठानी पड़े ।

भारतीय खाद्य निगम खाद्यान्नों की खरीद एकाधिकारी रूप से नहीं करता अपितु सरकार की मूल्य समर्थित नीति के अन्तर्गत भी करता है । इस लिए इस सम्बन्ध में कोई भी लक्ष्य निर्धारित नहीं किया जाता । यह अनुमान केवल अनुभव और उत्पादन स्तर के आधार पर लगाया जाता है । तालिका "4" से भारतीय खाद्य निगम की गेहूं व चावल की खरीद कार्य का अवलोकन होता है :-

तालिका - 4

भारतीय खाद्य निगम द्वारा गेहूं व चावल की खरीदी हुई मात्रा

(लाख टन में)

वर्ष	गेहूं	चावल	योग
1967-68	9	32	41
1977-78	52	49	101
1979-80	80	39	119
1981-82	66	72	138
1982-83	77	70	147
1983-84	83	76	159

स्रोत : फूड कीर्प जुलाई 1988

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट हो रहा है कि भारतीय खाद्य निगम द्वारा खरीददारी के प्रतिशत में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । 1967-68 में गेहूं की खरीद 9 लाख टन थी जब कि 1977-78 में यह बढ़कर 52 लाख टन हो गयी । इसी प्रकार चावल के खरीद के सम्बन्ध में भी 1977-78 में खरीद 32 लाख मिलियन टन थी जब कि 1983-84 में बढ़कर 76 लाख टन हो गयी ।

हरियाणा और पंजाब राज्य में किसानों द्वारा गेहूं कच्चा

अढ़तिया के माध्यम से भारतीय खाद्य निगम या अन्य खरीद एजेन्सियों को बेचा जाता है खाद्यान्नों या अनाज के भुगतान मूल्य में अनाज की सफाई, पैकिंग, तौलाई भी सम्मिलित होती है जो कि कच्चा आढ़तिया के माध्यम से करायी जाती है । कच्चा आढ़तिया यह सेवा भारतीय खाद्य निगम को एक या दो दिन में देता है और किसानों को उनके द्वारा बेचे गये माल का मूल्य भी एक या दो दिन में भुगतान करता है । इस वर्ष पंजाब व हरियाणा राज्य में किसानों द्वारा सीधे क्रय किये जाने का भी प्रावधान किया गया है जहाँ पर की कुछ खरीददारी हुयी है । किसान अपने उत्पादकों भारतीय खाद्य निगम के डिपो या गोदामों में लाते है और उनको उसका भुगतान वाहक चेक या रेखांकित चेक के माध्यम से कर दिया जाता है । इस प्रकार के कार्यों को करने के लिए "भारतीय खाद्य निगम" के विभाग हरियाणा में तथा 38 विभाग पंजाब राज्य में राज्य विपणन संघ द्वारा नामांकित किये गये । इस प्रकार के सीधे खरीद से आवागमन, परिवहन और लागत में वृद्धि,' बिक्री से विलम्ब होना आदि समस्याओं से बचा जाता है और किसानों को उनके उत्पाद का तुरन्त मूल्य प्राप्त हो जाता है । इस खरीद कार्य को देखने के लिए क्षेत्रीयवमंडलीय कार्यालय से भेजे गये और इसके अतिरिक्त तीस टीम वरिष्ठ अधिकारियों की मुख्य कार्यालय से पंजाब में खरीद कार्य देखने के लिए भेजी गयी है । इस वर्ष वरिष्ठ अधिकारियों की अठत्तर टीम केवल पंजाब में ही नही बल्कि उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में भी खरीद का कार्य देखने के लिए नियुक्त की गयी है ।

देश के कुल उत्पादन का लगभग 65 से 70 प्रतिशत किसान अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रख लेते है। बाकी 30 से 35 प्रतिशत तक उत्पादन बाजार या मंडियों में विक्रय हेतु आता है। इस 30 से 35 प्रतिशत तक के उत्पादन का भारतीय खाद्य या अन्य सरकारी एजेन्सियों द्वारा 40 प्रतिशत क्रय कर लिया जाता है और बाकी 60 प्रतिशत तक खुले बाजार तक आता है। इस प्रकार देश के कुल उत्पादन का 12 से 13 प्रतिशत भाग भारतीय खाद्य निगम या सरकारी एजेन्सियों द्वारा केन्द्रीय गोदामों के लिए खरीदा जाता है।

भारतीय खाद्य निगम द्वारा प्रति वर्ष में लगभग 150 से 160 लाख टन गेहूं व चावल 6000 क्रय केन्द्रों के माध्यम से खरीदा जाता है और उस खरीदे हुए खाद्यान्नों को लगभग 2000 भंडार गृहों में सुरक्षित रखकर इन राज्यों में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान व आन्ध्र प्रदेश से खरीदकर आवश्यकता वाले राज्यों में जैसे पश्चिमी बंगाल, बिहार, केरला, तामिलनाडु व गुजरात में भेजा जाता है, इस कार्य को प्रतिदिन लगभग 1200 से 1500 रेलवे वैगन परिवहन के माध्यम के रूप में करते है।

<u>3. सहकारी समितियों द्वारा</u> :- जहां पर जिन दुर्गम स्थानों पर भारतीय खाद्य निगम व सरकारी एजेन्सियां नहीं है वहां पर सहकारी समितियों के माध्यम से यह कार्य किया जाता है। किसानों द्वारा अपने उत्पाद का

मूल्य उन्हें तुरन्त उनके उत्पादन के स्थान पर प्राप्त हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक गांवों में सहकारी समितियां अवश्य होती है और जिससे कि उनको परिवहन व बाजार की असुविधा से छुटकारा प्राप्त होता है । सहकारी संस्थाओं द्वारा की गयी खरीद तालिका 5 से स्पष्ट होती है :-

तालिका - 5

सहकारी संस्थाओं द्वारा की गयी खरीद

(लाख टन में)

वर्ष	गेहूं	चावल	धान
1980-81	15.99	0.02	9.52
1981-82	18.01	-	6.78
1984-85	21.03	-	8.91
1987-88	29.45	-	13.45

स्त्रोत : वार्षिक प्रतिवेदन भारतीय खाद्य निगम, वर्ष 1980-81 तथा 87-88

तालिका 1.5 से यह स्पष्ट होता है कि सहकारी संस्थाओं द्वारा गेहूं की खरीद वर्ष 1980-81 में 15.99 लाख टन की जब कि यह बढ़कर 1987-88 में 29.45 लाख टन हो गया, इसी प्रकार चावल के सम्बन्ध में भी इसके द्वारा की गयी खरीद 0.02 लाख टन थी और वर्ष 1987-88 में इस सम्बन्ध में कोई भी आंकड़ा प्राप्त नहीं हो सका । धान की 1987-88

में खरीद 13.485 लाख टन थी जब कि इसके पूर्व वर्ष 1980-81 में यह खरीद केवल 9.52 लाख टन था ।

समस्याएं

खरीद कार्य के सम्बन्ध में नीति का निर्धारण करते समय सरकार को कृषि मूल्य आयोग की संस्तुति पर बल देना चाहिये और इस सम्बन्ध में केन्द्र व राज्य सरकार आपस में सम्बन्धित विकास क्रम के अनुरूप ही कार्य करें तथा उसके लक्ष्यों को निर्धारित करें । इस सम्बन्ध में निम्न समस्याएं आती है । -

1. अनाज उत्पादन में वृद्धि:-

अनाज के उत्पादन में जिस अनुपात से वृद्धि होती है जनसंख्या में उस अनुपात से अधिक वृद्धि होती है, जिससे उत्पादन एवं मांग में असंतुलन हो जाता है और खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि एक अत्यन्त ही गंभीर समस्या होती है । जब खाद्यान्नों में वृद्धि नहीं होगी तो उसकी खरीददारी व एकत्रीकरण किस प्रकार संभव सकेगी और इसके साथ ही साथ सार्वजनिक वितरण प्रणाली का कार्य में भी बाधा उत्पन्न होती है ।

2. भण्डारण :-

खरीद के संदर्भमें एक समस्या यह भी आती है कि जितनी भी मात्रा में खाद्यान्नों का एकत्रीकरण या खरीददारी किया जाये, उसको

सुरक्षित रखने तथा आवश्यकता पड़ने पर उसको निर्गमित करने हेतु पर्याप्त भण्डारन की व्यवस्था होना अनिवार्य है ताकि आवश्यकता पड़ने पर या आधिक्य की अवस्था में खाद्यान्नों के अभाव से बचने के लिए भण्डारन कर लिया जाये । पर्याप्त भण्डारन व्यवस्था के न होने के कारण खाद्यान्नों का काफी नुकसान होता है ।

३. समन्वय का अभाव :-

खरीद कार्य में प्रमुख समस्या यह है कि केन्द्र व राज्य सरकार की नीतियों में आपस में समन्वय तथा भारतीय खाद्य निगम के विभागों तथा केन्द्र व राज्य सरकार के विभागों में आपस में समन्वय का अभाव है । परिणामस्वरूप दोनों की नीतियों को स्पष्ट रूप से न घोषित होने के कारण नीतियों में एक लक्ष्य नहीं होता है और लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती है ।

४. सांख्यिकी आंकड़ो की अनुपलब्धता :-

सांख्यिकी आंकड़ो की अनुपलब्धता के कारण अनुमान लगाने में कठिनाई होती है और भविष्य में किसी कार्य को अनुरूप दिशा में सम्पन्न करने में कठिनाई होती है ।

उपरोक्त समस्याओं के सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि राज्य स्तर का प्रशासन निम्न कार्यों के सम्पादन में बहुत ही सावधानी और चौकसी बरतें ।

1. खरीद कार्यों के लिए संस्थानान्तमक एवं संगठनात्मक ढांचे की नियुक्ति के सम्बन्ध में ।

2. राज्य एवं जिला स्तर के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में

3. खरीद कार्य के विकास के सम्बन्ध में ।

4. निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु ।

सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि जिला स्तर पर लक्ष्यों को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता है कि उपयुक्त सांख्यिकी आंकड़ों की अपर्याप्तता एवं आंकड़ों की अनुपलब्धता क्या है । इन दोनों तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इसका लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए, तभी खरीद कार्य राजकीय व्यापार के लिए एक नियमित व स्थायी उपकरण बन सकता है । इसके लिए यह भी आवश्यक है कि खरीद कार्य और लेवी कार्य के लिए उपयुक्त वित्तीय सहायता उपलब्ध हो ।

﴾ख﴿ राशनिंग व्यवस्था :-

वर्तमान समय में हमारी सरकार समाजवाद की स्थापना करने मे कृत संकल्प है । समाजवाद में प्रत्येक सरकार का यह सामाजिक कर्तव्य हो जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार, उचित मूल्य पर, अच्छी वस्तुयें उपलब्ध कराने की व्यवस्था करें । यह राशनिंग के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है । जब प्रत्येक वस्तु का वितरण सरकार अपनी

एजेन्सी के द्वारा कराती है, तो जनता को उचित मूल्य पर अच्छी वस्तुयें प्राप्त होनी चाहिए । जिससे कि समाज के दुर्बल व कमजोर व्यक्तियों का शोषण पूंजीपति व व्यवसायी वर्ग न कर सकें । राशनिंग व्यवस्था के अंतर्गत उक्त वस्तुयें ऐसी होती है जिनका कि रूप व गुण एक होता है, परन्तु कुछ वस्तुओं के संदर्भ में यह एक अलग प्रकार की विशेषता रखती है । राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत मानव की प्रतिदिन की उपभोग की वस्तुयें सम्मिलित होती है । मनुष्य की आवश्यकताएं विभिन्न होती है । कुछ व्यक्तियों को गेहूं व गेहूं की रोटी की आवश्यकता है तो कुछ व्यक्तियों को मांस की आवश्यकता होती है । साथ ही साथ कुछ वस्तुओं की असामयिक रूप से आवश्यकता पड़ती है । जैसे सर्दी के दिनों में गर्म कपड़ों, जबकि गर्मी के दिनों में सूती कपड़ों की । कुछ वस्तुयें ऐसी होती हैं, जिनकी आवश्यकता समाज के प्रत्येक व्यक्ति को होती है, परन्तु कुछ ऐसी होती है जिनकी आवश्यकता समाज के कुछ व्यक्तियों को ही होती है । इसलिए यह कटु सत्य है कि सभी वस्तुओं पर एक प्रकार की राशनिंग व्यवस्था के माध्यम से सरकार अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकती ।

राशनिंग व्यवस्था के लाभ -

राशनिंग प्रणाली का विभिन्न समय पर, विभिन्न स्वरूपों में प्रयोग होता रहा है । कभी किसी रूप में तो कभी किसी स्वरूप में कभी वर्ग राशनिंग के रूप में कभी आंशिक राशनिंग व्यवस्था । इस कारण इसका

विरोध भी अधिकांश प्रदेशों में होता रहा है कि यह प्रणाली अत्यन्त ही दुखद एवं जटिल है, इसमें बहुत सी कठिनाइयाँ निहित है, नागरिक प्रशासकीय व्यय असमान रूप से बढ़ता जा रहा है । किन्तु राशनिंग व्यवस्था के कुछ लाभ भी है । अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात् हम खुले हृदय से स्वागत करते हैं । राशनिंग व्यवस्था के लाभों का मूल्यांकन निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है ।

§1§ <u>रोजगार वृद्धि में सहायक</u> :- इस प्रणाली का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इससे देश में अनेक व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ है । सम्पूर्ण व्यवस्था में कार्यरत कर्मचारियों व इसकी दुकानों को चलाने के लिए लगे व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है ।

§2§ <u>असमाजिक व अनैतिक जमाखोरी पर रोक</u> :- आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा वितरण के संदर्भ में सरकार को आलोचना करना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि राशनिंग के माध्यम से असामाजिक व अनैतिक रूप से व्यापारियों व उत्पादकों द्वारा की गयी जमाखोरी पर प्रतिबन्ध लगता है, और वे जमाखोरी नहीं कर पाते, जिससे कि आवश्यक वस्तुओं का अभाव नहीं हो पाता ।

§3§ <u>समय का सदुपयोग</u> :- राशनिंग के माध्यम से लम्बी-लम्बी कतारों व पंक्तियों से बचत होती है, क्योंकि प्रत्येक मुहल्ले में उस वस्तु के संदर्भ

में राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत खुली दुकानों से हमें मनचाही वस्तु गंतव्य स्थान पर उपलब्ध हो जाती है । इसके माध्यम से "पंक्ति व्यापार" को समाप्त कर दिया जाता है । परिणामस्वरूप इन पंक्तियों में खड़े होने वाले श्रमिकों का जो श्रम के घंटों की हानि होती है, उस पर रोक लगायी जा सकती है । इस श्रम के घंटो का उपयोग वे देश को उत्पादन कार्यों में लगाते हैं, जिससे कि देश का उत्पादन बढ़ता है और आर्थिक विकास होता है ।

<u>§4§ प्रशासनिक अधिकारियों के कार्य में सहायता</u> :- राशनिंग प्रणाली के माध्यम से प्रशासनिक अधिकारी भविष्य में होने वाली मांग का अनुमान आसानी से लगा लेते हैं कि भविष्य में खाद्यान्नों की मांग कितनी होगी, इनके लिए यह एक जादुई घड़ी के समान है । मांग के अनुसार वे उतनी पूर्ति के लिए पर्याप्त भण्डारण व्यवस्था करते हैं ।

<u>§5§ काले बाजार की कमी में सहायक</u> :- राशनिंग काले बाजार के अवसर को घटाती है, क्योंकि इसके वितरण पर पूर्ण नियंत्रण होता है । जब सभी व्यक्तियों की आवश्यकतानुसार वस्तुओं की पूर्ति उचित समय, स्थान व उचित मूल्य पर होगी तो कोई भी व्यक्ति उस वस्तु को बाजार से काले या अधिक मूल्यों पर क्रय नहीं करेगा । इस प्रकार काले बाजार के अवसरों पर अपने आप कमी आती है ।

<u>(6) अनावश्यक उपभोग पर प्रतिबन्ध</u> :- राशनिंग के द्वारा अनावश्यक रूप से किये जाने वाले उपभोग पर प्रतिबन्ध लगता है जो कि अनावश्यक रूप से बर्बादी का कारण होता है । जब खाद्यान्नों की, विशेषकर युद्ध के समय लागू होता है । तो राशनिंग से अनावश्यक वस्तुओं के उपभाग को कम किया जा सकता है । इससे जन साधारण का नैतिक स्तर ऊंचा उठता है, लोगों में देश-भक्ति की भावना व्याप्त होती है और वे खाद्या-न्नों का उपयोग कम करके देश के प्रति वफादारी का परिचय देते हैं ।

<u>(7) खाद्यान्नों की बर्बादी पर रोक</u> :- राशनिंग के माध्यम से प्रत्येक परिवार में होने वाली खाद्यान्नों की बर्बादी पर रोक लगायी जा सकती है । राशन की मात्रा प्रति ईकाई के आधार पर निर्धारित की जाती है, जिससे कि खाद्यान्नों का आर्थिक रूप से समुचित उपभोग हो सके । जब एक निश्चित मात्रा ही राशनिंग के आधार पर प्राप्त होगी तो प्रत्येक व्यक्ति यह सोचेगा कि जिसको जितनी आवश्यकता होगी, उतना ही वह क्रय करेगा, क्योंकि जब अधिक राशन नहीं प्राप्त होगा तो बर्बादी होगी ही नहीं, इसके अतिरिक्त जिस परिवार में दूध, मांस, फल का उपयोग होता है वहां पर खाद्यान्न की मात्रा का अपने आप आधिक्य हो जायेगा । जब प्रत्येक व्यक्ति की मस्तिष्क में यह भावना जागृत हो जायेगी तो प्रत्येक व्यक्ति खाद्यान्न की बर्बादी पर रोक लगायेगा ।
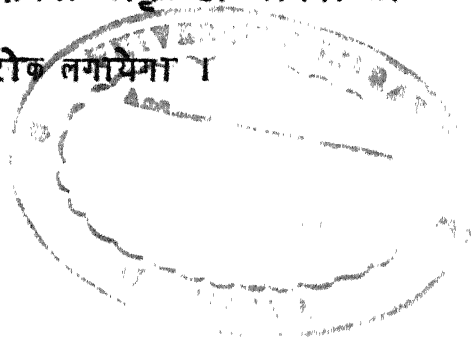
<u>§8§ सामाजिक कुरीतियों पर नियंत्रण</u> :- राशनिंग के द्वारा रूढ़िवादी, परम्परागत, धार्मिक व सामाजिक उत्सवों पर रोक लगायी जा सकती है। जब राशन की निर्धारित मात्रा से अधिक राशन प्राप्त नही होगा तो समारोहों या सांस्कृतिक उत्सवों पर गांव वालों को भोजन कहां से खिलाया जा सकेगा। इस कारण आम जनता इसमें बचत करेगी। प्रत्येक आदमी अपनी बचत का अधिकतम उपयोग करेगा। किसी भी प्रकार के बाह्य संकट पर देश को खाद्यान्न समस्या में नही जूझना पड़ेगा।

<u>§9§ सरकार पर विश्वास</u> :- राशनिंग व्यवस्था लागू रहने के कारण युद्ध के समय सरकार जनता का विश्वास जीतने में सक्षम रहती है, क्योंकि सरकार युद्ध के अतिरिक्त अन्य समय में एक निश्चित मात्रा ही राशनिंग के माध्यम से वितरित करती है, इससे जनता को ई भी परेशानी नहीं होती और उसका विश्वास सरकार पर बढ़ता है।

राशनिंग की समस्यायें

कोई भी प्रणाली चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, उसमें कुछ न कुछ कमियां अवश्य होती है। यदि किसी भी प्रणाली में कोई कमियां न हो तो हम उसे अच्छी तरह लागू कर ही नही सकते क्योंकि जब किसी भी प्रणाली या अर्थव्यवस्था में कोई कठिनाई महसूस होती है तो उसको दूर करने के लिए यथासंभव प्रयास किया जाता है। इसी तरह राशनिंग व्यवस्था में भी बहुत सी समस्यायें हैं जो निम्नलिखित है -

§1§ खाद्यान्नों की अनियमित पूर्ति :- राशनिंग व्यवस्था के संदर्भ में यह कहा जाता है कि इसकी पूर्ति अनियमित रहती है अर्थात् समय पर खाद्यान्नों की पूर्ति नहीं हो पाती । उपभोक्ताओं को लम्बी-लम्बी लाइनों में खड़े होकर खाद्यान्नों को प्राप्त करना पड़ता है । यह सरकारी आपूर्ति के कारण होता है । राशनिंग प्रणाली को एक व्यवस्थित व योजनाबद्ध तरीके से लागू की जाये तो राशनिंग का स्वागत खुले हृदय से होता है । इस सम्बन्ध में राशनिंग का विरोध करने का तात्पर्य यह है कि यह विरोध राशनिंग प्रणाली का नहीं है, बल्कि राशनिंग के कुप्रबन्ध, भ्रष्टाचारी व अप्रभाव के कारण इसका विरोध किया जाता है । अधिकारी वर्ग सब कुछ जानते हैं, अनुभव भी करते हैं परन्तु उसके समाधान के लिए कोई उपयुक्त कदम नही उठाते ।

§2§ अपर्याप्त आंकड़े :- राशनिंग व्यवस्था लागू करने के पूर्व आंकड़ों की अपर्याप्ता होती है । सम्बन्धित आंकड़ें नही उपलब्ध होते कि खाद्यान्न का कितना उपभोग होता है और व्यक्ति सामान्य और शान्ति के दिनों में कितना उपभोग करते हैं जिससे कि खाद्यान्नों की पूर्ति को नियमित करने में आसानी हो सके । अपर्याप्त आंकड़ों के कारण, खाद्यान्नों की पूर्ति अनियमित होती है और उसकी हानि उपभोक्ताओ को उठानी पड़ती है ।

(3) विभिन्न खाद्य पदार्थों की विभिन्न रुचि :- खाद्य सामग्री का व्यक्तिगत तौर पर उपभोग करना और इस सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग स्वाद होता है । हमारे देश में परिवारों की विविधता के कारण, खाद्य के उपभाग की भिन्नता रहती है । समाज रूढ़िवादी व परम्परागत तरीकों पर चलने वाला है, विशेष रूप से वह खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अपेक्षा भी करता है । राशनिंग के माध्यम से सभी की रुचि को संतुष्ट रखना अत्यन्त ही कठिन है । इसी प्रकार बंगाली गेहूं का उपभाग कम करते हैं वे चावल अधिक खाते हैं जब कि पंजाबी गेहूं का अधिक उपयोग करते हैं और चावल कम खाते हैं ।

(4) अशिक्षा :- भारत में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है । निर्दोषिता व अज्ञानता के कारण व्यक्ति इस व्यवस्था का विरोध करते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि लोग सरकार की नीतियों के प्रतिकूल हो जाते हैं और सरकार की आलोचना करना प्रारम्भ कर देते हैं । वे यह भी कहते हैं कि -"यदि उनकी अपनी मुद्रा होती है तो वे जिस प्रकार जैसा चाहते, खाद्य पदार्थ को उसी तरह क्रय कर सकते थे ।" वे उसको राशनिंग की शर्त के अन्तर्गत नही रखते । यदि राशनिंग को लागू करना है तो उपयुक्त प्रचार के पश्चात ही राशनिंग व्यवस्था लागू की जानी चाहिए तभी यह प्रणाली सफल हो सकती है ।

§5§ राशन की मात्रा का निर्धारण :- जनसंख्या के विभिन्न आयु-वर्ग का विभाजन और राशन की मात्रा का निर्धारण, विभिन्न आयु वर्ग के लिए, विभिन्न स्तरों पर होना चाहिये । इस कार्य के लिए पर्याप्त अनुसंधान की आवश्यकता है, विभिन्न आयु वर्गों का सर्वेक्षण करके अनुसंधान किया जाय, तभी इस तथ्य का ज्ञान हो सकता है कि किस आयु वर्ग के व्यक्तियों का दैनिक उपभोग कितना है और इसके उपयुक्त निर्धारण से राशन की उपयुक्त पूर्ति की जा सकती है ।

§6§ एक खाद्यान्न का दूसरे खाद्यान्न से प्रतिस्थापन :- एक खाद्यान्न का दूसरे खाद्यान्न से प्रतिस्थापन आवश्यक है जिससे कि एक खाद्यान्न के अभाव की दशा में दूसरे खाद्यान्न से प्रतिस्थापन किया जा सके । जिस प्रकार चावल के स्थान पर कोदो, गेहूं के स्थान पर बाजरा । इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रतिस्थापित खाद्यान्नों को पकाने की विधि और उसको किस प्रकार से पचाने योग्य बनाया जा सकता है, उपभोक्ता को ज्ञात नहीं होता, फलस्वरूप वह इस सम्बन्ध में, उत्सुक नहीं होता । इस तथ्य से जुड़ा हुआ एक तथ्य यह है कि इसका उपभोग निम्न स्तर के लोग करते हैं, उच्च स्तर के लोगों द्वारा इसका उपभोग नहीं किया जाता, और इनके द्वारा उपभोग करने में वे अपनी हैसियत से परे समझते हैं । इस कारण भी बहुत से लोग इसका उपभोग नही करते । ब्रिटेन के भूतपूर्व खाद्य मंत्री के शब्दों में -"हम प्रत्येक व्यक्ति की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए है, न कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उस खाद्य को उपभोग के स्वाद से

संतुष्ट होने के लिए । इसका तात्पर्य यह है कि हम प्रत्येक व्यक्ति के खाद्य की पूर्ति तो कर सकते हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा खाद्यान्न के उपभोग को कैसे परिवर्तित करा सकते हैं ।

§7§ व्यापारी वर्ग द्वारा ईमानदारी :- व्यापारी वर्ग द्वारा ईमानदारी नहीं की जाती है और न ही वे नागरिकों की भावनाओं का आदर करते हैं । वे अपने लाभ के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार होते हैं और वे इसको करने के लिए वे कृत्रिम अभाव करके, कालाबाजारी को प्रोत्साहित करते हैं जिससे कि अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की व्यवस्थाएं साथ-साथ चलती रहती है और इसका दुष्परिणाम उपभोक्ताओं को वहन करना पड़ता है ।

§8§ खाद्यान्नों का केन्द्रीयकरण :- इस संदर्भ में खाद्य अपने एक निश्चित क्षेत्र में ही होता है । जबकि खाद्य दुकानों को शहर के प्रत्येक क्षेत्र में होना चाहिये, जिससे कि हर क्षेत्र के व्यक्ति राशन खरीद सकें । इसके लिए खाद्यान्नों के बाजारों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये, जिससे कि उपभोक्ताओं को राशन खरीदने में किसी भी प्रकार की असुविधा न हो सके ।

राशनिंग व्यवस्था के लक्षण

§1§ विशेष बनाम वर्ग राशनिंग :- विशेष वस्तु की राशनिंग व्यवस्था तथा वर्ग राशनिंग व्यवस्था में अंतर है । विशेष राशनिंग व्यवस्था के

अन्तर्गत उपभोक्ता उस वस्तु की निश्चित मात्रा को खरीदने के लिए बाध्य होता है । इस प्रकार की राशनिंग व्यवस्था उसी वस्तु के संबंध में सफल हो सकती है, जिस विशेष वस्तु को गुण, मात्रा स्वरूप एक ही जिस प्रकार की चीनी, नमक व माचिस । वर्ग राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता को अपनी वस्तु चुनने के लिये समान अवसर प्राप्त होता है, जिस वस्तु की उसे आवश्यकता होती है वह वस्तु यदि नही मिलती है तो उसकी प्रति-स्थापित या स्थानापन्न वस्तुयें प्राप्त हो जाती है । यह राशनिंग व्यवस्था वहीं पर सफल हो सकती हैं जहां पर उपभोक्ता को वस्तुओं के चुनाव में पर्याप्त लोच रहता है । इसके अन्तर्गत दो या अधिक वस्तुयें एक साथ राशनिंग व्यवस्था में चलती रहती है, राशन की पूरी मात्रा निश्चित कर दी जाती है, परन्तु उपभोक्ताओं को इस बात की पूरी स्वतंत्रता होती है कि वह इन वस्तुओं को जिस प्रकार से चाहे क्रय कर सकता है । कुछ विशेष परिस्थिति में कोई धारक एक अधिकतम मात्रा से अधिक राशन क्रय नही कर सकते । इसमें एक खाद्य सामग्री का दूसरे खाद्य सामग्री से आसानी से प्रतिस्थापन किया जा सकताहै । निश्चित व्यवस्था एक बिन्दु व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं की मात्राएक व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में निश्चित कर दी जाती है । यह प्रणाली उसी वस्तु के संबंध में उपयुक्त होती है, जहां कि विभिन्न प्रकार की गुणों में भी विभिन्नता मात्रा, एक ही वर्ग के अन्तर्गत रहती है इसलिए उपभोक्ता को वस्तुओं के चुनाव में स्वतंत्रता रहती है, उदाहरणार्थ कपड़ा इसमें एक वस्तु के होते हुए

भी विभिन्न प्रकार की मात्रा, गुण होते हैं । जैसे तौलिया, पैंट, शर्ट, इत्यादि और इसके विभिन्न स्वरूप भी होते हैं । इसके अन्तर्गत जिस वस्तु की पूर्ति की स्थिति अच्छी होती है उस वस्तु की कीमत उसी के आधार पर निश्चित की जाती है, यदि कोई वस्तु दुर्लभ है, उसी पूर्ति अभावग्रस्त है तो उसके मूल्य निश्चित रूप से अधिक तथा जिसकी पूर्ति अधिक है, अभाव की कोई समस्या नहीं है, उसके मूल्य कम होगें ।

यदि कुछ वस्तुयें विशेष वर्ग के लोगों की आवश्यकता होती है तो वह प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध करायी जाती है । मिट्टी के तेल के संदर्भ में, उन गृहस्वामियों को किसी भी प्रकार की मात्रा नहीं दी जायगी, जिसके पास बिजली है । युद्ध के समय मिट्टी के तेल का अभाव हो जाता है इसको विलासिता के संबंध में उपयोग करना, देश के साथ विश्वासघात के समान है क्योंकि मिट्टी का तेल उस घर के लिए नितांत आवश्यक है जहाँ पर बिजली नही है समाज के कमजोर व निर्धन वर्ग द्वारा इसका उपभोग करना तथा कुछ उत्पादन की ऐसी ईकाई होती है, जहाँ पर कि इसका उपयोग उत्पादन के लिए भी होता है । पेट्रोल के संदर्भ में जिसकी अपनी मोटरकार है, उन उपभोक्ताओं की सूची बना लेनी चाहिये, और उनको कूपन निर्गमित करने चाहिये ।

§2§ <u>प्रशासनिक केन्द्रीकरण</u> :- राशनिंग व्यवस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिये यह आवश्यक है कि राशनिंग व्यवस्था से सम्बन्धित जितने भी

अधिकारी है, उन सब का केन्द्रीयकरण हो । प्रत्येक राशन का विभाजन कर देना चाहिये । विभिन्न राशन की मात्रा के अनुसार, पूरे शहर या क्षेत्र में एक अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिये । रेलवे विभाग अपने कर्मचारियों को राशनिंग के अन्तर्गत वस्तुयें उचित मूल्य पर प्रदान कराती है । इस सम्बन्ध में सभी दुकानों के दूकानदारों को पूर्ण निश्चित मात्रा बतायी जाती है कि इतनी मात्रा निर्गमित की जानी है ।

§3§ क्षेत्रीय राशनिंग कार्यालय : कोई भी व्यक्ति बिना खाधान्नों के जीवित नही रह सकता है । इस प्रकार खाद्य पदार्थों की आवश्यकता उसे न केवल दिन में एक बार बल्कि दो बार या अनेक बार और प्रतिदिन होती है । क्योंकि यह आवश्यकता आवश्यक आवश्यकता है, इसके बिना कोई भी व्यक्ति जिंदा नही रह सकता है । ऐसे समय या परिस्थिति में जबकि इन खाद्य पदार्थों में नियंत्रण या राशनिंग व्यवस्था होती है तो उसे राशनिंग अधिकारियों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क करना पड़ता है । जब उसे आवश्यकता का अनुमान होता है तो वह उस वस्तु को पाने का प्रयास करता है और इस सम्बन्ध में अधिकारियों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क करना और भी आवश्यक सा हो जाता है जबकि उसे राशन कार्ड बनवाना होता है, या यूनिट में वृद्धि कराना होता है, यह वृद्धि परिवार में नये व्यक्तियों के आगमन के द्वारा होती है । जबकिसी व्यक्ति का राशनकार्ड खो जाता है तो उसको अपना राशनकार्ड बनवाना होता है या यूनिट में वृद्धि कराना होता है या निवास स्थान के बदल जाने पर उसमें संशोधन की आवश्यकता

होती है तो उसे इस कार्यालय का चक्कर लगाना पड़ता है । वह राशनिंग कार्यालय में तभी जाता है जबकि उसकी कुछ शिकायत या उसकी कुछ आवश्यकता होती है तभी वह इन कार्यालयों में जाता है, इसलिये इन क्षेत्रीय राशनिंग कार्यालयों का विभिन्न क्षेत्रों में होना नितांत आवश्यक होता है जिससे कि उपभोक्ताओं को परेशानी का सामना न करना पड़े । यदि क्षेत्रीय कार्यालय उस क्षेत्र के बाहर होगा तो उसे अपनी समस्याओं के समाधान के लिए काफी परेशानी उठानी पड़ेगी । यह लोकहित या प्रशासन दोनों की दृष्टि से उपयोगी होगा कि शहर को पाँच या छः भागों में बाँट दिया जाय और इस क्षेत्र में एक कार्यालय खोल दिया जाय, वहाँ पर कि एक अधिकारी होगा । इस कार्यालय का उद्देश्य उस क्षेत्र के निवासियों व व्यक्ति की समस्याओं को देखना तथा उसको यथासंभव हल करने का प्रयास करना है । इसलिए राशनिंग अधिकारी का केन्द्रीयकरण व प्रशासनिक अधिकारी का विकेन्द्रीकरण उपभोक्ताओं व लोकहित की दृष्टि से अत्यन्त ही आवश्यक है । एक पूछ तांछ खिड़की होगी, जहाँ पर उपभोक्ता जाकर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं । वर्तमान समय में प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार की व्यवस्था में लागू हैं ।

(4) प्रचार व प्रसार :- राशनिंग के सफल संचालन के लिये यह आवश्यक है कि इसका प्रचार व प्रसार सरकार बहुत ही विवेक व बुद्धिमानी से करे । इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि बिना प्रचार व प्रसार से राशनिंग व्यवस्था सफल हो सकती है । खाद्यान्नों के सम्बन्ध में यह जानना

तो अत्यन्त ही आवश्यक होता है कि इस सम्बन्ध में सरकार की क्या राय है, सरकार क्या कर रही है । भारतीय, अफवाहों को सुनने व इनमें ज्यादा विश्वास रखते हैं, वह इन अफवाहों को प्रशासन को नही बताना चाहता । इसलिये सापेक्षिक रूप से यह आवश्यक है कि सरकार बुद्धिमानी से प्रचार करके उपभोक्ताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें, उसकी सहायता प्राप्त करके राशनिंग व्यवस्था को सफल बना सकती है । राशनिंग की तकनीकी व इसके अध्यादेशों को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके प्रचार व प्रसार को किया जाय । परिणामस्वरूप इसके सम्बन्ध में सभी को पर्याप्त जानकारी प्राप्त होगी और वे भ्रामक प्रचार में नही आयेगें । इस प्रकार का अनुभव सरकार ने अपने पिछलें अनुभवों, जिसको कि बम्बई में इस प्रकार का प्रचार कियागया था कि गलत राशन कार्ड का होना एक अपराध है जो लोग बम्बई दौड़कर चले गये है वे अपने राशन कार्ड का निरस्तीकरण करा लें, अन्यथा उन्हें दण्ड दिया जायेगा । इस प्रकार का प्रचार करने पर प्रतिदिन औसत रूप से साठ हजार राशन यूनिट, निरस्तीकरण के लिये आवेदित की गयी । अशिक्षा व अज्ञानता के कारण सरकारी गजट में जो सूचनायें प्रसारित की जाती है उसके द्वारा बहुत ही छोटे स्तर पर प्रचार होता है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति उसको पढ़ नही पाते बहुत से शहरों या स्थानों पर सरकार अपने आदेश नगाड़ों या ड्रम पिटवाकर" [46] बताती है । जनता को यह सुनाया जाता

---

46. भार्गव, आर. एन. प्राइस कन्ट्रोल एण्ड राशनिंग, किताबिस्तान, इलाहाबाद, पृष्ठ 60

है कि सरकार का यह आदेश है सभी व्यक्तियों को इस प्रकार का आदेश मानना है, यदि कोई इस प्रकार का आदेश नही मानता तो उसके दण्ड को पर्याप्त व्यवस्था है । साधारणतया व्यक्ति कानून व नियम का उल्लंघन करना पसंद नही करेगा । इस संदर्भ में, यह कहा जाता है कि- "कानून की अज्ञानता निर्दोषता को सिद्ध नहीं करती ।" कानून के न जानने पर उससे बचा नहीं जा सकता है ।

प्रचार व प्रसार एक योजना बद्ध तरीके से सरकार को करना होगा, जिससे कि जनता खाद्यान्नों की महत्ता को समझे और उसमें क्या समस्या है जिससे कि वे इस खाद्यान्नों का दुरूपयोग न करें । इस सम्बन्ध में जानकारी देने के लिये एक जन सम्पर्क अधिकारी की नियुक्ति की जाये, जो कि इस प्रकार के कार्यों को करता रहे । इस प्रकार वे अधिकारी का कार्य यह होगा, कि वह जनता व प्रेस की सहानुभूति प्राप्त करें, और इसके माध्यम से जनता को समझाये । इस प्रकार के विस्तृत प्रचार की आवश्यकता उसी देश में होती है, जहां पर सभी व्यक्ति शिक्षित होते हैं, उसी देश में इस प्रकार के विस्तृत प्रचार प्रसार से लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जाता है, परन्तु उसकी महत्ता वहां पर और भी अधिक होती है जहां पर शिक्षित व्यक्ति थोड़ी मात्रा में होते हैं । इस प्रकार के प्रचार व प्रसार के लिये लाउड - स्पीकर लगी गाड़ियों को विशेष रूप से ऐसे क्षेत्र में भेजा जाता है जहां पर कम शिक्षित व्यक्ति होते हैं वे इस प्रकार के आख्यान या व्याख्यान प्रसारित

करके जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हैं । इस सम्बन्ध में यह बताया जाता है कि सरकार क्या कर रही है, उसकी नीतियाँ क्या है, सिनेमा व पत्र पत्रिकाओं में भी उसको विज्ञापित किया जाता है । जहाँ जिस प्रकार से संभव होता है वहाँ उसी प्रकार से लोगों में राशनिंग के लिये उत्साह पैदा किया जाता है ।" बम्बई में उस समय सरकार ने 20 मिनट की एक खाद्य नियंत्रण व राशनिंग की पर फिल्म बनायी थी, जिसे वहाँ के स्थानीय सिनेमाघरों में दिखाया जाता था ।[47] पोस्ट व चित्रों को बनाकर भी लोगों को राशनिंग के सम्बन्ध में विशेष तौर पर बताया जाता है परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि समाचार पत्रों में दिये गये विज्ञापन अपने उचित स्थान पर है या नहीं, कहीं ऐसा नहीं है कि यह विज्ञापन या सूचना ऐसे स्थान पर हो, जहाँ पर लोगों की निगाहें जा ही नहीं सकती ।

§5§ गणना :- राशनिंग व्यवस्था को प्रचलित करने के पूर्व यह आवश्यक है कि कितने लोग राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत है, उनकी संख्या मालूम की जाये । बिना गणना किये यह कार्य संभव नहीं हो सकता । राशनिंग अधिकारी को इस प्रकार का अधिकार देना चाहिये कि वह गणना अधिकारी की नियुक्ति करे और इन लोगों को वांछित सूचना एकत्र करने के लिए आदेश दे । उच्च अधिकारी को यह आदेश होगा कि वह जहाँ,

---

47. भार्गव, आर.एन.प्राइस कन्ट्रोल एण्ड राशनिंग किताबिस्तान, इलाहाबाद पृष्ठ 6।

चाहे, जिस घर में प्रवेश कर सकता है और झूठी सूचना बताने वाले गणक को पदच्युत कर सकता है । सभी घरों की संख्या अंकित होनी चाहिये, जिससे गलत या झूठे संख्या वाले घरों को पकड़ा जा सके । पिछली जन-गणना इस प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पाती । इसलिए यह आवश्यक है कि जनगणना करते समय इस प्रकार के सूचनाओं के एकत्रीकरण का भी पर्याप्त ध्यान रखना चाहिये । पूर्व जनगणना में, गणक किसी न किसी व्यवसाय में लगे थे, इस कारण उनका व्यक्तिगत हित इस कार्य में नहीं था, वे अपने इच्छानुसार ही कार्य करते हैं । परन्तु वर्तमान समय में इस कार्य को करने के लिये व्यक्तियों की नियुक्ति थोड़े समय के लिये होती है ।

इस गणना कार्य के लिये पर्यवेक्षक व उपपरिवेक्षक की नियुक्ति की जाये, जो कि गणकों के कार्य को देखे कि वे सभी घरों में जाकर उनसे सभी प्रश्नों को पूछते हैं या नहीं, यदि किसी व्यक्ति को लिखना पढ़ना नहीं आता है तो उसका कार्य स्वयं करेंगें, और राशनिंग अधिकारी द्वारा मांगी गयी वांछित सूचना एकत्रित करेंगें । इस सम्बन्ध में यह उपयोगी सिद्ध हो सकता है कि प्रत्येक मोहल्लों में मोहल्ला समिति का निर्माण कर दिया जाये तथा उसके प्रधान को इसका कार्य सौंप दिया जाये जो कि इस कार्य को करे । इससे बहुत बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी तथा असामाषिक या झूठी गणना कार्य को कम करने में सहायता प्राप्त होगी । यदि किसी ऐसे उद्योगों के सम्बन्ध में राशनिंग व्यवस्था लागू की जाती है जो कि

जानवरों के खाने के काम में आ सकती है तो उसके लिये कितने जानवर है, उनकी भी गणना करनी होगी । इन सब जानवरों के लिये अलग से राशन कार्ड निर्गमित करने चाहिये, तथा इसके साथ ही साथ उसकी मात्रा भी निश्चित कर देनी चाहिये । यह गणना कार्य एक निश्चित समय में सभी वर्षों को लेते हुये को जानी चाहिये, जिससे कि वास्तविक संख्या का पता लगाया जा सके । इसलिये राशनिंग के क्षेत्र को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि गणना कार्य में एकत्र की गयी सूचनायें बृहत्र पैमाने पर एकत्र की जायें, जिससे भविष्य में होने वाली समस्त आकस्मिकता की पूर्ति की जा सके । गणना कार्य के पूर्व इसको करने के लिये स्पष्ट निर्देश जारी किये जाये जिससे कि यह कार्य ठीक ढंग से हो सके, अपूर्ण गणना कार्य में राशनिंग व्यवस्था को लागू करना बहुत बड़ी गलती करना होगा ।

§6§ <u>राशन कार्ड या कूपन</u> :- राशनिंग अधिकारी राशन कार्ड या कूपन जो आवश्यक समझें, अहस्तांतरणीय प्रदत्त के रूप में निर्गमित कर सकते है । जो राशनिंग वस्तुओं को क्रय करने के लिये होगा । यदि कूपन निर्गमित करते हैं तो जहां से राशन की वस्तुयें वे प्राप्त करते हैं उनकोउसे देना होगा, परन्तु राशन कार्ड निर्गमित करने में ऐसा नही करना होता । कूपन उस सम्बन्धित व्यक्ति को प्रति सप्ताह या प्रतिमाह लेना पड़ेगा, जिसके लिए उसे पूर्ति कार्यालय जाना पड़ेगा । जहां पर की उसका अनावश्यक रूप से समय बर्बाद होगा । खाद्य वस्तुओं के सम्बन्ध में राशन कार्ड अत्यन्त ही

आवश्यक है यह राशन की वस्तुओं को प्रकृति के ऊपर निर्भर करता है कि उसकी प्रकृति क्या है, राशन कूपन में, असमायिक रूप से प्रशासनिक व्यय बढ़ जायेगा और उपभोक्ताओं को भी इससे परेशानी होगी । प्रत्येक खाद्य वस्तुओं के लिये अलग-अलग कूपन निर्गमित किया जाये, यह प्रणाली कूपन निर्गमित करने में अत्यन्त ही दुरूह हो जाती है । इसलिये कूपन को निर्गमित नहीं करना चाहिये । मिट्टी के तेल, खाद्यान्न, ईंधन, चीनी आदि जिसकी की पूर्ति नियमित रूप से वितरण के लिये होती है, इसके सम्बन्ध में कूपन की अपेक्षा राशन कार्ड में बचत होगी । जहाँ पर जिस वस्तुओं की पूर्ति अनिश्चित होती है उसका वितरण समय-समय पर असमायिक रूप से होता है उसको वहाँ पर कूपन देकर उसकी पूर्ति को समा-योजित किया जा सकता है जहाँ जितनी पूर्ति होगी उतना ही कूपन निर्गमित किया जायेगा, उससे अधिक कूपन निर्गमित नहीं किया जायेगा । कूपन का निर्गमन स्वेच्छापूर्वक मोहल्ला या प्रार्थना पत्र या क्षेत्र प्राप्त होने की प्राथमिकता के आधार पर निर्गमित किया जायेगा ।

<u>§7§ राशन कार्डों का निर्गमन</u> :- राशन कार्ड के निर्गमित करते समय यह समस्या होती है । कि राशन कार्ड व्यक्तिगत रूप से निर्गमित किये जाये या पारिवारिक रूप से यह दोनों प्रकार से निर्गमित किया जा सकता है । व्यक्तिगत लोगों को भी राशन कार्ड निर्गमित किये जा सकते हैं । परिवार को राशन कार्ड निर्गमित करने के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इसमें व्यर्थ के कागज की बचत हो-ती है । व्यक्तिगत राशन कार्ड निर्गमित करने

पर उस राशन कार्ड का लेखा जोखा रखने में भी परेशानी उठानी पड़ती है परन्तु पारिवारिक राशन कार्ड के निर्ममित करने में इस प्रकार की कोई भी परेशानी नहीं होती क्योंकि इस प्रकार के राशन कार्ड सम्पूर्ण परिवार को दिये जाते हैं। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि जब परिवार के कुछ व्यक्ति बाहर घूमने या नौकरी करने चले जाते हैं तो उस परिवार का सम्पूर्ण राशन प्राप्त कर लिया जाता है जो कि उचित नही है। इस प्रकार के अपराधों का पता लगाना नितांत आवश्यक हो जाता है, परन्तु व्यवहारिक रूप से इसका पता लगाना कठिन है। पारिवारिक राशन कार्ड के सम्बन्ध में एक समस्या यह भी है कि वयस्क लड़की जिसकी शादी हो जाती है और शादी के उपरान्त वह अपने पति के घर चली जाती है और उसका नाम ससुराल के सदस्यों में हो जाता है और राशन कार्ड में एक यूनिट ‡एक सदस्य‡ की वृद्धि करायी जाती है किन्तु अधिकांशत: लड़की के मायके में उसकी एक यूनिट को कटवाया नहीं जाता परिणामस्वरूप उसके नाम से दो स्थानों पर राशन या खाद्य पदार्थ उठाया जाता है। इस प्रकार का अपराध राशनिंग अधिकारी सिद्ध ही नहीं कर सकता कि इस समय उस व्यक्ति जिसका कि राशन कार्ड प्राप्त किया जा चुका है, वह अमुक व्यक्ति बाहर था। वह व्यवहारिकता की दृष्टि से शून्य के बराबर है। व्यक्तिगत राशन कार्ड के सम्बन्ध में यह अत्यन्त ही कठिन होता है कि व्यक्ति बाहर गया है और उसका राशन कार्ड कोई दूसरा व्यक्ति आकर प्राप्त कर ले, और इस सम्बन्ध में उसकी अनुपस्थिति अपने आप सिद्ध हो जायेगी। इस प्रकार

राशनिंग अधिकारी, जनता द्वारा राशन कार्ड के सम्बन्ध में की गई बेईमानी पर रोक लगा सकते हैं । कुछ व्यक्ति अपने राशन कार्ड का नवीनीकरण कराने नहीं जाते, क्योंकि उस परिवार के कुछ सदस्य बाहर चले जाते हैं और नवीनीकरण कराने में उसकी ईकाई कम हो जाती है, इसलिये वे आवश्यक रूप से उसमें संशोधन में देर करतेरहते हैं इसलिये व्यक्तिगत राशन कार्ड में प्राथमिकता देनी चाहिये । बम्बई के अधिकारियों का अनुभव इसको सिद्ध करता है कि पारिवारिक राशन कार्ड की अपेक्षा व्यक्तिगत राशन कार्ड अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है । उत्तर प्रदेश में जब राशनिंग प्रणाली प्रचलन में आयी तो अधिकारियों ने पारिवारिक राशन कार्ड निर्गमित करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु वे इसमें क्या अच्छाइयाँ व बुराइयाँ है वह स्वयं भी नही जानते थे ।[48]

रेस्तरां, होटल, कैफे, खाने के स्थानों को अलग से राशन कार्ड निर्गमित किया जाना चाहिये । इस सबको राशन कार्ड निर्गमित करते समय बहुत सी सावधानी बरती जानी चाहिये, उसके बाद उन सब को राशन कार्ड निर्गमित किया जाना चाहिये । उसी सामान्यतया आवश्यकता जहाँ पर की स्वयं के रेस्तरां में कितने व्यक्ति वहाँ खाते हैं, कितनी मात्रा में ईंधन की वहाँ खपत होती है, कितनी खाद्य सामग्री प्रयुक्त होती

---

48. भार्गवा, आर.एन. प्राइस कन्ट्रोल एण्ड राशनिंग, किताबिस्तान, इलाहाबाद पृष्ठ 65

है, कितने नौकर कार्य कर रहे हैं, कितना किराया देते हैं कितना आयकर देते हैं । इन्हीं सभी के आधार पर उसकी मात्रा निश्चित की जाती है । इनकी मात्रा बहुत ही सावधानी के साथ निश्चित करनी चाहिये, आवश्यकता पड़ने पर इसको बाद में भी बढ़ाया जा सकता है । किसी भी अतिथि के आकस्मिक या अस्थायी रूप से आने पर एक प्रार्थना पत्र के द्वारा कार्ड निर्गमित किया जा सकता है जो अतिथि तीन दिन से अधिक ठहरता है उसे भी राशन कार्ड निर्गमित किया जा सकता है । तीन दिन से कम ठहरने पर उसे खाना होटलों में ही खाना पड़ेगा ।

राशन कार्ड जारी करने के पूर्व इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि यह सावधानी बरती जाये कि राशनिंग वस्तुओं की सूची में आवश्यक वृद्धि समय-समय पर की जाती रहे, जिससे कि अन्य वस्तुओं पर उसका उचित प्रभाव पड़े सामान्यतया यह देखा गया है कि जब एक खाद्य वस्तु पर राशनिंग व्यवस्था लगायी जाती है तो अन्य खाद्यान्नों का मूल्य अपने आप बढ़ने लगता है । इसलिये उस दशा में आवश्यक हो जाता है कि जिस वस्तु पर राशनिंग व्यवस्था नही लगायी गयी है । उस पर भी वितरण के सम्बन्ध में नियंत्रण लगाने चाहिये ।

राशनिंग अधिकारी को यह निश्चित करना होगा कि किस-किस समय राशनिंग वस्तुओं की पूर्ति की जायेगी । यह बात ध्यान देने योग्य

§8§ राशन की दुकानों का चयन :- राशन की दुकानों का चयन एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कार्य है । इसका निर्धारण किस आधार पर किया जायेगा, इसके लिये पूर्व निर्धारित योजनाबद्ध ढंग से कार्य करना होगा । इसके निर्धारण के सम्बन्ध में मोहल्ला खाद्य सलाहकार समिति अच्छा मार्ग दर्शन कर सकती है । सामान्यतया राशन की दुकानें, भ्रष्टाचारी, घूस-खोरी का बहुत बड़ा अवसर प्रदान करती है । यदि इतना निर्धारित मोहल्ले के आधार पर होता तो उपभोक्ताओं के हित में होगा कि उनकी वस्तुओं को क्रय करने के लिये अपने निवास स्थान से अधिक दूर नहीं जाना पड़ेगा । यदि वास्तविक रूप से फुटकर व्यवसाय पर नियंत्रण पाना है तो अधिकारियों को यह चाहिये कि इस दुकान का लाइसेंस अन्य व्यक्तियों को दिया जाये, उसके साथ ही साथ सरकार स्वयं भी इन दुकानों को खोले और उससे वितरण कार्य को कराये । वर्तमान समय में इस प्रकार की दुकानों का लाइसेंस देते समय सहकारिता को भी प्राथमिकता दी जा रही है । ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश दुकानें सहकारी स्तर पर ही चलायी जा रही है ।

1. साधन सहकारी समितियाँ, सरकारी व अर्द्धसरकारी निगम एजेन्सी उत्तर प्रदेश उपभोक्ता सहकारी संघ अथवा प्रदेशीय सहकारी संघ द्वारा संचालित सहकारी समितियाँ ।

2. लड़ाई में मारे गये सैनिकों के परिवारों के सदस्य ।

3. स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, लड़ाई में घायल के परिवार के सदस्य तथा विकलांग व्यक्ति ।

4. अनुसूचित जाति तथा जनजाति के व्यक्ति ।

5. भूतपूर्व सैनिक ।

6. सेवा निवृत्त सरकारी कर्मचारी ।

7. अन्य स्थानीय व्यक्ति ।

वरीयता क्रम में एक ही श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों में से जो व्यक्ति परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रीन कार्ड धारक होंगे उनको उन श्रेणी के व्यक्तियों में अन्य अर्हताएं समान होते हुए वरियता दी जाती है ।

हमारी सबसे बड़ी कमी यह है कि हम अपने देश या परिवार या समाज का लाभ नही सोचते, केवल अपना व्यक्तिगत हित देखते हैं । इसमें आपस में सामूहिक रूप से कल्याण की भावना नही होती वे अपना व्यक्तिगत स्वार्थ ही देखते हैं, इसलिये सरकार लोगों की मस्तिष्क में व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर देश हित की भावना जागृत नही कर पाती । साधारणतया व्यक्तियों के मष्तिष्क में यह होता है कि इस समय युद्ध की स्थिति नहीं है, परिणाम स्वरूप सरकार लोगों का नैतिक प्रयास से अभावग्रस्त होती है, वे नैतिक रूप से सरकार को सहयोग नहीं देते, परिणाम स्वरूप नैतिकता के सहारे सरकार आधिक्य वाले क्षेत्रों से खाद्यान्नों को निकालने में सफल सिद्ध

नहीं होती । सरकार खाद्य समस्या से प्रभावकारी ढंग से निपटने के लिए जो सम्पूर्ण देश में व्याप्त थी, फसल के असफल हो जाने पर, प्राकृतिक रूप से वर्षा की अनियमितता, महामारी व बिमारी के कारण, कृषक भूखों मरने के लिये विवश होते थे, इसलिये वे फसल के दिनों में अपने खाद्यान्नों को सुरक्षित रख लेते हैं । परिणामस्वरूप खाद्य का संकट और भी गहरा होता जाता है ।

राशनिंग व्यवस्था की बहुत ही आलोचना की जाती रही है कि यह व्यवस्था अच्छी नही है, उसका कारण यह है कि यह उपभोक्ता की पसंद पर प्रतिबन्ध लगाती है । उसे स्वयं पसंद करने की कोई आवश्यकता नहीं होती, राशनिंग व्यवस्था के अन्तर्गत जो वस्तुयें होती हैं, उन्हें उन पर निर्भर होना पड़ता है । कुछ विशेष परिस्थिति में तो खाद्य राशनिंग बहुत ही कठोर रूप से लागू की जाती है । यह किसी भी भू स्वामी या कृषक द्वारा वर्ष भर में होने वाली खाद्यान्न आवश्यकता को उस निश्चित वर्ष में फसल खरीदने के लिये प्रेरित नहीं करती है वरन् जितना उस राशनिंग व्यवस्था के अनुसार होता है, उतना ही उसी के अनुसार उसे अपना खाद्यान्न का समायोजन करना पड़ता है । एक सामान्य बुद्धि का व्यक्ति युद्ध के अतिरिक्त दिनों में अपनी वर्ष भर की खाद्यान्न आवश्यकता का भण्डारण अपने पास कर लेता हैं, जिससे कि उसे वर्ष भर में खाद्यान्न के लिये परेशान न होना पड़े और उसकी आवश्यकता की पूर्ति होती रहे । यद्यपि वर्ग

राशनिंग के माध्यम से ही इस प्रकार की लोचशीलता को अपनाया जा सकता है । धनवानों की स्वतंत्रता का तात्पर्य यह है कि वे निर्धन वर्ग की आवश्यक वस्तुयें खरीदने में हतोत्साहित करेंगें । इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी भी सिद्धांत चाहे वह सामाजिक दृष्टिकोण से हो या राजनैतिक दृष्टिकोण से ये उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण होता है ।

(ग) उचित मूल्य की दुकानें –

समाज में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना, हमारे देश की सरकार का प्रमुख उद्देश्य है । प्रत्येक उपभोक्ता को उचित मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध होनी चाहिये । इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये सरकार द्वारा उपभोक्ताओं को दुर्लभ वस्तुओं के समान वितरण हेतु तथा बढ़ते हुये मूल्यों से रक्षा करने के लिये, राशनिंग व्यवस्था अपनायी जाती है । मूल्य नियंत्रण व राशनिंग का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ता का कल्याण करना व मूल्यों को स्थिर करना होता है । राशनिंग व समान वितरण व्यवस्था को उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये उचित मूल्य की दुकानों का प्रादुर्भाव एक फुटकर विक्रेता के परिरूप में हुआ ।

उद्गम एवं विकास

सरकार ने जब द्वितीय विश्व युद्ध के समय अकाल, अभाव व खाद्यान्नों की दुर्लभता के परिणामस्वरूप राशनिंग व्यवस्था का प्रादुर्भाव

किया व विभिन्न प्रकार की जांचों तथा विभिन्न प्रकार के योजनाओं को असफलता से सरकार को एक अनुभव प्राप्त हुआ था । इस अनुभव के फलस्वरूप सरकार ने आवश्यक वस्तुओं का वितरण अपनी घोषित नीतिके अन्तर्गत उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से कराना उचित समझा तथा इसी से उचित मूल्य की दुकानों की कार्य प्रणाली में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हुई । इसके उद्देश्य समाज के कमजोर वर्ग को आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराना तथा मूल्यों में स्थिरता प्रदान करना था, जिससे समाज के कमजोर व निर्धन वर्गों का शोषण व्यवसायिकों द्वारा न किया जा सके । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही उचित मूल्य की दुकानें और वैधानिक राशनिंग प्रणाली भी देश के विभिन्न भागों में लागू की गई । पाँचवे व छटवे दशक में आर्थिक परिस्थितियों व मूल्यों में उतार चढ़ाव के परिणामस्वरूप उचित मूल्य की दुकानों की आवश्यकता महसूस की गयी । उस समय इस प्रकार की दुकानों को "राशन की दुकान" कहा जाता था, जिसके माध्यम से एक चक्रीय फुटकर व्यवसाय सम्पन्न होता था । अभाव की अवस्था में इस प्रकार की दुकानों का विकास बहुत ही तीव्र गति से हुआ ।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में देश की खाद्य समस्या विकट रूप से गंभीर हो गयी और 1957 में एक खाद्यान्न जांच समिति नियुक्ति की गयी, जिसका कार्य पी. एल. 480 के अन्तर्गत सरकार की आयात नीति की समीक्षा करना और उसके साथ ही साथ खाद्यान्नों की सार्वजनिक वितरण प्रणाली

के अन्तर्गत उचित मू ल्य की दुकानों से वितरित करना । उत्तर प्रदेश सरकार ने 1965 में एक जाँच समिति इसकी कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में नियुक्ति की । हमारे देश में तो किसी वर्ष खाद्यान्नों की प्रचुरता रहती है और किसी वर्ष अभाव या अकाल के कमी रहती है । यह क्रम चक्रीय रूप से चलता रहता है । इसलिये यह आवश्यक होता है कि ऐसी प्रणाली अपनायी जाय जिससे हमें मानसून की दशाओं में निर्भर न रहकर, अपने आप में निर्भर हो जायें । इसलिये यह आवश्यक है कि हमारी राष्ट्रीय खाद्य नीति में खाद्यान्नों का पर्याप्त बफर स्टाक और खरीददारी हो जिससे हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत उचित मूल्य की दुकानों से खाद्यान्नों का वितरण कार्य सम्पन्न करायें । समय के विकास क्रम के साथ खाद्यान्नों का उत्पादन तथा जनसंख्या में वृद्धि होती गयी, परिणामस्वरूप वितरण व्यवस्था को और व्यापक और चुस्त करना आवश्यक हो गया । प्रत्येक वर्ष बफर स्टाक की मात्रा बढ़ती ही जानी चाहिये, तभी हम उपभोक्ता को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रमुख उद्देश्यों, सही समय, सही मूल्य, सही किस्म पर आवश्यक वस्तुयें उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराने में सफल हो सकते हैं । देश में सम्पू र्ण उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराने की दृष्टिकोण से यह आवश्यक सा हो गया कि उचित मूल्य की दुकानों की संख्या में वृद्धि की जाये । उचित मूल्य की दुकानों का विकास क्रम वर्ष व राज्यानुसार तालिका नं0 7 से स्पष्ट होता है ।

तालिका - 6

देश में उचित मूल्य की दुकानें/राशन की दुकानें

वर्ष	राज्यों में	केन्द्रशासित प्रदेशों में	कुल संख्या	आच्छादित जनसंख्या
				(करोड़ में)
1957	37007	584	37591	-
1960	50435	475	50910	-
1965	1,06580	3301	1,09881	-
1970	1,19473	2565	1,022038	-
1971	1,18337	2695	1,021032	29.94
1972	1,60995	4086	1,65081	41.17
1973	1,96499	4156	2,00655	43.53
1974	2,18450	3274	2,21724	44.14
1975	2,36777	3433	2,40210	46.94
1976	2,32681	3515	2,36196	56.59
1977	2,35088	3524	2,38622	58.91
1978	2,37702	3553	2,41255	60.14
1983	-	-	2,97000	65.6
1985	2,79701	3945	2,83646	67.3

स्त्रोत : योजना, जून 1, 1979
फाइनेन्स इक्सप्रेस फरवरी 84

तालिका 6 से यह स्पष्ट होता है कि 1957 से लेकर 1978 तक इसमें काफी तीव्र गति से इसमें वृद्धि हुई । वर्ष 1957 में देश में राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशों सहित कुल उचित मूल्य की दुकानों की संख्या 37591 में थी, वह संख्या वर्ष 1965 में बढ़कर 109.881 हो गयी, इस प्रकार इसमें लगभग तीन गुने संख्या में वृद्धि हुई और इसके पश्चात् उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही और यह बढ़कर 1971 में 1.21032 हो गयी और इसने अपने द्वारा 29.94 करोड़ जनसंख्या को अपने कार्यक्षेत्र में सम्मिलित कर लिया । इसी प्रकार इसकी संख्या 1973 व 1974 में बड़ी तेजी के साथ बढ़ी और यह बढ़कर 1975 में 2.40.210 हो गयी और इसके माध्यम से 46.94 करोड़ जनसंख्या को खाद्यान्नों की पूर्ति की जाती थी । इसी वर्ष 26 जून 1975 को देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने देश में आपात काल की घोषणा कर दी और इसी घोषणा के साथ ही साथ 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम की भी घोषणा की जिसके परिणामस्वरूप इसके विकास में काफी आश्चर्यजनक तेजी आयी । 20 सूत्री कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग, समस्त उपभोक्ताओं को उचित मूल्य की दुकानों पर वस्तुयें उपलब्ध कराना भी था । इसी प्रकार 1978 में इसकी संख्या बढ़कर 241255 हो गयी जो कि 60.14 करोड़ जनसंख्या को आच्छादित करती थी । वर्ष 1978 में उचित मूल्य की दुकानों की राज्यवार स्थिति तालिका 7 में दिखायी गयी है :-

तालिका - 7

राज्य	उचित मूल्य की दुकानों की संख्या	आच्छादित जन-संख्या करोड़ में	तिथि
आन्ध्र प्रदेश	22, 153	4.350	30. 11. 78
असम	13, 039	1. 630	31. 07. 78
बिहार	27, 109	6. 320	31. 10. 78
गुजरात	8, 956	3, 250	30. 11. 78
हरियाणा	4, 361	1. 200	31. 08. 78
हिमाचल प्रदेश	2. 765	.363	31. 08. 78
जम्मू काश्मीर	1, 167	.419	30. 09. 78
कर्नाटक	14, 642	2. 930	30. 06. 78
केरल	11, 813	2. 260	31. 10. 78
मध्य प्रदेश	16, 540	4. 390	31. 10. 78
मणिपुर	435	. 135	30. 09. 78
महाराष्ट्र	27, 553	5. 790	30. 09. 78
मेघालय	1, 393	. 159	30. 09. 78
नागालैण्ड	38	.011	31. 08. 78
उड़ीसा	11, 293	1. 962	30. 09. 78
पंजाब	11, 834	1. 679	31. 07. 78
राजस्थान	9, 236	2. 861	31. 08. 78

क्रमशः.....

सिक्किम	12	.002	31.03.78
तमिलनाडु	9,850	4.908	30.10.78
त्रिपुरा	654	.180	31.05.78
उत्तर प्रदेश	25,086	9.295	31.08.78
पश्चिम बंगाल	17,858	5.190	31.08.78
केन्द्रशासित	3,553	.840	30.11.78
सम्पूर्ण भारत	2,41,255	60.140	-

स्त्रोत : योजना, । अंग्रेजी । जून 1979

वर्तमान स्थिति -

उचित मूल्यों की दुकानों का उद्गम एवं प्रादुर्भाव समाज के उपभोक्ताओं विशेषकर निर्धन उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से हुआ । सरकार ने उपभोक्ताओं को शोषण से मुक्त कराने अर्थात जमाखोरों एवं मुनाफाखोरों से उनके हितों की रक्षा के उद्देश्य से इस प्रकार की दुकानों पर विशेष बल दिया । इस प्रणाली के अन्तर्गत जून 1979 में 2,77,000 दुकानें खोली गयी जो 1983 में बढकर लगभग 2,97,000 तक पहुंच गयी है । इसी योजना के अन्तर्गत लगभग 1,87,000 दुकानें निजी व्यवसायियों द्वारा खोली गयी । दिसम्बर

1980 में सम्पूर्ण देश में 2.75 लाख उचित मूल्य की दुकानें थी, जिनमें से 2.20 लाख दुकाने ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 0.55 लाख दुकाने शहरी क्षेत्रों में थी। 1980 के दौरान 40,000 और नयी उचित मूल्य की दुकाने ग्रामीण क्षेत्र में खोली गयी। अधिक दुकानें सहकारिता के आधार पर ही स्थापित करने का प्रावधान है, जिससे कि निजी व्यापारियों से सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्य रेखा से हटाया जा सके। एक सभा में तत्कालीन खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री ने यह कहा कि 1982-83 में 9,000 उचित मूल्य की दुकानें सम्पूर्ण देश में खोली जायेगी और प्रत्येक दुकानों में कम से कम 2000 युनिटों को दिया जायेगा। यह यूनिट की मात्रा अधिक ही है क्योंकि, अधिक यूनिट के होने से दुकानदार ग्राहकों की उचित रूप से सेवा नहीं कर पाते। उन्होंने आगे कहा इसके खोलने में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों, विशेषकर दुर्गम व पहाड़ी क्षेत्रों को भी शामिल किया जायेगा और शहरी क्षेत्रों में यह दुकानें उपभोक्ताओं की सुविधानुसार खोली जायेगी जिससे कि उपभोक्ताओं को किसी भी प्रकार की परेशानी न हो।[49]

केन्द्रीय सरकार की सलाह पर राज्य सरकार और अधिक उचित मूल्य की दुकानें आवश्यकतानुसार खोल सकती है। इस दुकानों में चलती फिरती दुकानें, दुर्गम व पहाड़ी क्षेत्रों में तथा औद्योगिक कर्मचारियों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा जायेगा और उनको वस्तुयें उपलब्ध

---

49. इकनामिक टाइम्स, मई 20, 1983

करायी जायेगी । देश में एक अक्टूबर 1983 को 2.97 लाख उचित मूल्य की दुकानें थी जबकि एक अप्रैल 1983 को इसकी संख्या 2.93 लाख थी । इन दुकानों में से लगभग दो तिहाई भाग, ग्रामीण क्षेत्रों में था ।[50]

उत्तर प्रदेश में उचित मूल्य की दुकानों की वृद्धि पर पर्याप्त बल दिया गया इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री महोदय ने मंत्रिमंडल स्तर की सभा में दिसम्बर 1984 में अपने वक्तव्य में यह कहा कि 3000 और अधिक उचित मूल्य की दुकानें उत्तर प्रदेश राज्य में खोली जायेगी । जिससे कि इन दुकानों का कार्य क्षेत्र न केवल शहरी बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों विशेषकर दुर्गम क्षेत्रों का हो सके और उस दुर्गम क्षेत्रों में व्यक्तियों को आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर उपलब्ध करायी जा सके । मंत्री महोदय ने स्पष्ट किया कि प्रदेश में इस समय 24549 उचित मूल्य की दुकाने कार्यरत हैं जिसमें से 8804 दुकानें ही शहरी क्षेत्र में है शेष 15795 दुकानें ग्रामीण क्षेत्र में है । इन दुकानों को खोलने के लिये स्थान का निर्धारण प्रत्येक जिलें में जिलाधिकारी निश्चित करेगा कि कहाँ पर दुकानें खोली जाय । जहाँ पर जिलाधिकारी उचित समझें वहाँ पर उचित मूल्य की दुकानों को खोलने की आज्ञा दे सकता है और इसी के द्वारा भी दुकानों का आबंटन किया जायेगा ।[51]

---

50. फाइनेन्शियल एक्सप्रेस फरवरी 28, 1984
51. नार्दन इण्डिया पत्रिका, सितम्बर 3, 1984

कठिनाइयाँ एवं सुझाव :

उचित मूल्य की दुकानों का आबंटन कर देना ही महत्वपर्ण नहीं है अपितु दुकानों की कार्यप्रणाली ठीक तरह से हो रही है या नहीं, ये दुकानें ठीक तरह से कार्य कर रही है या नहीं । वर्तमान समय में किये गये सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि लगभग 95 प्रतिशत लोग, उचित मूल्य की दुकानों से संतुष्ट नहीं थे ।वे इन दुकानों की कार्य पद्धति से पूर्ण रूप से असंतुष्ट पाये गये । इन उपभोक्ताओं की विभिन्न कठिनाइयाँ रहीं । एक सबसेक महत्वपूर्ण कठिनाइयाँ यह है कि, उचित मूल्य की दुकानों में उपलब्ध सामग्री की किस्म बहुत ही निम्न होती है । चीनी वास्तव में बहुत महीन या पीली होती है, चावल निम्न स्तर का होता है तथा गेहूं में पत्थर कंकड़ इत्यादि होते है । परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री खाने के योग्य नही होती । दूसरी समस्या यह है कि दुकानें सदैव बन्द रहती हैं परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को कई बार इन दुकानों का चक्कर लगाना पड़ता है और इसके बाद भी वस्तुयें उपलब्ध नहीं होती । इसके लिये प्रेस या समाचार पत्र के माध्यम से उपभोक्ताओं को सूचित कर दिया जाय कि अमुख दिन पर सभी वस्तुयें उपलब्ध रहेंगी और उसी दिन दुकान पर सभी कार्ड धारक आयेंगें, जिससे कि उस दुकानदार को एवं उपभोक्ताओं को काफी परेशानी उठानी होगी । दुकानदार अक्सर ये करते हैं कि वे अपना कोटा, महीने के प्रथम दिनों में न जाकर कुछ दिन बाद लाते हैं जिससे कि कुछ उपभोक्ता अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को बाजार से

खरीदने के लिये बाध्य हो जाते हैं और इन उपभोक्ताओं द्वारा न खरीदी हुई मात्रा को वे बाजारों में बेच देते हैं ।

सरकार का यह परम कर्तव्य है कि वह उपरोक्त कठिनाइयों को दूर करने के लिये आवश्यक प्रभावकारी कदम उठाये तथा इसके साथ ही साथ उसे उचित मूल्य की दुकानों के दुकानदारों पर विशेष नियंत्रण रखना चाहिये तथा उन्हें प्रेरणा व प्रोत्साहन देना चाहिये साथ ही साथ सरकार उचित मूल्य को दुकानों में अच्छी किस्म की सामग्री की आपूर्ति करे जिससे कि उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं के क्रय करने के लिये तत्पर्य हो सके ।

2. अन्य वस्तुओं में राजकीय व्यापार

सरकार द्वारा खाद्यान्नों के साथ ही साथ अन्य वस्तुओं में भी व्यापार किया जाता है । सरकार व्यवसाय एवं विपणन में या तो स्वयं व्यापारिक क्रियाओं को करती है अथवा सरकार की ओर से कोई एजेन्सी या निगम इस कार्य को पूरा करता है । देश के आन्तरिक व्यापार को मार्गान्तीत करने एवं समाज में व्याप्त व्यवसायिक कुरीतियों को दूर करने के लिये सरकार द्वारा भारतीय राज्य व्यापार निगम की स्थापना की गई जिसे माध्यम से सरकार द्वारा न केवल आन्तरिक व्यापार एवं उद्योग का विस्तार किया गया वरन् विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया गया जिससे कि अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित किया जा सके ।

भारतीय राज्य व्यापार निगम :-

समाजवादी समाज के महत्वपूर्ण उद्देश्य को प्राप्त करने में उस देश की योजना का अपना विशिष्ट स्थान होता है जिससे वह गरीबी से दूर का लोगों में समानता का सिद्धांत प्रतिपादित करने में सहायक होती है । वर्तमान नियोजन एवं आर्थिक जगत में किसी भी देश की सरकार द्वारा किया गया व्यवसाय अपनी अहम भूमिका रखता है । नियोजन एवं आर्थिक विकास के परिवेश में किसी भी व्यवसाय को उसके उच्चावचन एवं अनिश्चितता के सहारे छोड़ दिया जाना अनुचित है परिणामतः सरकार भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांत के अन्तर्गत आर्थिक योजना में उत्तर - दायित्व क्षेत्र जिसके अन्तर्गत उसे आर्थिक योजना के प्रारूप का निर्माण करना होता है स्वीकार करती है, इसकी प्रमुख कारण यह रहा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारा देश गरीबी बेरोजगारी अशिक्षा, अशिक्षित श्रम, स्थैतिक कृषि, पुरानी तकनीकी, असक्षम, प्रबन्धकीय योग्यता से व्याप्त था । उस समय यह अत्यन्त ही आवश्यक था कि सरकार इस प्रकार के नीति निर्देशक सिद्धांत के अन्तर्गत अपने उत्तरदायित्व को पूरा करें जिससे कि आर्थिक विकास के साथ ही साथ लोगों का सामाजिक विकास संभव हो सके । राज्य द्वारा व्यवसाय के परिणामस्वरूप देश भर के लोगों को वृहत पैमाने से होने वाली समस्याओं से बचाया जा सकता है और इसके साथ ही साथ सरकार अपने किये गये संकल्पों को पूरा करती है, राज्य द्वारा व्यापार

करने वाली सरकार निजी व्यवसाय करने वाले देशों से भी समझौता करने में सक्षम रहती है जिससे कि व्यापारियों द्वारा किये गये शोषण से बचा जा सके ।

प्रथम विश्व युद्ध ने राजकीय व्यापार के विकास का सूत्रपात किया । इस दौरान दो महत्वपर्ण घटनाएं घटी जिसने कि प्रत्येक देश की सरकारों को इस बात का अगाह किया कि वह राजकीय व्यापार की दिशा मे सोचें । प्रथम सोवियत संघ में 1918 में एक अधिनियम बनाया गया जिसके परिणामस्वरूप विदेशी व आन्तरिक व्यापार में राज्य का एकाधिकार हो गया तथा द्वितीय 1929 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी थी जो विशेषतया कृषि उत्पादों में हुयी इसी ने बेरोजगारी को जन्म दिया विश्व के भुगतान संतुलन में असन्तुलन स्थापित हो गया और पूंजी के संचालन में गिरावट आयी । द्वितीय विश्वयुद्ध में सरकारी व्यापार के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की उस समय मूल्य बहुत तेजी के साथ बढ़ रहे थे तथा उत्पादन सीमित था । अतः सरकार ने खाद्यान्न, चीनी आदि के वितरण का कार्य अपने हाथ में लिया जो राशनिंग के नाम से जाना जाता है । युद्ध के उपरान्त समाजवाद और आर्थिक नियोजन के माध्यम से सरकार ने राजकीय व्यापार के माध्यम से देश में व्यवसायिक एवं विपणन क्रियाओं को संचालित करना प्रारम्भ कर दिया ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एक ऐसी एजेन्सी स्थापित करने का विचार सरकार के सम्मुख आया जो कि विदेशी व्यापार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे उसके साथ ही साथ समय-समय पर इसके उद्देश्यों में परिवर्तन भी होता रहे । युद्ध के समय भारतीय व्यवसायिक संघ द्वारा यह सुझाव स्वतः दिया गया जो कि विदेशी शासकों के सौतेले व्यवहार से डरते थे वे भारत में ही भारतीयों को भारतीय व्यापारों से एवं लाभो से वंचित करते थे अपितु वे भारतीयों को उनके व्यवसायिक मामलों में प्राप्त आदेशों को भी नहीं देते थे। युद्ध के विषय परिस्थितियों के कारण यह समझा जाता था कि सामान्य व्यापारी अपने कार्यों को उचित ढंग से कर पाने में असक्षम है, इसलिये सरकार वहां पर अपनी एक एक सरकारी एजेन्सी स्थापित करे, जहां पर जिस देश से निजी व्यवसायी व्यापार करते हैं और वे उस व्यापार को करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं तो वहां पर सरकार अपनी एजेन्सी के माध्यम से उनसे व्यापार कर सकती है । इस प्रकार का संगठन विदेशी व्यापार का विकास करने में उपयुक्त सिद्ध हुआ है । भारत में भारतीय राष्ट्रीयता के कारण तेजड़ियों की खरीद और व्यापार की कुछ निश्चित मदों के कारण इस सुझावको नही माना गया । इसके उपरान्त 1948 के प्रारम्भ में इस पर पुनः विचार किया गया । विचारणीय विषय भारत वर्ष में मंहगाई एवं मूल्य वृद्धि था । वास्तव में भारत सरकार व्यापारियों के ऊपर निर्यात को छोड़ देती है, और इस प्रकार के व्यापारियों को केवल कुछ ही मूल्यों पर व्यवसाय करने की आज्ञा होती है । और इससे उस

व्यवसाय पर मूल्य संरक्षण देती है कि वह अपना मूल्य लगा सकते हैं जितना कि विदेशी बाजार वहन कर सकते हैं जिस कारण उनको इस अवसर से अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति हो सके । इस प्रकार आन्तरिक मूल्यों व निर्यात के मूल्यों में आपस में काफी विभिन्नता रहती है । मार्च 1948 में गोयनका ने यह प्रश्न संसद में उठाया कि सरकार खाद्यान्नों पर बहुत बड़ा बिल प्रस्तुत करने जा रही है जिसका लाभ सरकार को नहीं लेना चाहिये, जिससे मूल्यों में व विदेशी मूल्यों में इतनी विभिन्नता रहे । इस सम्बन्ध में सरकार एक निगम की स्थापना करे, जिससे कि इन सब विभिन्नताओं को समाप्त किया जा सके । इसके प्रतिउत्तर में सी॰ एच॰ भाभा जो कि तत्कालीन वाणिज्य मंत्री थे उन्होंने कहा कि सरकार इस पर विचार कर रही है और इसका निर्णय शीघ्र ही देगी । अप्रैल 1949 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की आज्ञा से एक निगम स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया तथा साथ ही साथ यह कहा गया कि कपड़ों का निर्यात उस देश में किया जाय जो इसका तत्काल भुगतान कर सके । परन्तु प्रस्ताव में विभिन्नता के कारण यह प्रस्ताव अस्वीकार हो गया ।

निगम की स्थापना की आवश्यकता को महसूस करते हुए अन्तः सरकार ने 1949 में एक समिति डा॰पी॰एस॰ देशमुख संसद सदस्य की अध्यक्षता में नियुक्त की और कहा कि -"भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वर्तमान स्थिति और भविष्य की दिशा को देखते हुये यह बहुत ही श्रेयस्कर होगा कि सरकार द्वारा प्रवर्तित एक संगठन का निर्माण किया जाये । जो किसी भी क्षेत्र में विदेशी व्यापार को अपने हाथ में ले लेगा । चाहे इस प्रकार के संगठन

का ढाँचा, क्षेत्र और कार्य प्रणाली कुछ भी हो ।" इस समिति ने एक प्रश्नावली निर्गमित की उसमें यह बताया गया कि वह केन्द्रीय व राज्य सरकारों के कर्मचारियों की विचारधारा का अवलोकन कर, व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधियों से उनकी राय ज्ञात कर तथा समिति ने कांग्रेस पार्टी को संसद के सदस्यों द्वारा तैयार किये गये पत्रों को उचित महत्त्व देते हुये विचार किया । इस समिति ने देश की मुख्य आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये राजकीय व्यापार में होने वाली समस्याओं और जोखिमों का भी अध्ययन किया और अपना प्रतिवेदन सरकार के समक्ष अगस्त 1950 में प्रस्तुत की तथा समिति ने यह भी सुझाव दिया कि राज्य व्यापार निगम की स्थापना एक बहुत लाभ दायक होगी । समिति के सुझाव इस प्रकार थे -

- सरकार की राज्य व्यापार की क्रियाकलापों जैसे - फर्टिलाइजर खाद्यान्नों, स्टील व कोयले के आयातों को अपने अधिकार में लेना ।

- पूर्व-अफ्रीका में कपड़ों के आयात को बढ़ाना जो कि कपड़ा प्रधान और कपड़ा उत्पाद के उद्योगों में प्रयुक्त होता है ।

- निजी आयातकों व निर्यातकों की हैसियत से प्रवर्तित समझौता करना जिससे कि देश में एकाधिकार प्राप्त हो सके ।[52]

---

52. गुप्ता के.आर. वर्किंग आफ स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया, एस चांद 605 कम्पनी प्राइवेट लि0 1970 पृष्ठ 47

1953 में देश की तेजी से बदलती हुई आर्थिक स्थिति की समीक्षा करने हेतु तीन व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गयी । उपरोक्त संस्तुति पर विचार करने के उपरान्त समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वर्तमान परिस्थितियां इस बात का अधिकार नही देती कि उपरोक्त वस्तुओं का आयात व निर्यात में राज्य व्यापार निगम स्थापित की जाय । समिति ने यह विचार व्यक्त किया कि -"यदि राज्य व्यापार निगम को वास्तविक रूप से लाया जाता है तो सरकार के हाथ में एक अतिरिक्त हथियारों का शस्त्रागार बन जायेगा जो कि सरकारी, आर्थिक नीतियों से व्यापार में बहुत ही प्रभावी होगी । इसके कार्य कलापों में काफी कमी होगी । उस समय के तत्कालीन वाणिज्य मंत्री ने कहा कि "यदि हम ईमानदारी से स्थिति का अवलोकन करे तो यह देखेंगें कि किसी भी परिस्थिति में यदि हमारे वित्तीय उपाय व वैधानिक शक्ति अनुपयुक्त सिद्ध हो जाते हैं तो सरकार व्यापार में परिवर्तन करके बड़ी मात्रा में लाभ कमा सकती है । इस प्रकार के अतिरिक्त लाभ कमाने से हम पीछे नही हटेंगें । इस संदर्भ में हम यह प्रस्तावित करते हैं कि राज्य व्यापार निगम की स्थापना करना आवश्यक होगा परन्तु इस संदर्भ में दो बातों पर गम्भीरता से विचार करना आवश्यक है प्रथम क्या यह व्यापार के विकास में उतनी सुविधा प्रदान करेगा जहां पर कि व्यापार सरकार के हाथ में है द्वितीय क्या यह सरकार को निजी व्यापारिक संगठन के माध्यम से उत्पन्न समस्या की पूर्ति करने में सहायता प्रदान करेगी ।

उपरोक्त वाद विवाद के बाद यह प्रस्ताव मंत्रिमंडल ने नवम्बर 1955 में राज्य व्यापार निगम की स्थापना करने को था, स्वीकार कर लिया । 18 मई, 1956 को राज्य व्यापार निगम "निजी" की स्थापना भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत एक संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में पंजीकृत हुयी । 6 अप्रैल 1959 से "निजी"शब्द हटा लिया गया । वर्तमान समय में इसका नाम भारतीय राज्य व्यापार निगम है । इसकी सहायता के लिये समय-समय पर अनेक निगमों की स्थापना की गयी । प्रारम्भ में इसकी अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रुपये थी जो 1970 में बढ़कर 15 करोड़ हो गयी । वर्तमान में इसकी अधिकृत पूंजी 15 करोड़ रुपये है । भारतीय राज्य व्यापार निगम देश के विदेशी व्यापार को करता है । यह विदेशों से आयात एवं निर्यात करके देश में होने वाली असमान वृद्धि को रोकता है । देश में खाद्यान्न के वितरण के लिये भारतीय खाद्य निगम की स्थापना, उस उद्देश्य को लेकर की गयी, जिससे वह पर्याप्त खाद्यान्नों का आयात कर एवं उनका भण्डार रखकर मूल्य स्थिरता बनाये रखे । इस प्रकार देश में सभी वर्गों को उनकी आवश्यकता की वस्तुयें इसके माध्यम से उपलब्ध करायी जा सके ।

राज्य व्यापार निगम के उद्देश्य :

भारत के राज्य व्यापार निगम का उद्देश्य मूल रूप से उसके पार्षद सीमा नियम में दिया गया है । तह सीमा नियम यह बतलाता

है कि कम्पनी के द्वारा निश्चित की गयी किसी भी वस्तु का समय समय पर या सामान्य व्यापारिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप आयात निर्यात के संदर्भ में निश्चित की जाता है । इस प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय उसके यातायात की व्यवस्था चाहे, भारत में या अन्य दूसरे विश्व के व्यापारिक क्षेत्रों में कर सकती है । इसके साथ ही साथ यह कहा कि यह लम्बे-लम्बे कदम, धीरे-धीरे व सतर्कतापूर्वक रखेगी जिससे कि व्यापारिक क्रियाएं वृहत पैमाने पर होती रहे और निगम को किसी भी प्रकार की कठिनाई न हो । आयात के संदर्भ में यह कहा गया कि आयातित कुछ आवश्यक वस्तुओं की मांग व पूर्ति में काफी अंतर रहता है उस पर भी प्रतिबंध लगाया जायेगा । सरकार वहां पर भी इसका प्रयत्न करेगी कि वहां पर भी इसकी पूर्ति सस्ते व उचित मूल्य पर करती रहे जिससे कि सभी वस्तुयें प्राप्त हो सके । निर्यात के संदर्भ में निगम कुछ लाभदायक वस्तुओं का ही निर्यात करेगी । इस प्रकार राज्य व्यापार निगम सामूहिक सौदेबाजी और परिस्थिति को उत्पन्न करने को सुविधा दे जिससे कि व्यापार को ऊंचे स्तर पर करने या वृहत पैमाने पर करने में सहायता प्रदान हो । वर्तमान समय में निगम का स्वरूप व क्रियाएं अत्यन्त ही व्यापक हो गये हैं । इस व्यापकता के स्तर को देखते हुए इसके उद्देश्य निम्न प्रकार से निर्धारित किये जा सकते हैं । -

केन्द्रीय सरकार के अनुरोध पर वस्तुओं के आयात व आंतरिक वितरण मेंसहायता प्रदान करना जबकि इसका अभाव हो जिससे कि सरकार

वस्तुओं के मूल्यों में स्थायित्व लाकर वस्तुओं का नियंत्रित वितरण कर सके ।

सरकार द्वारा सार्वजनिक हित में निश्चित की गयी वस्तुओं के आयात निर्यात देशी व्यापार व वितरण का प्रबन्ध करना ।

सरकार द्वारा निर्धारित या कम्पनी द्वारा समय-समय पर घोषित वस्तुओं के व्यापार को संगठित व समन्वित करना तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर घोषित वस्तुओं के क्रय-विक्रय तथा परिवहन को अपने हाथ में लेना ।

परम्परागत वस्तुओं के निर्यात के लिये नयी-नयी विधियों व बाजारों की खोज तथा नये नये उत्पाद में विभिन्नता लाकर इसके निर्यात व्यापार को बढ़ाना ।

कम्पनी के किसी भी व्यवसाय को चलाने के लिये वस्तुओं का निर्माण व संग्रहण ।

कम्पनी के हित को देखते हुये उत्पाद व वस्तुओं की प्रदर्शनी या मेले का आयोजन करना जिससे कि उसकी मांग में वृद्धि हो ।

कम्पनी या निगम द्वारा समय-समय पर वस्तु या सभी प्रकार की वस्तुओं चाहे वह व्यवसायिक हो या वित्ती , उस वस्तु का आदान प्रदान करना ।

प्रबंध :-

भारतीय राज्य व्यापार निगम के पार्षद सीमा नियम के अनुसार इसका प्रबन्ध एक संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है । संचालक मण्डल का निर्धारण भारत के राष्ट्रपति समय-समय पर करते हैं । इसकी संख्या अधिकतम बारह और कम से कम चार होती है किन्तु संचालक मण्डल की वास्तविक संख्या समय-समय पर घटती बढ़ती रहती है । सन् 1960 में इसकी कुल संख्या अध्यक्ष सहित 13 थी । इस प्रबन्धक मण्डल का सभापति व दो संचालक पूरे समय के लिये नियुक्त किये जाते हैं तथा कुछ अंश-कालिक होते है । इसमें से 9 संचालक मण्डल ऐसे होते हैं जो किसी भी सरकारी विभाग में कार्यरत हो और कुछ संचालक मण्डल ऐसे होते हैं जो सरकारी सेवा से निवृत्त हो गये हैं । एक प्रतिनिधि वित्त मंत्रालय, वाणिज्य मंत्रालय से दो प्रतिनिधि, एक प्रतिनिधि खाद्य व कृषि से तथा एक प्रतिनिधि भारतीय अभ्रक व प्रेषण निगम से होंगें । वर्तमान समय में इसमें कुल 11 सदस्य हैं जो कि केन्द्रीय सरकार द्वारा एक अध्यक्ष व दो संचालक पूर्णकालिक रूप से मनोनीति किये जाते हैं ।

भारतीय राज्य व्यापार निगम का महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह विदेशों में भारतीय वस्तुओं के बाजारों की खोज तथा उनसे मांग की खोज करना है जिससे कि विदेशी व्यापार में देश की वस्तुओं की मांग बनी रहे । इसका एक उद्देश्य यह है कि वह जहां तक संभव हो सके आवश्यक

वस्तुओं की पूर्ति को उचित मूल्य पर बनाने का प्रयत्न करता रहे ।

निगम का प्रमुख कार्य इस प्रकार है :-

- भारतीय वस्तुओं के विद्यमान बाजारों का विस्तार करना ।
- निर्यात के अवसरों को विविधिकरण ।
- एक निर्यात एजेन्सी के रूप में कार्य करना ।
- परम्परागत वस्तुओं के संदर्भ में नये-नये बाजारों का सृजन तथा अपरम्परागत वस्तुओं के बाजारों की खोज करना ।
- विनिमय व बाजार सन्धि के अन्तर्गत एक व्यापारिक समझौता करना ।
- ऐसी विदेशी व्यापार को करना जो व्यापारी के लिए आवश्यक है।
- व्यवसायिक संघ के आधार पर निर्यात व आयात करना ।
- कठिनता से प्राप्त होने वाले वस्तुओं की आन्तरिक वितरण की व्यवस्था करना ।
- लघु उद्योगों को विकासात्मक वित्त की व्यवस्था करना जिससे उनको निर्यात में बढ़ावा मिल सके ।
- माँग एवं पूर्ति के संतुलन को बनाये रखना ।
- मूल्य समर्पित क्रिया विधि एवं बफर स्टाक के उपायों को अपनाना जिससे कि मूल्यों में स्थायित्व प्रदान हो सके ।
- विदेशी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत वस्तुओं का आयात करना ।
- सरकारी नीतियों को लागू कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना ।
- राज्य व्यापार निगम अपने कार्यों को निम्न प्रकार से गति प्रदान करता है ।

आयात :-

राज्य व्यापार निगम आयात के सम्बन्ध में नये-नये आयामों को सम्मिलित करता है :-

§1§ देश के आर्थिक विकास में आवश्यक वस्तुओं की आवश्यकता का आयात जैसे पूंजीगत वस्तुओं, औद्योगिक कच्चा माल और निश्चित दुर्लभ वस्तुओं का आयात करना ।

§2§ उन वस्तुओं का आयात करना जिसको की देश में आवश्यकता है ।

§3§ पूर्ण यूरोपियन देशों से विशेष समझौते के अन्तर्गत व्यापारिक योजना लागू करना ।

§4§ तेजड़ियों की खरीद द्वारा अच्छी सुविधा प्रदान करने से वस्तुओं का आयात करना, जिससे कि अधिक सुविधा प्राप्त हो सके ।

§5§ वस्तुओं के मूल्यों को स्थायित्व बनाना तथा उनका वितरण उचित ढंग से उचित मूल्य पर करना ।

§6§ राज्य द्वारा व्यापार करने वाले देशों जहाँ पर एकाधिकार संहित है वहाँ से वस्तुओं का आयात करना ।

§7§ सरकार द्वारा सूचीबद्ध आयातित वस्तुओं का आयात करना जिससे कि उचित समय पर पर्याप्त पूर्ति अधिक आर्थिक मूल्यों पर प्राप्त हो सके ।

जिससे कि उद्योगों तथा अन्य उपभाग को ईकाई को उचित प्रकार से विवरण किया जा सके ताकि दोनों ईकाइयों में आपस में समन्वय की भावना रहे ।

निर्यात :-

निर्यात में प्रमुख निम्न तथ्यों का समावेश है :-

§1§ परम्परागत वस्तुओं के व्यापार को बढ़ाना तथा विश्व में अपरम्परागत वस्तुओं का परिचय कराना जिससे कि भारत को निर्यात के संबंध में नये-नये बाजार प्राप्त हो सके ।

§2§ निर्यात की मांग को पूरा करने के लिये उत्पादकों को सहायता प्रदान करना, जिससे कि वस्तुओं का उत्पादन, मांग को पूरा कर सके, उत्पादन के मार्ग में आने वाली कठिनाई तथा कच्चा माल की सुरक्षा तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की आवश्यकता को देखना ।

§3§ नये-नये विधियों द्वारा एक नये प्रकार से निर्यात संबर्द्धन करना ।

§4§ पूर्वी यूरोप के देशों में अपनी व्यापारिक योजना लागू करना ।

§5§ विशेष व्यापारिक समझौते के अन्तर्गत कठिनता से बिकने वाली वस्तुओं का निर्यात तथा आवश्यक वस्तुओं के आयात के साथ अतिरिक्त निर्यात को सुविधा देने व उनको संगठित करना ।

§6§ उत्पादकता का पर्याप्त स्तर रखकर, स्थानीय उत्पादन का स्टाक बनाये रखने में सहायता देना, जिससे कि उचित मूल्य रखा जा सके, यह तभी संभव है जबकि इस वस्तु की अधिक मात्रा में निर्यात की संभावनायें हो, जिससे कि उत्पादन के क्षेत्र में अस्वस्थता या अनियमितता को हटाकर निर्यात के लिये पर्याप्त मात्रा में वस्तुयें उपलब्ध कराना तथा स्थानीय उत्पादकों को भी उचित मूल्य पर उनको आवश्यकता की पूर्ति करना ।

§7§ विदेशों में मेलों व प्रदर्शनी का आयोजन करना जिससे कि निर्यात का सम्बर्द्धन हो तथा विदेशी व्यापार में नये-नये उत्पादन का प्रचार किया जा सके । जब लोग नयी-नयी वस्तुओं को देखेंगे तो उनकी मांग बढ़ेगी, परिणामस्वरूप निर्यात सम्बर्द्धन होगा ।

आन्तरिक व्यापार :-

- कुछ निश्चित वस्तुओं के व्यापार का आयात करना ।

- आर्थिक मूल्य को बढ़ाकर स्टाक को क्रियाओं को उस उद्देश्य से करना जो कि कृषि वस्तुओं के विकास में उचित मूल्य को स्थापित करके, आन्तरिक उत्पादन में स्थायित्व प्रदान करके, विदेशी मांग को बनाये रख सकें ।

निर्यात सम्बर्द्धन में भूमिका :-

भारतीय राज्य व्यापार निगम भारत के निर्यात के सम्बर्द्धन

हेतु अनेकानेक कदम उठाये हैं । निगम द्वारा उठाये गये उन कदमों में प्रमुख इस प्रकार है :-

- देश के निर्माताओं को संगठित करना तथा उन्हें तकनीकी तथा वित्तीय सहायता प्रदान करना जिससे निर्यात होने वाले उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि हो सके ।
- निर्यात उन्मुख संगठनों में भाग लेना ।
- विदेशी व्यापार मेले एवं प्रदर्शनियों का आयोजनकरना ।
- विदेशों में अपना कार्यालय स्थापित करना ।
- निर्यातित वस्तुओं के उत्पादन ईकाई को स्थापित करना ।
- निर्यात सहायता योजना को धर्मल्य प्रदान करना ।
- गुण नियंत्रित करने के लिये मशीनों का विकास करना ।

<u>व्यापार संबर्द्धन समझौता :-</u>

विशेष समझौते के अन्तर्गत परम्परागत वस्तुओं और अपरम्परागत वस्तुओं के अतिरिक्त आयात के विपरीत आवश्यक वस्तुओं का आयात करना।

<u>लघु उद्योगों को निर्यात सहायता :-</u>

छोटे-छोटे लघु उद्योगों के निर्माताओं को उनकी वस्तुओं के बारे में विदेशों में प्रचार प्रसार तथा आकर्षण पैकिंग, साख की सुविधा, परिवहन

की सुविधा जिससे कि विभिन्न देशों में उनकी वस्तुओं का विदेशों में निर्यात हो सके ।

आयात उन्मुख निगम में योगदान :-

कुछ विशेष निर्यात एजेन्सियों जैसे हथकरघा हैण्डलूम निर्यात निगम को संगठन के स्तर पर वित्तीय सहायता देना, जिसमें कि वह अपने निर्यात को बढ़ाने में योगदान प्राप्त हो सके ।

राज्य व्यापार निगम का मूल्यांकन :-

राज्य व्यापार निगम के कार्यों के सम्बन्ध में हमेशा से यह आलोचना होती रही है कि वह अपने कार्यों को सुचारु ढंग से नही करता जिससे कि विशेषतौर पर व्यापारियों को हानि होती है, इसका कारण वह अपने कार्यों की परिधि को लांघकर अन्य कार्यों को करने लगता है । वह अपने इस कार्य से सामान्य व्यापार के माध्यम को विस्थापित कर तोड़ देता है जिससे कि देश को बड़े पैमाने पर किसी भी प्रकार का लाभ नही होता । राज्य व्यापार निगम ने सामान्य व्यापार की रीतियों और अपने व्यापार को स्थानापन्न किया है जो कि वास्तव में उचित नहीं है क्योंकि इस संगठन का यह प्रमुख उद्देश्य नहीं है । कि वह इस प्रकार के कार्यों को करे । वर्तमान में निगम की निर्यातित वस्तुयें लोहा, मैंगनीज, जूट के थैले, कपड़ा, तम्बाकू आदि वस्तुयें हैं जिनका कि निर्यात इसके व्यापार में प्रयोग करने के पूर्व भी बिना किसी अवरोध के होता था जो कि निजी व्यापारियों

द्वारा आसानी से चलाया जाता था । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इन वस्तुओं का निर्यात किसी भी प्रकारसे इसके माध्यम से बढ़ा नहीं क्योंकि निगम में बहुत सी वस्तुओं को सारणीबद्ध कर दिया । इससे स्पष्ट यही होता है कि राज्य व्यापार निगम निजी व्यवसाय का स्थानापन्न व्यवसाय है । राज्य व्यापार निगम की ऐसी कोई एक भी व्यापारिक क्रिया नही है जो कि उसके कार्य क्षेत्र से बाहर होती है । यह सन्तोष का विषय है कि इसका कार्य क्षेत्र बहुत ही व्यापक है । निगम इस बात पर बराबर बल दे रहा है कि वह निजी व्यापार के अतिरिक्त ईकाई के रूप में कार्य कर रहा है न कि इसमें प्रतिस्पर्धा करता है । वास्तव में इसका कार्य एक पूरक के रूप में कार्य करना है न कि एक प्रतिस्पर्धी के रूप में । देश के राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि निगम निजी व्यापार को एक योजनाबद्ध तरीके से हटाकर विस्थापित हो जाय । निजी व्यापार बिना निगम की अनुमति के न तो आयात और न निर्यात ही कर सकता है । निगम के कार्यों से उत्पन्न आलोचनाओं और भ्रांतियों को समाप्त करने में सरकार ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि निगम मुख्य रूप से निजी व्यापार के एक पूरक के रूप में कार्य कर रहा है, परन्तु जहाँ पर राष्ट्रीय हित की बात आयेगी वहाँ पर यह निजी व्यापारियों के स्थान पर स्थापित हो जायेगा । सार्वजनिक विचारधारा की प्रक्रिया में यह अनिवार्य है कि निजी उद्यम को सार्वजनिक उद्यम में परिवर्तित कर दिया जायेगा । तभी देश में एक स्वतंत्र विचारधारा का श्री गणेश हो जायेगा ।

सरकार द्वारा निगम के कार्यों का अवलोकन करने के लिए एक समिति गठित की जिसने अपने आन्तरिक रिपोर्ट में यह कहा कि "निगम का व्यापार से सम्बन्ध, इसमें उनका हित संहितिहै या इसका कार्यों से पूरक होना, यदि निगम का और व्यापार का सम्बन्ध धनात्मक है तो यह निश्चित रूप से सभी के लिये लाभप्रद होगा तब निगम का स्वतः यह दायित्व हो जाता है कि वह प्रभावी परामर्श या सहायता के बारे में चिन्ता रखना तथा लोगों को आर्थिक और उचित रूप से सेवा प्रदान करें। मिश्रित अर्थव्यवस्था में यदि निगम उत्प्रेरक, विकासकृत और विचारक के रूप में कार्य करे तो निगम अच्छा सिद्ध हो सकता है । इसमें निगम का मुख्य उद्देश्य यही है कि वह निजी व्यापारियों को अधिक सुविधा प्रदान करेगा, परन्तु ऐसा नही करता । निगम के अन्य उद्देश्य में यह भी है कि जहाँ पर लाभ की मात्रा अधिक है वहाँ पर निजी व्यापार को सार्वजनिक व्यापार से स्थानापन्न कर देना ताकि इस व्यापार से अधिक कमाये गये लाभ से कुछ निश्चित व्यक्ति ही प्रभावित न हो । बल्कि उस लाभ को देश के आर्थिक विकास में लगाया जा सके । इस प्रकार की अभिव्यक्ति केवल जनता या व्यवसायिक वर्ग को भ्रांतियां ही उत्पन्न करना है। यह निजी व्यापार को अच्छी व्यापारिक सौदेबाजी व रीति से पुर्नस्थापित कर सकता है ताकि निजी व्यापार में निहित अनियमितताओं को दूर किया जा सके ।

राज्य व्यापार निगम के पार्षदसीमा नियम के उद्देश्य वाक्य में

संशोधन करना नितांत आवश्यक है क्योंकि इसके उद्देश्य वाक्य से लोगों में बहुत सी भ्रांतियां उत्पन्न होती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि इसका उद्देश्य वाक्य परिपूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया गया है । निगम देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है । जिससे कि इसमें होने वाली अनिश्चितता तथा व्यवसायिक वर्ग द्वारा उत्पन्न भ्रांतियों का निराकरण संभव हो सके । यह अनियमितता देश में लम्बे समय में होने वाले निर्यात संबर्द्धन के मामले में हानिकारक हो सकती है । इसलिये यह आवश्यक होना चाहिये कि देश के निजी व्यापार की क्या रूप रेखा होगी तभी देश का विदेशी व्यापार आश्चर्यजनक प्रगति कर पायेगा ।

व्यापारिक कार्य विधि :-

आरम्भ में निगम अपनी समस्त व्यापारिक क्रियाओं को स्वयं करता था परन्तु धीरे - धीरे इसके कार्यों को करने के लिये विभिन्न सहायक कम्पनियों व निगमों की स्थापना की गयी है । निगम न केवल निर्यात सम्बर्द्धन करता है अपितु वह विश्व की नयी-नयी अपरम्परागत वस्तुओं के संदर्भ में जानकारी प्रस्तुत करता है ।

तालिका - 8

(लाख रुपये में)

वर्ष	विक्रय	निर्यात	आयात	आन्तरिक व्यापार	कर देने के लाभ
1966-67	101.48	31.0	67.4	2.6	4.86
1976-77	975.00	666.0	301.0	8.0	26.70
1986-87	2332.03	1845.0	1795.0	6.4	89.43

स्रोत : वार्षिक प्रतिवेदन, स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया

राज्य व्यापार निगम की सहायक कम्पनियाँ :-

निगम के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि इसके कार्यों का विभाजन कर दिया जाय । उसके कार्यों को करने के लिये विभिन्न सहायक कम्पनियों की स्थापना कर उनके कार्यों का आबंटन कर दिया जाय जिससे कि यह सहायक कम्पनियाँ निगम द्वारा सौंपे गये कार्यों को अच्छी तरह कर सके । वर्तमान समय में निगम की मुख्य सहायक कम्पनियाँ इस प्रकार है :-

(1) हस्तशिल्प व हथकरघा निर्यात निगम :-

इस निगम की स्थापना जून 1962 में राजकीय व्यापार निगम

की सहायक कम्पनी के रूप में की गयी । इसकी प्रदत्त पूंजी 12 लाख रुपये राज्य व्यापार निगम ने स्वत: ले लिया । अक्टूबर 1962 में राजकीय व्यापार निगम का एक भाग हथकरघा निर्यात संगठन को एक सहायक निगम बना दिया जिससे कि भारत का हथकरघा निर्यात निगम कहा जाता है । उत्तर समन्वय और संकेन्द्रण को निश्चित करने के उद्देश्यों से यह कार्य किया गया था । निगम विकासशील देशों में हाथ से बने कपड़े, पश्चिम जर्मनी व अन्य यूरोपियन देशों में निर्यात में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है ।

(2) भारतीय परियोजना उपकरण निगम :-

इसकी स्थापना राज्य व्यापार निगम द्वारा एक अप्रैल 1971 को सहायक कम्पनी के रूप में की गयी । इसका मुख्य उद्देश्य भारत के इंजीनियरिंग उपकरणों विशेष तौर पर रेलवे के उपकरणों के निर्यात को बढ़ावा देना है । यद्यपि इस निगम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है ।

- इंजीनियरिंग एवं रेलवे के उपकरणों को विश्व के बाजारों में निर्मित करना ।
- नये-नये बाजारों की खोज करना ।
- अपरम्परागत व नये उत्पाद के निर्यात को बढ़ावा देना ।
- परियोजना विशेष रूप से रेलवे विभाग, सेवा विभाग व औद्योगिक क्षेत्र के निर्यात को बढ़ावा देना ।

बाजार की सूचनाओं के आधार पर इस निगम ने अगले पांच से दस वर्षों में अपना निर्यात सीमेंट, चीनी, रसायनिक पदार्थों तथा तकनीकी मदों पर केन्द्रित किया है । इस निगम को 1978-79 में उत्तरी क्षेत्र का सबसे अधिक निर्यात करने का पदक यांत्रिक निर्यात सम्बर्द्धन द्वारा तथा राष्ट्रीय पुरस्कार, वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्रदत्त किया गया है ।

§3§ भारतीय काजू निगम :-

इस निगम की स्थापना 1970 में काजू एवं कच्चे काजू के निर्यात के बढ़ावा देने के संदर्भ में की गयी । यह निम्न प्रकार के कार्यों को करता है ।

- कच्चे काजू के आयात के नये-नये साधनों को खोजना ।
- काजू निर्यात के लिये नये-नये बाजारों को खोजना जहां पर इसके निर्यात को किया जा सके ।
- निर्यात उन्मुख उद्योगों पर कच्चे काजू के नियमित पूर्ति उपलब्ध कराना ।

उपरोक्त कार्यों को करने के लिए निगम ने पेरिस और न्यूयार्क में अपने कार्यालय स्थापित किये हैं परन्तु इसके कार्यों से अभी तक कोई विशेष लाभ नहीं हुआ ।

§4§ केन्द्रीय भारतीय कुटीर उद्योग निगम :-

हस्तशिल्प और हथकरघा निर्यात निगम की एक सहायक संस्था के रूप में 4 फरवरी 1976 को केन्द्रीय कुटीर उद्योग की स्थापना की गयी । इसने एक अप्रैल 1976 से कुटीर उद्योग एम्पोरियम का कार्य भी अपने हाथों में ले लिया इसका प्रमुख कार्य हस्तकला व हथकरघा से तैयार कपड़ों का विक्रय करना है साथ ही साथ यह कुटीर उद्योग के विकास में भी अहम भूमिका अदा करती है ।

§5§ भारतीय खनिज व धातु निगम :-

1963 में भारतीय राज्य व्यापार निगम के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिये इसको दो भागों में विभाजित कर दिया गया और एक नया विभाग खनिज एवं धातु निगम अपने अस्तित्व में आया । इसकी अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रुपये तथा प्रान्वित पूंजी 2 करोड़ है तथा इसने अपना कार्य अक्टूबर 1963 से करना प्रारम्भ कर दिया । इस निगम के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है ।

कच्चे खनिज पदार्थों के निर्यात के लिये नयी-नयी विधियों के द्वारा बाजारों को खोजना तथा इसमें विभिन्नता उत्पन्न करना जिससे उनके निर्यात में वृद्धि की जा सके । देश में धातु व खनिज की नयी-नयी खानों को पट्टे पर प्राप्त करना व खरीदना जिससे कि वह अपने कार्यों को सुगमता पूर्वक कर सके ।

§7§ चाय व्यापार निगम :-

राज्य व्यापार निगम की सहायक कम्पनी के रूप में 1970 में चाय व्यापार निगम स्थापित किया गया इसका प्रमुख कार्य पैकटों में खुली चाय के व्यापार में भारतीय उत्पाद को बनाये रखना है । यह चाय के विपणन उपभोग तथा चाय बागानों के प्रबन्धों में सहायता प्रदान करता है एवं चाय गोदामों का प्रबंध करता है ।

उपलब्धियाँ :-

भारतीय राज्य व्यापार निगम के कार्यविधियों से इसे निम्न महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त हुई है ।

- राज्य व्यापार निगम की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि वह मूल्यों को स्थिर रखने तथा स्टाक बनाये रखता है जिससे कि मूल्यों में बढ़ोत्तरी न हो पाये । यह प्रतिदिन की दैनिक आवश्यकता को विशेष-कर खाद्य पदार्थों के मूल्य में स्थायित्व प्रदान करता है जिससे कि जनसाधारण को आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके ।

- विभिन्न वस्तुओं के संदर्भ में निगम विभिन्न प्रकार के बाजारों की खोज करता है जिससे कि वहाँ पर विशेष वस्तु का निर्यात किया जा सके । जैसे काफी के संबंध में जापान, कानाडा मैंजुसे । विभिन्न देशों में व्यापारिक मेले व प्रदर्शनों का आयोजन करना । निगम विश्व के बाजारों में नयी-नयी

वस्तुओं का परिचय कराकर निर्यात को प्रोत्साहन प्रदान करता है जिससे कि विश्व के उपभोक्ताओं में भारत द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ज्ञान हो वे उसके उपभोग के आदी हो जाय और निर्यात में सहायता प्राप्त हो ।

निगम भारतीय विदेशी व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है इसके साथ ही साथ इससे निगम अपनी महत्वपूर्ण स्थिति भी बना चुका है ।

निगम काफी, प्लाइउड, जूट के बने समान और तैयार कपड़ों के निर्यात में सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है ।

विश्व में आयातित वस्तुओं की सुपुर्दगी उनकी और किस्म के बाद उनकी सेवाओं के संबंध में उत्सुक रहते है । विदेशों के व्यापार के सम्बन्ध में विशेषकर लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं में इस प्रकार के सहायता के अपेक्षा भारतीय राज्य व्यापार निगम से करते हैं इसमें भी निगम ने आशा-तीत सफलता प्राप्त की है ।

लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के निर्यात में सहायता प्रदान करना जिससे कि उनको किसी भी प्रकार की हानि न हो । इस सम्बन्ध में जहां पर आवश्यक है वहां पर इन उद्योगों को तकनीकी सहायता भी देता है जिससे कि उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के गुण में गुणोत्तर प्रगति होती रहे ।

भारतीय राज्य व्यापार निगम की समस्यायें -

§1§ भारतीय राज्य व्यापार निगम के विकास की तुलना में इसका लाभ बहुत ही कम है जबकि निजी व्यापारियों में यह अनुपात दस प्रतिशत तो रहता ही है परन्तु इसका व्यय अन्य व्यवसायिक संस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक है ।

§2§ निगम केवल एकाधिकार वाले क्षेत्र में अपना व्यवसाय करता है परन्तु जहां उसे प्रतिस्पर्धा करनी होती है वहां पर वह ठीक ढंग से व्यापार नही करता ।

§3§ निगम की सभी सहायक संस्थाओं में समन्वय का अभाव है एक-रूपता नहीं है परिणामस्वरूप निर्णय लेने में कठिनाई उत्पन्न होती है ।

§4§ देश में जितनी भी औद्योगिक व व्यापारिक संस्थाएं कार्यरत हैं उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है ।

§5§ निगम में सेवा का अभाव है । सुविधा कम असुविधा अधिक ।

§6§ निगम के कर्मचारियों में व्यापारिक रीति-रिवाज कार्यक्षमता व अनुभव का अभाव रहता है इससे जो भी निर्णय लिये जाते हैं वे व्यापार के अनुरूप नहीं बल्कि सरकारी तंत्र के अनुरूप होते हैं ।

भारतीय राज्य व्यापार निगम के सुधार हेतु सुझाव :-

सभी समस्याओं के अध्ययन व विश्लेषण के उपरान्त इस संदर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं जिसे यदि निगम अपना ले तो वह व्यापार में महत्त्वपूर्ण यंत्र के रूप में काम कर सकता है ।

- देश के उद्योग व व्यापार से इनका व्यावहारिक रूप से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये ।

- सर्वप्रथम इनके खर्चों में कमी करनी होगी जिससे लाभ बढ़े तथा इसके द्वारा कमाया गया धन लाभ के रूप में प्राप्त हो सके ।

- निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण करना चाहिये जिससे कि निर्णय लेने में सुगमता प्राप्त हो सके ।

- विभिन्न सहायक निगम जो अलग-अलग अपना कार्य करते है उसके स्थान पर वे राज्य व्यापार निगम के ही आश्रित अलग-अलग विभागीय भण्डारों की तरह कार्य करना चाहिये ।

- कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिये कि उसमें व्यापारिक क्षमता व योग्यता हो ।

- वर्तमान अप्रशिक्षित कर्मचारियों के प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध करा कर उन्हें प्रशिक्षित किया जाय ।

- भारतीय राज्य व्यापार निगम को व्यवसायिक सिद्धान्तों के अनुरूप ही कार्य करना चाहिये । प्रशासनिक सुविधा पर ध्यान न देकर ग्राहकों को सुविधा का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है ।

यदि उपरोक्त सुझावों पर भारतीय राज्य व्यापार निगम विचार कर कार्य रूप मे पर्णित कर दे तो निगम इस देश की सरकार तथा जनसाधारण के लिये लाभदायक संस्था सिद्ध होगी ।

(ख) राजकीय नियमन :-

राज्य द्वारा विपणन क्रियाओं एवं गतिविधियों के अन्तर्गत प्रतिबन्धात्मक भूमिका का सम्पादन अनेक वैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा किया जाता है । राज्य के विधान या संविधान के अन्तर्गत जनप्रतिनिधियों से निर्मित सरकार को विभिन्न क्षेत्रों में विधान बनाने सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं । इस अधिकार का प्रयोग सरकार के द्वारा उन विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक वैधानिक व्यवस्था बनाने के लिए किया जाता है । जो देश वासियों की आकांक्षाओं के रूप में देश के संविधान मे परिलक्षित होती है ।

भारतीय संविधान मूलरूप से देश को समाजवादी समाज के रूप में स्थापित करने की जन भावना का उल्लेख करता है और इस दिशा में

सामान्य नागरिकों हेतु कुछ मूलभूत अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का अद्भुत समन्वय भारतीय संविधान में दृष्टिगोचर होता है । आर्थिक क्रियाओं में राजकीय हस्तक्षेप सम्बन्धी अधिकार की मात्रा और दिशा, देश के विधान के अन्तर्गत ही निर्धारित होती है इस प्रकार देश का संविधान इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज होता है । भारतीय संविधान में ऐसी अनेक बातों का समावेश किया गया है जो आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है तथा जिनका देश के आर्थिक और सामाजिक वातावरण पर अत्यन्त दूरगामी प्रभाव पड़ता है । भारतीय संविधान में भारतीय गणतंत्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक उद्देश्यों एवं उन्हें प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले प्रयासों की दिशा का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । संविधान के आमुख में मौलिक अधिकार एवं राजकीय नीति के दिशा निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत जन सामान्य की सामाजिक एवं आर्थिक आकांक्षाएं परिलक्षित होती है । संविधान में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के आर्थिक अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है ।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्य के लिए निर्धारित आर्थिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने हेतु देश की अर्थव्यवस्था के संचालन में व्यापक सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य है । इस तथ्य को संविधान में हुए अनेक महत्वपूर्ण संशोधन ने और भी मजबूती प्रदान की है । भारतीय जनता

ने देश को सम्प्रभुता सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में स्थापित करने का प्रस्ताव किया है इसलिये सभी नागरिक को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय दिलाने के उद्देश्यों से सरकार ने संविधान के माध्यम से अनेक प्रभावशाली कदम उठाये हैं ।

विश्वव्यापी मंदी के पश्चात् विश्व की सभी अर्थव्यवस्था में राज्य की सक्रिय भूमिका के संदर्भ में जागरूकता बढ़ती जा रही थी, भारत वर्ष में इस दिशा में प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही किये जा सके । भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्य सरकारें देश की प्रशासनिक एवं सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के बारे में विधान बनाने की अधिकारी है अतएव भारतीय संविधान में केन्द्र एवं राज्य के कार्यों का वर्गीकरण किया गया है । आर्थिक क्रियाओं में राजकीय हस्तक्षेप के सभी पहलुओं नियन्त्रा-त्मक, प्रोत्साहनात्मक तथा भागीदारी के क्षेत्र में राज्य की भूमिका में निरन्तर वृद्धि हुई है । आर्थिक क्रियाओं के नियन्त्रण के सम्बन्ध में तदनुरूप व्यापक वैधानिक प्रावधान तैयार किये गये हैं तथा आर्थिक एवं अन्य नीतियों के द्वारा उन्हें व्यवहारिक धरातल पर लाया गया है । आर्थिक क्रियाओं में गतिशीलता प्रदान करने के लिए सरकारी क्षेत्र में बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश तथा संरचनात्मक ढांचे को मजबूती प्रदान करने की दिशा में कदम उठाये गये हैं ।

समाजवादी समाज की स्थापना करने एवं उपभोक्ताओं केहितों की रक्षा के उद्देश्य से सरकार ने आर्थिक लाभ कमाने की होड़ सर्वाधिक होती है जिनके परिणाम स्वरूप वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को भूलकर समाज का शोषण करना प्रारम्भ कर देते हैं । आधुनिक सरकारें इस शोषण प्रवृत्ति पर नियंत्रण पाने के लिए विभिन्न प्रकार का अधिकार विभिन्न अधिनियमों के अंतर्गत प्राप्त कर लेती हैं । भारत में इस प्रकार के बहुत से अधिनियम हैं जिनमें उपभोक्ता के हितों की रक्षा की गयी है । ये अधिनियम निम्नवत हैं :-

1. औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम 1951
2. अग्रिम प्रसंविदे नियमन अधिनियम 1952
3. खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954
4. आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955
5. प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम 1956
6. कम्पनी अधिनियम 1956
7. व्यापार एवं व्यापारिक चिन्हन अधिनियम 58
8. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम 1969
9. विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973
10. पैकेज्ड वस्तु नियमन अधिनियम 1975
11. बाट एवं मापमान अधिनियम 1976
12. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

§1§ औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम 1951

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने देश में तीव्र औद्योगिकरण का परम लक्ष्य निर्धारित किया । इस सम्बन्ध में आजादी के पश्चात् पहली बार सन् 1948 में औद्योगिक नीति की घोषणाकरके सरकार ने देश के औद्योगिक विकास हेतु कुछ आधारभूत सिद्धांत स्पष्ट किये । इन सिंद्धातों को व्यवहारिक रूप देने के लिए सरकार ने कुछ वैधानिक अधिकार लेना आवश्यक समझा और इसी उद्देश्य से सन् 1951 में औद्योगिक §विकास एवं नियमन§ अधिनियमन पारित किया गया जो 8 मई सन् 1952 में कार्यशील हुआ अब तक इसमें कई बार संशोधन भी हो चुके हैं । मुख्यतः सन् 1971, 1973, एवं 1977 में यह अधिनियम संशोधित किया गया है । हमारे देश में उद्योगों के विकास के लिए नियमन करने वाले आर्थिक सिद्धांतों में यह बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है । सरकार के पास यह ऐसे प्रमुख अस्त्र के रूप में है जिसके अनुसार यह पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत निर्देशित दिशाओं की ओर निजी क्षेत्र के उद्योगों को सफलता के साथ मोड़ सकता है ।[53]

अधिनियम के उद्देश्य :-

इस अधिनियम को पारित करने का मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योगों के विकास को इस प्रकार नियमित करना है कि समाजवादी समाज की स्थापना

---

53. कुच्छल एस.सी. इन्डस्ट्रियल इकोनामिक्स आफ इण्डिया, पृष्ठ 98

के लक्ष्य के साथ-साथ त्वरित औद्योगिक विकास और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय की व्यवस्था भी संभव हो सके । इसके लिए राष्ट्रीय श्रोतों का अनुकूलतम प्रयोग, वृहत व लघु आकार में उद्योगों का सन्तुलित विकास व देश के विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों का सन्तुलित वितरण आवश्यक है । औद्योगिक §विकास एवं नियमन§ अधिनियम इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है । अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है ।

1. राष्ट्रीय महत्व के उद्योगों के नियमन तथा नियोजित संतुलित विकास हेतु सरकार को अपनी नीति के कार्यान्वयन की सुविधा प्रदान करना ।
2. नए उद्योगों की स्थापना हेतु उद्योगपतियों को प्रोत्साहन देना ।
3. वृहत एवं लघु उद्योगों का सन्तुलित विकास करना ।
4. देश के प्रमुख उद्योगों का उचित प्रादेशिक वितरण करना ।
5. एकाधिकार की प्रवृत्ति को रोकना ।
6. आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर अंकुश लगाना ।
7. देश के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उचित विदोहन करना ।
8. नए उद्यमियों को उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना ।

9. औद्योगिक संस्थाओं के कार्य में क्या प्रगति हो रही है, इसकी जांच करना, आवश्यक सुझाव देना तथा उचित प्रबन्ध व्यवस्था के लिए उन पर नियंत्रण करना ।

10. आर्थिक ईकाइयों की स्थापना करना तथा नवीन विधियों के प्रयोग में तकनीकी तथा आर्थिक सुधार के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना ।

11. अनसूचित उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित वितरण तथा उनका उचित मूल्य निर्धारित करना ।

नियन्त्रित उद्योगों की प्रकृति एवं क्षेत्र :-

आरम्भ में लगभग एक वर्ष तक अधिनियम केवल उन्हेी उद्योगों पर लागू किया गया था जिनमें एक लाख रूपये तथा इससे अधिक पूंजी का विनियोग होता था । सन् 1953 में एक संशोधन द्वारा इसका क्षेत्र व्यापक करके इसे उन उद्योगों पर भी लागू कर दिया गया जिनमें एक लाख रूपये से भी कम पूंजी का विनियोग है । सन् 1956 में इस अधिनियम में पुनः संशोधन कर इसे उन मिलों तथा कारखानों पर भी लागू कर दिया गया जिसमें विद्युत शक्ति के प्रयोग के साथ-साथ 50 अथवा अधिक श्रमिक काम करते हों अथवा शक्ति से चलने वाली मशीनों का प्रयोग न होने पर श्रमिकोंकी संख्या 100 अथवा अधिक हो । सन् 1960 में नवीन उद्योगों की स्थापना के लिए प्राप्त होने वाले आवेदनपत्रों पर अविलम्ब निर्णय किया जा सके इसलिए लाइसेन्सिंग

कमेटी ने कुछ महत्वपूर्ण निश्चय किये । प्रथम यह तय किया गया कि उद्योगों में नवीन क्षमता हेतु स्वीकृति नहीं दी जायेगी । उन पर बिना कोई विचार किए हुए सभी प्रार्थना पत्रों को लौटा दिया जाएगा । द्वितीय जिन उद्योगों पर स्वतंत्रता पूर्वक अनुज्ञापन की व्यवस्था की गई है उनकी एक सूची तैयार करनी होगी । (जो कि कर ली गई है) तृतीय, उन सभी कारखानों के लिए अनुज्ञापन आवश्यक नहीं समझा जायेगा । जिसमें श्रमिकों की संख्या 100 से कम तथा स्थायी सम्पत्ति 6 लाख रू. से कम होगी । इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रथम अनसूची में दिये गये उद्योगों पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था की गई है । अधिनियम के लागू होने पर सूची में दिये गये उद्योगों की संख्या केवल 36 थी जिसमें समय-समय पर वृद्धि होती रही और वर्तमान समय में लगभग 340 उद्योग इस सूची में हैं ।

क्षेत्र की दृष्टि से मौलिक अधिनियम पहले जम्मू एवं काश्मीर को छोड़कर सारे भारत में लागू होता था, परन्तु 1960 में एक संशोधन द्वारा इसे अब जम्मू एवं काश्मीर में भी लागू कर दिया गया है ।

अधिनियम के प्रावधान

औद्योगिक (विकास और नियमन) अधिनियम 1951 में तीन तरह के प्रावधान हैं । दो तरह के प्रावधान औद्योगिक बुराइयों को रोकने और सुधारने के लिए हैं और तीसरे प्रकार का प्रावधान राज्य की सकरात्मक, रचनात्मक और निर्णयात्मक भूमिका का प्रतीक है ।" इस तरह अधिनियम को

सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जा सकता है । -

(1) प्रतिबन्धात्मक प्रावधान

(2) सुधारात्मक प्रावधान तथा

(3) रचनात्मक उपाय

प्रतिबन्धात्मक प्रावधान :

प्रतिबन्धात्मक प्रावधानों के अंतर्गत अधिनियम के अन्तर्गत वे सभी प्रावधान आते हैं, जिनके द्वारा उद्योगों की अवांछनीय प्रवृत्तियों पर रोक लगायी जाती है । ये प्रावधान निम्नलिखित है । =

औद्योगिक प्रतिष्ठानों का रजिस्ट्रेशन तथा अनुज्ञा पत्र :- उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951 की अनुसूची में जिन उद्योगों को रखा गया है उनके सभी प्रतिष्ठानों का रजिस्ट्रेशन आवश्यक है, चाहे वह निजी क्षेत्र में हो अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में हो । वर्तमान प्रतिष्ठान यदि विस्तार करना चाहे तो इसके लिये भी केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति आवश्यक है केन्द्रीय सरकार निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित होने वाले किसी भी प्रतिष्ठान को अनुज्ञापन करने के साथ साथ उन पर आकार तथा स्थानीय-करण के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगा सकती है अनुज्ञापन दे देने के बाद भी केन्द्रीय सरकार को उसका संशोधन अथवा उसका निरसन का अधिकार रहता है लाइसेन्स प्राप्त करने वाला यदि निर्धारित समय के भीतर उद्योग स्थापित

करने में असमर्थ रहता है अथवा यदि उसने रजिस्ट्रेशन किसी झूठे आधार पर प्राप्त किया है या उद्योग को ही रजिस्ट्रेशन से छूट प्रदान कर दी गई है तो अनुज्ञापत्र का निरसन अथवा उसमें संशोधन किया जा सकता है ।

उद्योग ﴾विकास एवं नियमन﴿ अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित श्रेणी के उद्योगों के लिए अनुज्ञापन लेना आवश्यक है ﴾क﴿ अधिनियम की अनुसूची में जिन उद्योगों का उल्लेख है, उनमें सम्बन्धित नवीन औद्योगिक प्रतिष्ठानों को यदि उनमें 100 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तथा उनकी स्थायी सम्पत्ति एक करोड़ रुपये से अधिक की हो ।

﴾ख﴿ उपरोक्त उद्योगों से सम्बन्धित विद्यमान प्रतिष्ठान यदि वो अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ाना चाहे ।

﴾ग﴿ विद्यमान उद्योग यदि किसी नवीन वस्तु का निर्माण करना चाहे ।

﴾घ﴿ किसी विद्यमान औद्योगिक प्रतिष्ठान को अपना स्थान परिवर्तन करना हो ।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा अनुज्ञापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले आवेदन पत्रों की जाँच डायरेक्टर जनरल आफ॰ टेक्नीकल डेवलपमेण्ट करता है । इस विभाग द्वारा उद्योगों की एक ऐसी सूची प्रकाशित की गई है । जिसमें उल्लेखित उद्योगो के सम्बन्धित प्रतिष्ठानों की स्थापना के लिए आए हुए सभी आवेदन पत्र "अनुज्ञापन समिति" के पास भेजे बिना अस्वीकृत

कर दिये जाते हैं । अन्य उद्योगों से सम्बन्धित प्रतिष्ठानों के लिए प्राप्त होने वाले आवेदन पत्रों पर डायरेक्ट्रेट आफ टेक्नीकल डेवलपमेण्ट विचार करता है । भारत में उद्योगों को अनुज्ञापन प्रदान करने की व्यवस्था भारतीय उद्योगपतियों द्वारा निरन्तर आलोचना का विषय रही है । अतः इस रीति को सरल बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए श्री स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया । जिसने अनेक व्यवहारिक सुझाव देने के साथ-साथ इस बात पर जोर दिया कि अनुज्ञापन की सम्पूर्ण प्रक्रिया कम समय में ही पूर्ण हो जानी चाहिए । समिति के आधारभूत उद्योगों की स्थापना के लिए अनुज्ञापन के सम्बन्ध में विशेष विधि अपनाने की भी सिफारिश की । सरकार ने स्वामीनाथन समिति के सुझावों को स्वीकार कर लिया है । फलतः अनुज्ञापन प्रणाली अब पहले की अपेक्षा सरल हो गई है ।

<u>अनुसूचित उद्योगों की जांच</u> :- औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत सरकार का उत्तरदायित्व प्रतिष्ठान विशेष के रजिस्ट्रेशन अथवा उसे अनुज्ञापन प्रदान कर देने मात्र से पूरा नहीं होता । यदि किसी औद्योगिक ईकाई का कार्यान्वयन असन्तोषजनक है, उत्पादन की किस्म खराब है, उत्पादन समुचित मात्रा में नहीं हो रहा है अथवा उत्पादित माल की लागत और कीमत अनावश्यक रूप से अधिक है तो केन्द्रीय सरकार को उस प्रतिष्ठान की जांच करने का अधिकार है । जांच की अवधि में सरकार प्रतिष्ठान विशेष को अन्तरिम निर्देश भी दे सकती है । जांच द्वारा यदि सिद्ध होता

है कि दोष औद्योगिक ईकाई का ही है, तो केन्द्रीय सरकार उत्पादन की मात्रा, किस्म, कीमत तथा उसके वितरण के सम्बन्ध में उचित निर्देश दे सकती है ।

रजिस्ट्रेशन अथवा अनुज्ञापन का निरस्तीकरण :- किसी भी औद्योगिक केन्द्रीय सरकार अधिनियम की धारा 10(अ) के अन्तर्गत निरस्त कर सकती है । मिथ्यावर्णन के आधार पर प्राप्त किया जाने वाला अनुज्ञापत्र अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा निरस्त किया जा सकता है ।

सुधारात्मक प्रावधान

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम के इस प्रावधान के अन्तर्गत निम्नलिखित समावेश किया गया है :-

सरकार द्वारा प्रत्यक्ष प्रबन्ध अथवा नियंत्रण :-

यदि सरकार किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान का कार्य सम्पादन असन्तोषजनक पाती है तो उसमें सुधार हेतु उचित निर्देश देकर अपेक्षा कर सकती है कि उसके आदेशों का पालन किया जाय । यदि कोई प्रतिष्ठान उसके आदेशों का पालन नहीं करता है तो केन्द्रीय सरकार उसके प्रबन्ध एवं नियंत्रण को अपने हाथ में ले सकती है । इसके लिए सरकार को संसद की अनुमति प्राप्त करनी होती है । केन्द्रीय सरकार द्वारा यह निश्चय

कर लेने के बाद कि फर्म विशेष का प्रबन्ध अपने हाथ में लेना है, एक सरकारी घोषणा द्वारा किसी व्यक्ति को अथवा व्यक्ति समूह को प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया जाता है । सरकार द्वारा प्रबन्ध अपने हाथ में लेने पर संचालकों तथा अंशधारियों के अधिकार समिति हो जाते हैं और वे प्रतिष्ठान के कार्यान्वयन अथवा उनकी नीति को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं रहते हैं । केन्द्रीय सरकार ने अपने इस अधिकार का प्रयोग शीलपुर स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स लिमिटेड जलगांव, छगन लाल टेक्सटाइल मिल्स लिमिटेड चालीसगांव, माडल मिल्स नागपुर आदि के मामलों में किया है । राष्ट्रीय कपड़ा निगम के अध्यक्ष श्री के. निवासन के अनुसार जून 1978 तक देश की 270 मिलों से 115 मिलों को निगम ने अपने हाथ में ले लिया है और इन पर अगले 5 वर्षों में दो करोड़ पचास लाख रुपया व्यय किया गया वर्तमान में लगभग तीन सौ मिलों को निगम ने अपने हाथ में ले रखा है ।[54]

यह उल्लेखनीय है कि यदि इस प्रकार के आदेश द्वारा प्रावधानों के अन्तर्गत दिये जाते हैं तो उनके विरुद्ध किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं उठायी जा सकती ।

<u>पूर्ति, वितरण, मूल्य आदि पर नियंत्रण</u> :- अनुसूचित उद्योगों द्वारा उत्पादित माल की पूर्ति वितरण तथा मूल्यों को भी केन्द्रीय सरकार शासकीय

---

54. एकोनामिक टाइम्स, 11 मई, 1978

घोषणा द्वारा नियंत्रित कर सकती है । वह उन मूल्यों को निर्धारित कर सकती है, जिन पर वस्तु विशेष खरीदी व बेची जानी चाहिए । वितरण को ठीक करने के लिए वह आदेश दे सकती है कि माल व्यक्ति विशेष या संस्था विशेष को ही बेचा जाय या उसकी बिक्री बन्द कर दी जाय । वस्तु सम्बन्धी अन्य व्यापारिक तथा वित्तीय व्यवहारों को भी नियंत्रित करने के व्यापक अधिकार केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है ।

रचनात्मक उपाय

भारत के औद्योगिक विकास की प्रक्रियाएं सरकार उद्योग, श्रम तथा अन्य हितों में परस्पर सहयोग उत्पन्न करने के लिए औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम की केन्द्रीय परामर्श दात्री परिषद, पुनः निरीक्षण उपसमिति, केन्द्रीय परामर्शदात्री की स्थायी समितियों के अतिरिक्त व्यक्तिगत उद्योगों के लिए विकास परिषदों तथा औद्योगिक पैनलों की स्थापना की गई हैं । इनका विवेचन निम्नानुसार है ।

(क) केन्द्रीय परामर्शदात्री परिषद : इस परिषद का गठन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया है । इसकी सदस्य संख्या 30 है । इसमें उद्योगपतियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं तथा प्राथमिक उद्योगों के प्रतिनिधि होते हैं । परिषद का अध्यक्ष वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री होता है । परिषद का उत्तरदायित्व केवल केन्द्रीय सरकार को अनसूचित उद्योगों के विकास एवं नियमन हेतु बनाए गए अधिनियम के विधिवत कार्यान्वयन तथा उसके अन्तर्गत नियमों के निर्माण

के सम्बन्ध में परामर्श देने तक सीमित है । इस परिषद का गठन सन् 1952 में किया गया था । परन्तु 1954 अगस्त में इसका पुनर्गठन किया गया । इस परिषद में उद्योगों के 14 प्रतिनिधि, उपभोक्ता वर्ग के 5 प्रतिनिधि तथा अन्य वर्गों के 5 प्रतिनिधि हैं । केन्द्रीय उद्योग एवं वाणिज्य मंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं ।

(ख) विकास परिषदें :- अधिनियम के अन्तर्गत उद्योगों के विकास के लिए एक विकास परिषद की स्थापना का प्रावधान रखा गया है । इस परिषद में सरकारी प्रतिनिधियों के अलावा सम्बन्धित उद्योगों के उद्योगपतियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं तथा अन्य वर्गों के प्रतिनिधि रहते हैं । केन्द्रीय सरकार द्वारा अथवा केन्द्रीय सरकार की अनुमति से परिषद के सदस्यों की नियुक्ति की जाती है । यह एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है । वास्तव में इन परिषदों की स्थापना का विचार इग्लैण्ड में प्रचलित उद्योगों में प्रचलित परिषदों का अनुकरण है ।[55]

विकास परिषदों का उद्देश्य :- विकास परिषदों के प्रमुख उद्देश्य निम्न लिखित है :-

(अ) पंचवर्षीय योजना के समर्थन में देश के प्रयासों तथा साधनों के सुदृढ़ करना ।

---

55. कोष आलोक, इण्डियन इकोनामिक्स, पृष्ठ 30

(ब) देश के समस्त कार्यों का सन्तुलित विकास करना ।

(स) समस्त महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सामान्य अर्थनीतियों को बढ़ावा देना आदि ।

<u>विकास परिषदों के कार्य</u> :- विकास परिषदों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है । -

1. सम्बन्धित उद्योगों को तकनीकी सलाह देना ।

2. केन्द्रीय सरकार के निर्णय तथा नीति से सम्बन्धित उद्योगों को परिचित कराना ।

3. श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं में आवश्यक सुधार करना ।

4. सम्बन्धित उद्योगों की जाँच करना तथा उसके सम्बन्ध में केन्द्रीय सलाहकार परिषद को रिपोर्ट देना ।

5. उद्योगों की अनार्थिक ईकाइयों की कुशलता बढ़ाना ।

6. सम्बन्धित उद्योगों के लक्ष्य निर्धारित करना, उत्पादन की योजनाओं में समन्वय स्थापित करना तथा उद्योगों की उन्नति के बारे में विचार करना ।

7. उद्योगों को कच्चे माल की प्राप्ति में सहायता देना ।

8. हिसाब रखने की प्रणाली में सुधार रखना तथा उनको प्रमाणित करना ।

9. उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण के सम्बन्ध में जांच करना और उनसे सम्बन्धित छोटे पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग धन्धों के विकास को प्रोत्साहित करना ।

10. औद्योगिक मनोविज्ञान सम्बन्धित विषयों की खोज करना ।

11. उपभोक्ता के लिए निर्मित वस्तुओं तथा सेवाओं की खोज करना ।

12. वस्तुओं के प्रभावीकरण में सहायता देना ।

13. कर्मचारियों के उचित प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना ।

14. उद्योगों के आंकड़े एकत्रित करना ।

15. उपभोक्ता के कल्याण के लिए विक्रय तथा वितरण की उचित प्रणाली व्यवहार में लाना ।

16. उद्योग से निकले कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर अन्य जगह काम दिलाना ।

17. सम्बन्धित उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध व विवेकीकरण के सिद्धांतों को अपनाने के लिए उचित परामर्श देना ।

(ग) औद्योगिक पेनल :- जिन उद्योगों का विकास उचित ढंग से नहीं हुआ है उनके लिए विकास परिषदों के स्थान पर औद्योगिक पैनल की नियुक्ति की जाती है । वे औद्योगिक पैनल उद्योगों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करती है । रिफ्रेक्ट्री सिमेन्ट, घड़ी औद्योगिक इलेक्ट्रानिक्स,

एक्सरे उपकरण इत्यादि उद्योगों में औद्योगिक पैनल स्थापित किये गये हैं ।

§घ§ पुनः निरीक्षण करने वाली उप समिति :-

इस समिति में 9 सदस्य रहते हैं । इसका मुख्य कार्य समय-समय पर लाइसेन्सिंग समिति के कार्यों का पुनः निरीक्षण करना है ।

§ड0§ केन्द्रीय परामर्शदाता की स्थायी समिति :-

इस समिति में 16 सदस्य होते हैं । वाणिज्य तथा उद्योग मंत्री इस समिति के अध्यक्ष होते है । आवश्यकतानुसार यह समिति व्यक्ति उद्योगों की स्थिति का मूल्यांकन करती है ।

§च§ आंकड़ों का संकलन :- अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार है कि वह नियंत्रित उद्योगों से उत्पादन आदि के सम्बन्ध में आंकड़े मांग सकती है ताकि अनुसूचित उद्योगों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके । इस अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत सन् 1959-60 में सरकार ने औद्योगिक उपक्रमों के लिए तथ्यों एवं आंकड़ों के संकलन के लिए नियमावली का निर्माण किया है जो अनुसूचित सभी उद्योगों की भी सभी ईकाइयों पर लागू होती हैं ।

__(छ) कर की व्यवस्था__ :- अनुसूचित उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं पर केन्द्रीय सरकार को 12 प्रतिशत कर लगाने का अधिकार होता है । कर की यह एकत्रित धनराशि विकास परिषद को सौंप दी जाती है जिसे निम्न कार्यों पर व्यय किया जाता है ।

1. प्रशासनिक व्ययों को पूरा करने के लिए ।
2. वस्तुओं की डिजाइन तथा किस्म में सुधार के लिए ।
3. वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान में वृद्धि करने के लिए ।
4. तकनीकी तथा श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिए ।

__लाइसेन्स प्राप्त करने की विधि :-__

लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए आवेदन देने से सम्बन्धित नियमों का उल्लेख किया गया है जिसमें समय-समय पर संशोधन होता रहा है । किसी भी औद्योगिक ईकाई की स्थापना तथा उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि करने हेतु पूर्व लाइसेन्स प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करना जरूरी होता है । लाइसेन्स प्राप्त करने की आवश्यकता निम्न दशाओं में अनिवार्य होती है । -

1. जनता से पूंजी प्राप्त करने की परिस्थिति में ।
2. कारखाने के लिए भवन निर्माण करने की दशा में ।
3. संस्था के लिए भूमि या मशीनरी खरीदने के लिए आर्डर देने की परिस्थिति में ।

आवेदन निर्धारित प्रपत्र पर देना चाहिये । आवेदन की 7 प्रतियाँ सचिव उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय को प्रेषित करनी चाहिये । इसमें उद्योग से सम्बन्धित विस्तृत सूचनाएं जैसे - पूंजी संरचना, विदेशी सहयोग, विदेशी तकनीकी की आवश्यकता, प्रस्तावित स्थानीयकरण उत्पादन की वस्तुओं, श्रम, शक्ति, भूमि, रेलवे व अन्य यातायात की आवश्यकता आदि देनी पड़ती है । आवेदन पत्र के साथ 50 रुपये का रजिस्ट्रेशन शुल्क भी चालान के रूप में भेजना जरूरी है । केन्द्रीय सरकार लाइसेन्स या अनुमति पत्र को स्वीकार करने से पूर्व उसकी जाँच पड़ताल करती है । तत्पश्चात् केन्द्रीय सरकार लाइसेन्सिंग समिति को आवेदन पत्र सौंप देती है । इन समिति के विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों के सचिव नियोजन आयोग के प्रतिनिधि रहते हैं । इस समिति का भी अध्यक्ष केन्द्रीय उद्योग मंत्रालय का सचिव होता है । समिति में राज्य सरकारों के प्रतिनिधि भी हिस्सा लेते हैं । जबबहुत से मामले एकत्रित हो जाते है, तो दो या तीन सप्ताह के अन्दर स्थानीय बैठक आयोजित की जाती है । लाइसेन्सिंग समिति की सभाएं दो या तीन माह के अन्तर से की जाती है । इसमें राज्य सरकार के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं । औद्योगिक लाइ-सेन्स के लिए दिये गये आवेदन पत्र पर समिति द्वारा विचार करने से पूर्व आवेदन पत्र की जाँच अनेक संस्थाओं व मंत्रालय द्वारा की जाती है । जाँच के बाद लाइसेन्सिंग समिति अपनी रिपोर्ट देती है । यदि रिपोर्ट से वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय संतुष्ट हो जाता है तो आवेदन कर्ता को आवेदन पत्र की तिथि से तीन माह में लाइसेंस दे देता है किन्तु असन्तुष्ट

होने की दशा में आवेदनकर्ता को पुनः अपने मामलें को स्पष्ट करने का मौका देता है । इसके अलावा लाइसैन्स या आवेदन की अस्वीकृति की सूचना भी तीन माह के भीतर भेजनी होती है । आवेदन करने वालों की संस्था की प्रगति की सूचना उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय को नियमित रूप से भेजनी होती है जब तक उद्योग द्वारा उत्पादन किया जाता रहे तब तक ऐसी सूचना निरन्तर भेजना अनिवार्य होता है ।

डा॰ हजारी की रिपोर्ट

उद्योग को लाइसेन्स प्रदान करने की उक्त विधि में अत्यधिक विलम्ब के कारण इसकी बड़ी आलोचनाएं हो रही थी । सरकार पर लाइसेंस तथा वित्त प्रदान करने में बड़े उद्योगपतियों के साथ पक्षपात करने के गम्भीर आरोप लगाए गए थे । इन सबकी जांच पड़ताल के लिए सरकार द्वारा पहले हजारी समिति व बाद में दत्त समिति की नियुक्ति की गई । डा॰ हजारी ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 1967 में दी व निम्नांकित सुझाव दिये :-

1. योजना आयोग द्वारा उद्योग की प्राथमिकताओं का निर्धारण किसी निश्चित एवं पूर्व घोषित सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिये, इतना ही नहीं प्राथमिक निर्धारण का आधार केवल पूंजी बनाम उपभोक्ता उद्योग न होकर प्रत्याय मानक की दर, पूंजी उत्पादन अनुपात मानदण्ड, तथा विदेशी विनिमय शुद्ध वृद्धि अथवा बचत मानदण्ड होना चाहिये ।

2. योजना के अन्तर्गत निर्धारित प्राथमिकताओं, कर नीति, लाइसेंन्सिंग नीति, साख नीति, प्रशुल्क नीति तथा आयात निर्यात नीति में घनिष्ट सम्बन्ध बनाए रखना चाहिये ।

3. डायरेक्टर जनरल आफ टेक्नीकल डेवलपमेण्ट द्वारा प्रदान की जाने वाली तकनीकी सेवाओं की और अधिक विस्तृत श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिये । इस निदेशालय द्वारा देश में उपलब्ध इन्जीनियरी तकनीकी भारतीय प्रमापों तथा औद्योगिक अनुसन्धानों से सम्बन्धित पूर्ण एवं अधिकृत सूचनाएं भी प्रकाशित की जानी चाहिये ।

4. योजना के अधिक प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से लाइसेन्सिंग, साख नियोजन पद्धतियों पर विशेष बल देने की आवश्यकता है । आयोग ने इसी आधार पर बैंकों के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया था ।

5. लाइसेन्सिंग नीति में पाए जाने वाले अधिकांश दोष जैसे- लालफीताशाही आदि प्रशासनिक जटिलताओं, एवं त्रुटिपूर्ण नियोजन के कारण है, जिन्हें अविलम्ब दूर किया जाना चाहिये ।

6. देश में औद्योगिक विकास विशेष रूप से निजी क्षेत्रों के उद्योगों का पूर्ण विकास होता रहे, इसके लिए आवश्यक है कि लाइसेन्सिंग पद्धति को कुछ ही क्षेत्रों में अर्थात कुछ उद्योगों तक सीमित रखा जाय । शेष उद्योगों को लाइसेन्स लेने की शर्त से मुक्त रखा जाय ।

7. डा. हजारी ने सुझाव दिया कि मुक्त सीमा 25 लाख रुपये से बढ़ाकर एक करोड़ रुपये कर देनी चाहिये । हाँ इसमें आवेदन पत्रों की संख्या 60 प्रतिशत कम हो जायेगी फिर भी कुछ विनियोगों के लगभग 70 प्रतिशत भाग पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण बना रहेगा ।

8. उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि किसी पूर्व स्थापित उपक्रम द्वारा अपने उत्पादन में 25 प्रतिशत या 25 लाख रु० के मूल्य के बराबर उत्पादन वृद्धि की जाती है तो इसे लाइसेन्स देने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये ।

9. आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण पर रोक लगाने के लिए ये आवश्यक है कि बड़े समूह समूह को भविष्य में किसी भी प्रकार के पूंजीगत उद्योग, आयात बढ़ाने वाले उद्योग अथवा परम्परागत उद्योग की स्थापना हेतु कोई भी लाइसेंस न दिया जाय । इन गृहों को केवल आधुनिकीकरण की सुविधाएं दी जानी चाहिये ।

दत्त समिति

डा. हजारी द्वारा दिये गये सुझावों की जाँच करने तथा नीति के सम्बन्ध में कुछ अन्य ठोस सुझाव जानने के लिए सरकार ने 22 जुलाई 1967 ई. को प्रो. राम एस. थैकर की अध्यक्षता में औद्योगिक लाइसेंसिंग जाँच समिति की नियुक्ति की । 1968 में प्रो. थैयर द्वारा अध्यक्ष पद

से त्यागपत्र देने के कारण श्री एस. दत्त को समिति का अध्यक्ष मनोनीत किया गया । यही कारण है कि इस समिति को दत्त समिति के नाम से पुकारा जाता है । इस समिति के दो अन्य सदस्य भी थे जिनका नाम स्वर्गीय मोहन कुमार मंगलम व डा. एच.के.परान्जपे ।

समिति के जांच का विषय : -

समिति को जांच हेतु सौंपे गये कार्य इस प्रकार थे -

1. सन् 1955 से सन् 1966 के काल के बीच लाइसेंसिंग पद्धति के कार्य प्रणाली की जांच करना और इस बात का पता लगाना कि ﴾1﴿ क्यालाइसेंसिंग नीति का रूख बड़े उद्योगपतियों को लाभ पहुंचा रहा है तथा ﴾2﴿ क्या इस काल में जारी किये लाइसेंसिंग औद्योगिक नीति 1956 के अनुरूप थे ?

2. इस प्रकार की जांच करना कि विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा बड़े औद्योगिक गृहों को वित्त प्रदान करने में पक्षपात किया गया है अथवा नही ?

3. अन्य सम्बन्धित नियमों पर विचार करना तथा सरकार को आवश्यक सुझाव देना ।

इस समिति का प्रतिवेदन 21 जुलाई 1969 को लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया । समिति की रिपोर्ट को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है निष्कर्ष एवं सिफारिशे ।

समिति के निष्कर्ष

(क) वित्तीय संस्थाओं द्वारा पक्षपात :- समिति ने यह जाहिर किया कि बड़े औद्योगिक गृहों के सहायता स्वीकृति करने में विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं ने पक्षपात पूर्ण रवैया अपनाया है । उदाहरण के तौर पर इन संस्थाओं के द्वारा कुल वितरित सहायता का 56 प्रतिशत भाग बड़े पैमाने के उद्योग को प्राप्त हुआ और 23 प्रतिशत भाग भी निष्कर्ष निकाला है कि जीवन बीमा निगम व स्टेट बैंक द्वारा दिये गये अवधि गृहों का क्रमशः 60 प्रतिशत व 80 प्रतिशत भागबड़े उद्योगपतियों को ही प्राप्त हुआ है । अन्य शब्दों में कुलमिलाकर इस काम में आर्थिक सत्ता केकेन्द्रीकरण को बढ़ावा मिला है ।

(ख) लाइसेन्सिंग पद्धति सम्बन्धी दोष :- इस पद्धति ने लाइसेन्सिंग पद्धति के दोष पूर्ण कार्यान्वयन के संबंध में जो निष्कष निकाले हैं वो निम्नलिखित है ।

1. कम आवश्यक उद्योगों के लिए उनकी क्षमता से अधिक लाइसेन्स जारी किये गये हैं । बड़े व्यवसायिक गृहों को अपेक्षाकृत अधिक लाइसेन्स मिले हैं । जिसके फलस्वरूप देश में एकाधिकारों को प्रोत्साहन मिला है ।

2. निर्गमित किये गये लाइसेन्स काफी समय तक अनउपयुक्त अथवा अधूरे बने रहे, जिनकी न तो जांच की गई और न ही उसको निरस्त किया गया ।

3. लाइसेन्सिंग अधिकारियों को निर्गमित लाइसेन्सिंग क्षमता को ही स्थापित क्षमता मान लिया जाता है ।

4. अनेक फर्मों ने बिना सूचना दिये तथा स्वीकृति लिये ही स्वीकृति कार्यक्षमता में वृद्धि कर ली है, परन्तु इनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई ।

5. लाइसेन्स प्रदान करते समय सार्वजनिक सामाजिक एवं आर्थिक हितों की अपेक्षा तकनीकी तत्वों पर अधिक ध्यान दिया गया ।

6. लाइसेन्सिंग पद्धति देश के प्रमुख क्षेत्रों, सार्वजनिक निजी तथा सहकारी क्षेत्रों के बीच समन्वय स्थापितर करने में असफल रही है ।

7. समिति ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि लाइसेन्सिंग पद्धति कम आवश्यक उधोगों की क्षमता में अनावश्यक वृद्धि को रोकने में पूर्णतया असफल रही है । समिति की राय में इसके लिए सरकारी नीति एवं औधोगिक आयोजन विशेष रूप से उत्तरदायी रहे हैं ।

8. उधोगों के प्रादेशिक वितरण अर्थात अल्पविकसित क्षेत्रों के विकास की दृष्टि से इस पद्धति को सीमित सफलता ही मिल सकी है । सबसे अधिक लाइसेन्स महाराष्ट्र को दिये गये है । पिछड़े इलाकों की प्रायः उपेक्षा की गई है । डा॰ हजारी द्वारा इसकी पुष्टि में अग्रांकित आंकड़े भी प्रस्तुत किये गये हैं ।

सन् 1959 से 1966 तक के काल में स्वीकृत विनियोग

(करोड़ रुपये में)

राज्य	स्वीकृत धनराशि
महाराष्ट्र	171
मद्रास	128
मध्य प्रदेश	116
आन्ध्र प्रदेश	66
उत्तर प्रदेश	83
राजस्थान	51

लघु एवं मध्यम स्तरीय उद्योगों के सम्बन्ध में लाइसेन्सिंग नीति पूर्णतया सफल रही है परन्तु इसका मुख्य कारण एक तो इन उद्योगो का कार्य क्षेत्र सुरक्षित होना तथा दूसरा विकास आयुक्त लघु स्तरीय उद्योग, संगठन का उपलब्ध होना था ।

(ग) सरकारी नीति एवं नियोजन सम्बन्धी दोष :- समिति का यह मत था कि इस काल में सरकार एवं योजना आयोग की भूमिका भी दोषपूर्ण रही है । कड़ी आलोचना करते हुए समिति ने कहा कि "औद्योगिक नीति के उद्देश्यों और आर्थिक सत्ता पर नियंत्रण लगाने जैसे प्रमुख कार्य लाइसेन्सिंग समिति को, सही अर्थो में सौंपे ही नही गये हैं । इतना ही नही योजना

के लक्ष्यों की अस्पष्टता, उद्योगों में प्राथमिकता का क्रम निर्धारित करने, उद्योगों का प्रादेशिक नियोजन, भारत व हल्के औद्योगिक उद्योगों में औद्योगिक क्षमता का वितरण करने तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली निर्धारित करने आदि के सम्बन्ध में कोई निश्चित रूपरेखा व निर्देश न होने के कारण लाइसेन्सिंग नीति न होकर उसका दोषपूर्ण नियोजन है और ये सरकारी नीतियां हैं ।

समिति की मुख्य सिफारिशें

1. समिति ने लाइसेंसिंग पद्धति बनाए रखने का सुझाव दिया, परन्तु पद्धति को अधिक उद्देश्यपूर्ण सुगम तथा विवेकीकृत बनाना भी आवश्यक बताया।

2. लाइसेंसिंग पद्धति केवल आधारभूत उद्योगों तक ही सीमित रख जाय और उद्योगों द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के क्षेत्र में उद्योगों को क्षमता बढ़ाने की अनुमति न दी जाय । हां जो उद्योग आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करते हैं उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने की अनुमति दी जानी चाहिये ।

3. लाइसेंसिंग नीति को सफल बनाने की दृष्टि से अन्य नीतियों जैसे निजी क्षेत्रों के उद्योगों के नियमन व निर्देश नीति, पूंजीगत उद्योग सम्बन्धी नीति, विदेशी सहकार्य नीति या संस्थागत ऋण नीति आदि में समन्वय लाया जाय ।

4. समिति ने एक महत्त्वपूर्ण सुझाव संयुक्त क्षेत्र के लिएभी दिया। चूंकि औद्योगिक उपक्रमों की लागत का एक बड़ा भाग विकास वित्तन निगम द्वारा पूरा किया जाता है। इसलिये ऐसी सभी परियोजना सरकारी क्षेत्र में स्थापित की जानी चाहिये परन्तु इनकी स्थापना में निजी क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए संयुक्त क्षेत्र को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

5. स्थिरता एवं समानता के साथ आर्थिक विकास किया जा सके इसके लिए आवश्यक है कि औद्योगिक लाइसेन्स नीति तथा सरकार द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता में ताल मेल बैठाया जाय।

6. समिति का यह भी विचार है कि डा. हजारी द्वारा प्रस्तावित एक करोड़ की मुक्ति सीमा का सुझाव आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने में सर्वथा उपयुक्त रहेगा।

7. इस सुझाव के अलावा समिति ने औद्योगिक विकास बैंक एवं औद्योगिक वित्त निगम के कार्य एवं कार्य क्षेत्र को स्पष्टतः परिभाषित करने अभिनियम का उल्लंघन करने वालों को दण्ड की व्यवस्था करने आदि के सम्बन्ध में भी सुझाव दिये हैं।

नवीन संशोधन

दिसम्बर 1971 में उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951 में सरकार ने एक और संशोधन किया है। इसके अनुसार जब सरकार को

कुप्रबन्धित औद्योगिक संस्थाओं का प्रबन्ध बिना कोई जांच पड़ताल किये अपने हाथों में लेने का अधिकार मिल गया है । अब सरकार अपने हाथों में लिये गये औद्योगिक संस्थाओं की देयताओं के भुगतान पर ऋण स्थगन भी लगा सकती है । इस संशोधन से सरकार को यह अधिकार मिला है कि यदि वह यह अनुभव करे कि किसी औद्योगिक संस्था में इसकी सम्पत्तियों का अपव्यय किया जा रहा है या कोई संस्था कम से कम पिछले तीन वर्षों से लगातार बन्द है और उसका इस तरह बन्द रहना अनसूचित उद्योगों के हित में नही है, तो सरकार इसे प्रबन्ध को भी बिना किसी जांच पड़ताल के अपने हाथों में ले सकती है । अपने प्रबन्ध में ली गई संस्थाओं को सरकार चाहे तो औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के प्रावधानों से भी मुक्त कर सकती है ।

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम के दुर्बल औद्योगिक ईकाइयों को सरकार द्वारा अपने हाथों में लेने की व्यवस्था पहले भी थी । लेकिन इस व्यवस्था में यह शर्त भी थी कि इन औद्योगिक ईकाइयों का स्वामित्त्व 15 वर्षो के अन्दर-अन्दर अपने स्वामियों को वापस करना जरूरी होगा । चूंकि इन संस्थाओं में काफी सरकारी पैसा लगता है । अब सरकार को यह अधिकार भी दिया गया कि यदि वह ठीक समझे तो (क) संस्थाओं को न्यूनतम या न्यूनतम से अधिक किसी मूल्य पर बेचदें । (ख) इस

औद्योगिक संस्था की स्वामिनी कम्पनी का इस प्रकार पुनर्गठन कर दे कि इसके नियंत्रण में सरकार को निर्णायक अधिकार मिल जाय ।

भारत सरकार ने 1 जनवरी 1972 से 52 महत्वपूर्ण उद्योगों को कुछ शर्तों के साथ शतप्रतिशत अतिरिक्त उत्पादन करने की अनुमति देने की घोषणा की है, ये शर्तें निम्नलिखित हैं ।

यदि किसी प्रार्थी को दिये गये लाइसेन्स में क्षमता को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है तो ऐसी पार्टी को तथा मशीनों के अधिकाधिक उपयोग के आधार पर उत्पादन में वृद्धि करने की अनुमति प्रदान कर दी जायेगी । अन्य मामलों में लाइसेन्स शुदा क्षमता को जो पहले 26 प्रतिशत की थी बढ़ाकर शत प्रतिशत कर दी जायेगी । इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए जिन कारखानों को केवल एक या दो पाली में कार्य करने की अनुमति दी गई थी वे अब तीन पाली में भी कार्य कर सकेंगे ।

54 उद्योगों में लोहा और इस्पात, चीनी सूती वस्त्र, सीमेण्ट, उर्वरक, कागज, बिजली का तार, मोटर साइकिल, ट्रैक्टर, साइकिल, दूर संचार उपकरण, औषधि, टायर ट्यूब, जूट तथा वैगन आदि सम्मिलित है । इन उद्योगों का चुनाव औद्योगिक विकास मंत्रालय ने योजना आयोग से परामर्श करने के पश्चात् किया है । उद्योगों का चुनाव करते समय देशों तथा आयातित कच्चे माल की उपलब्धि की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है ।

यह रियायत उन वस्तुओं के उत्पादन के लिए नहीं दी जायेगी जिनका उत्पादन विशेषतः लघु उद्योग क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखा गया है। इसके अतिरिक्त अधिकांश विदेशी कम्पनियों तथा वृहत उद्योग संस्थाओं को भी यह रियायत नहीं दी जायेगी । ऐसी कम्पनियों को उत्पादन में वृद्धि करने के लिए औद्योगिक विकास मंत्रालय को प्रार्थना पत्र देना पड़ेगा ।

व्यापक रूप से यह अधिनियम उद्योग के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करने की क्षमता रखता है । और इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अल्पकालीन व दीर्घकालीन उद्देश्यों के अनुरूप उद्योगों की स्थापना, विकास तथा विस्तार करने में प्रभावी यंत्र है । इस अधिनियम ने सामाजिक दर्शन और नीति के महत्वपूर्ण शस्त्र के रूप में सरकार को सभी काटने वाले दांत और सभी उपकरण तथा शस्त्र प्रदान किए हैं । इतना होते हुए भी यदि देश का औद्योगिक विकास वांछित गति तथा दिशाओं में नहीं हो पाता, तो यह हमारे देश का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा ।

अधिनियम की कार्यप्रणाली एवं प्रगति का मूल्यांकन :-

यह अधिनियम अपने उद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक नहीं कर सका है । इसने नकारात्मक एवं प्रतिबन्धात्मक भूमिका निभाने में ही अपनी सफलता समझी है । देश का औद्योगिक विकास बतलाता है कि यह अधि-नियम सन्तुलित प्रादेशिक विकास आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की रोकथाम

एवं राष्ट्रीय संसाधनों के समुचित विदोहन जैसे महत्वपूर्ण उद्देश्यों को सही अर्थों में पूरा नही कर सकता है । हजारी समिति एवं दत्त समिति के प्रतिवेदन इस तथ्य की सच्चाई के जीते जागते प्रमाण है कि अधिनियम वांछित विकास एवं नियमन कार्य करने में विफल रही है ।

हजारी समिति की रिपोर्ट यह बतलाती है कि 1956 से 66 तक की अवधि में दिये गये लाइसेन्सों ने प्रादेशिक विकास को असन्तुलित किया है और महाराष्ट्र के साथ सहानुभूति दिखाई है । सन् 1969 से 1971 तक तीन वर्षों की अवधि में जारी किये गये कुल 752 लाइसेन्सों में से सर्वाधिक लाइसेन्स महाराष्ट्र को दिये गये हैं जबकि पिछले प्रदेश को केवल 91 लाइसेन्स दिये गये हैं । उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य को केवल 4 लाइसेन्स निर्गमित किये गए हैं । सन् 1973 के वर्ष में 596 लाईसेन्स निर्गमित किये गये थे जिसमें से 171 लाइसेन्स महाराष्ट्र को दिये गये थे ये समय अधिनियम की भूमिका को पक्षपातपूर्ण रवैये एवं उद्देश्यों के प्रति स्वेच्छिक उदासीनता से ग्रस्त बतलाते हैं ।

अधिनियम की अन्य सफलता लाइसेन्स हेतु दिये गये प्रार्थना पत्रों पर अतिशीघ्र विचार न करने के रूप में प्रकट होती है । जहां एक ओर देश तीव्र आर्थिक विकास करना चाहता है , वहीं दूसरी ओर प्रार्थनापत्रों पर विचार करने में विलम्ब किया जाय । यह स्थिति काफी चिन्तापूर्ण ही मानी जा सकती है । समंक बताते हैं कि 1972 तक 1692 प्रार्थनापत्र

होता है कि अधिनियम इस क्षेत्र में आंशिक सफलता ही हासिल कर सका है । अधिनियम की मशीनरी को इसलिये भी सक्रिय होना चाहिये । ताकि विकास कार्य अवरुद्ध न हो सके । इन परिषदों ने उपभोक्ता संरक्षण एवं कल्याण की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है । इस क्षेत्र में अधिनियम रचनात्मक भूमिका निभा सकता है । इसके अतिरिक्त ये परिषद उद्योगों के विकेन्द्रीयकरण, छोटे पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग धन्धो के विकास को भी प्रोत्साहित नहीं कर पायी है । परिणामस्वरूप, राष्ट्र के स्थानीय संसाधनों का समुचित उपयोग नहीं हो सका है ।[57]

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम ने देश की औद्योगिक संरचना को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित किया है किन्तु वांछित उद्देश्य पूर्ति में इसे आंशिक सफलता ही मिल सकी है । अधिनियम की भूमिका को संवैधानिक उपदेय बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

1. अधिनियम को नियमन के स्थान पर विकास क्षेत्र में अधिक सक्रिय होना चाहिये ।

---

57. इकोनामिक्स टाइम्स 7 जुलाई, 28 दिसम्बर 1971 अप्रैल 23, 1974 व रिपोर्ट उद्योग एवं नागरिक पूर्ति मंत्रालय, पृष्ठ ( )

2. लाइसेन्स निर्गमन होने वाले विलम्ब व प्रादेशिक पक्षपात को समाप्त किया जाना चाहिये । भावी लाइसेन्स को पिछड़े क्षेत्रों के लिए ही निर्गमित किए जाने चाहिये ।

3. लाइसेन्स क्षमता से कम तथा अधिक उत्पादन करने वाले उपक्रमों के सम्बन्ध में उचित कार्यवाही की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

4. भावी लाइसेन्स किसी भी कीमत पर वृहत औद्योगिक घरानों को नही दिये जाने चाहिये संभवतः संयुक्त एवं सहकारी क्षेत्र को प्रोत्साहित किये जानी चाहिये ।

5. विकास परिषदों की कार्यप्रणाली को प्रभावी बनाया जाना चाहिये ।

§2§ अग्रिम प्रसंविदे §नियमन§ अधिनियम 1952

अग्रिम सौदों के नियमन के लिए एक अधिनियम अग्रिम प्रसंविदा §नियमन§ अधिनियम, 1952 देश में लागू है । इस अधिनियम का उद्देश्य उन अग्रिम सौदों पर प्रतिबन्ध लगाना है जो जनहित के विरूद्ध है । भारत में अग्रिम व्यापार §भविष्य व्यापार§ 19वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हो गया था लेकिन उसके नियमन का कार्य व्यापारिक संघो द्वारा स्वयं निर्धारित नियमों के द्वारा किया जाता था ।

स्वतंत्रता के पूर्व नियमन :- सरकार ने भविष्य बाजारों को नियमित करने की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध के समय में महसूस की । बम्बई इस सम्बन्ध में पहला राज्य था जिसने इसकी आवश्यकता को महसूस कर 1918 में रूई के व्यापार के नियमन हेतु सर गिलवर्ट बाइल्स की अध्यक्षता में एक समिति रूई प्रसंविदे समिति के नाम से नियुक्त की । सन् 1919 में बोम्बे काटन कान्ट्रक्स कन्ट्रोल अधिनियम बनाया व काटन प्रसंविदे बोर्ड को रूई प्रसंविदे समिति के स्थान पर बना दिया जिसने एक संघ के लिए सीमा नियमन व अर्न्तनियम बनाये । यह संघ 19 अक्टूबर 1921 को ईस्ट इण्डिया काटन एसोसिएशन के नाम से कम्पनी अधिनियम के अनुसार पंजीकृत हुआ । इस संघ को रूई के व्यापार के नियंत्रण करने का सम्पूर्ण अधिकार सरकार ने दे दिया तथा 1922 में बोम्बे काटन कान्ट्रक्स अधिनियम बना दिया जिसको

बाद में 1922 में परिवर्तित कर इसी नाम से नया अधिनियम बनाया गया । इसी बीच अन्य राज्यों ने भी इस सम्बन्ध में पहल की 1919 में भागलपुर राज्य ने दलालों को लाइसेंस लेने व हिसाब किताब रखने के लिए बाध्य किया । सरकार ने रतलाम चेम्बर आफ कामर्स के उपनियमों को लागू करने से पूर्व राज्य से स्वीकृत लेना आवश्यक कर दिया । 1936 में ग्वालियर राज्य ने कपास व बिलौल के अग्रिम व्यापार को नियंत्रित करने के लिए नियम बनाये । 1939 में बंगाल सरकार ने जूट की न्यूनतम कीमतें निर्धारित कर दी ।

द्वितीय महायुद्ध ने सरकार को और अधिक कारगर कार्यवाही करने के लिये बाध्य कर दिया । सितम्बर 1939 में एक अध्यादेश द्वारा बम्बई सरकार के विकल्पको गैरकानूनी कर दिया । इसी समय बंगाल सरकार ने भी ईस्ट इण्डिया जूट एण्ड हेसियन एक्सचेंज कलकत्ता पर अपने प्रतिनिधि नियुक्त किये । सन् 1943 में भारत सुरक्षा नियम [डिफेन्स आन इण्डिया] की धारा 81 के अन्तर्गत खाद्य पदार्थ तिलहन वनस्पति तेल, कच्ची रुई, मसाले, चीनी व सोना चांदी में भविष्य व्यवहारों पर रोक लगा दी गयी । जब भारत सुरक्षा नियम समाप्त हुआ तो कुछ पदार्थों पर आवश्यक पूर्ति [अस्थायी अधिकार] अधिनियम 1946 के अन्तर्गत प्रतिबन्ध लागू रहा ।

<u>स्वतंत्रता के पश्चात् नियमन</u> :- सन् 1947 में बम्बई अग्रिम प्रसंविदा नियंत्रण अधिनियम लागू किया । इस अधिनियम का प्रयोग रुई, सोना चांदी तिल-

हन के अग्रिम व्यापार को नियमित करने के लिये किया गया । संविधान बन जाने पर स्कन्ध विनिमय व अग्रिम बाजार का विषय केन्द्र की सूची में शामिल कर लिया गया । केन्द्रीय सरकार ने एक बिल फरवरी 1950 में बनाकर राज्य सरकारों, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, चेम्बर आफ कामर्स व अन्य सम्बन्धित हितों को अपनी राय देने के लिए भेजा । जिसके आधार पर जुलाई 1950 में यह बिल एक विशेषज्ञ समिति को सौंप दिया गया । इस समिति के अध्यक्ष श्री ए.डी.श्रोफ थे । इस समिति की सिफारिशों को शामिल करते हुये एक विधेयक 19 दिसम्बर 1950 में अस्थायी संसद के सुपुर्द कर दिया गया जिसने अपना प्रतिवेदन 9 अगस्त 1951 को प्रस्तुत कर दिया । यह विधेयक बाद में इस अस्थायी संसद के समक्ष विचारणार्थ न आ सका और संसद समाप्त हो गयी । अतः 1952 में एक नया विधेयक प्रथम संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया जो अन्त में दिसम्बर 1952 में संसद द्वारा अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) अधिनियम के नाम से पारित कर दिया गया । इस विधान में यह व्यवस्था थी कि जिस समय किसी पदार्थ या स्थान पर यह विधान लागू होगा तो राज्य विधान के अधिनियम स्वतः ही इस सम्बन्ध में खण्डित हो जावेगें । इस अधिनियम में 1953, 1957 व 1960 में संशोधन किये हैं । 1960 के संशोधन के उद्देश्य निम्नवत हैं । -

1. अग्रिम बाजार में कड़े प्रतिबन्ध लगाना जिससे अत्यधिक सट्टा न हो सके,

2. अधिनियम की धाराओं के उल्लंघन पर भारी सजा देने की व्यवस्था ।

3. व्यापार संघ के कार्य करने के समय के अतिरिक्त समयों में व्यवहारों को रोकना, तथा

4. गत वर्षों में अधिनियम के लागू होने के अनुभव में सामने आयी कठिनाइयों को दूर करना तथा केन्द्रीय सरकार व अग्रिम बाजार आयोग को अग्रिम व्यवहारों के सम्बन्ध में नियंत्रण के लिए अधिक अधिकार देना था । इस संशोधन अधिनियम में कुल 28 धाराएं है ।

अग्रिम प्रसंविदे §नियमन§ अधिनियम, 1952 की मुख्य बातें :-

अग्रिम प्रसंविदे §नियमन§ की मुख्य बातें इस प्रकार है :-

§1§ नियमन सत्ता :- सरकार को अधिकार है कि किसी भी पदार्थ या किसी स्थान पर सरकारी गजट में विज्ञप्ति देकर मान्यता प्राप्त संघों के सदस्यों के बीच हुए प्रसंविदों के अतिरिक्त प्रसंविदों पर रोक लगाए । धारा 15 में यह भी वर्णित है कि संघों को इस प्रकार के अग्रिम प्रसंविदें करने की आज्ञा निश्चित पदार्थों, निश्चित समयों व निश्चित क्षेत्र के लिए ही दी जायेगी । संघों का कार्य प्रबन्ध मण्डलों द्वारा चलाया जाता है । सरकार अधिक से अधिक चार सदस्य प्रबन्ध मण्डल में मनोनीत कर सकती है । केन्द्रीय

सरकार समय समय पर विभिन्न सूचनाएं व वार्षिक प्रतिवेदन मांग सकती है । तथा इस अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन करने पर दण्ड भी दे सकती है ।

मान्यता प्राप्त संघों के नियम, उपनियम व विधान आदि में परिवर्तन बिना सरकार की अनुमति के नहीं हो सकता है । सरकार स्वयं ऐसे विधानों नियमों व उपनियमों में परिवर्तन कर सकती है । प्रबन्ध मण्डल का आवक्रमण सरकार द्वारा किया जा सकता है व मान्यता प्राप्त संघों को या उनके सदस्यों को कार्य करने से रोका जा सकता है । हस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे को अधिनियम से छूट देना, अहस्तान्तरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदें को नियमन के अन्तर्गत लेना या ऐसे प्रसंविदों पर प्रतिबन्ध लगाना व किसी अग्रिम प्रसंविदें को नियमन से छूट देने, आदि का अधिकार सरकार को होगा । सरकार द्वारा अग्रिम प्रसंविदे किसी भी वस्तुयें में करने से रोके जा सकते हैं । (धारा 17)

(2) <u>वस्तु या उपज विनिमयों को मान्यता</u> :- वस्तु या उपज विनिमयों को अग्रिम बाजार आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है । केन्द्रीय सरकार मान्यता देने के लिए शर्तें लगा सकती है । एक बार मान्यता देने के बाद किसी भी विनिमय की मान्यता को केन्द्रीय सरकार वापिस ले सकती है ।

§3§ <u>अग्रिम बाजार की स्थापना</u> :- जन साधारण के हितों की रक्षा करने व अधिनियम के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त संघों की देखभाल करने के लिए अग्रिम बाजार आयोग स्थापित किया जावेगा जिसके कम से कम दो व अधिकसे अधिक चार सदस्य होगें । इसका सभापति सरकार मनोनीत करेगी ।

§4§ <u>दण्ड व कार्यविधि</u> :- यदि कोई व्यक्ति गलत बयान या गलत सूचना देता है । या मान्यता प्राप्त संघ के कार्य निलंबन के दौरान अग्रिम प्रसंविदे करता है या अधिनियम के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे प्रथम अपराध के लिए दो हजार रूपये तक का जुर्माना या एक वर्ष तक की सजा या दोनो दिये जा सकते हैं । द्वितीय अपराध पर सजा इससे अधिक होगी ।

अग्रिम बाजार आयोग

§1§ <u>स्थापना</u> :- अग्रिम बाजार आयोग 2 सितम्बर0 1953 को स्थापित किया गया है इसका मुख्य कार्यालय बम्बई में है । इस समय इस आयोग का एक सभापति एवं एक पूर्णकालिक सदस्य है । आयोग की स्थापना से पूर्व आवश्यक पूर्ति §अस्थायी अधिकार§ अधिनियम 1946 के अन्तर्गत 33 पदार्थों के अग्रिम बाजार पर रोक थी । यह अधिनियम 26 जनवरी 1955 को समाप्त होने को था अतः 25 जनवरी 1955 को अग्रिम प्रसंविदे §नियमन§ अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत विज्ञप्ति निकालकर उन पदार्थों के अग्रिम व्यापार पर रोक जारी रखी ।

आयोग के कार्य सलाह देने व कार्यकारी दोनों ही है । यह केन्द्रीय सरकार को अधिनियम के लागू होने के बारे में सलाह देता है । इसको मान्यता प्राप्त संघों को आदेश देने का अधिकार है । अधिनियम के अन्तर्गत आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं ।

§2§ आयोग के कार्य :- मान्यता प्राप्त संघों को मान्यता देने, वापिस लेने या इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रबन्ध के अन्तर्गत उठे किसी मामले के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना ।

- अग्रिम बाजार का अवलोकन करते रहना व अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही करना ।
- सूचनाओं को एकत्रित करना व उनका प्रकाशित करना ।
- अग्रिम बाजारों के संगठन व कार्यप्रणाली को उन्नति के बारे में सरकार को सिफारिश करना ।
- किसी मान्यता प्राप्त या पंजीकृत संस्था के बही खातों व अन्य प्रपत्रों को देखना ।
- उन कर्तव्यों को पूरा करना जो इस अधिनियम में दिये है या दिये जायें ।

§3§ आयोग के अधिकार :-

अग्रिम बाजार आयोग को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं ।

- आयोग को सिविल प्रोसीजर अधिनियम 1908 के अन्तर्गत से सभी अधिकार है जो एक अदालत को होते हैं ।

- भारतीय दण्ड विधान की धारा 176 के अनुसार आयोग को किसी भी व्यक्ति को सूचना देने के लिए बाध्य करने का अधिकार है ।

- जब कोई अपराध भारतीय दण्ड विधान की धारा 175, 178, 179, 180 व 288 के अन्तर्गत आता है तो आयोग ऐसे अपराधों को किसी मजिस्ट्रेट को भेज सकता है ।

- धारा 4ए के अनुसार आयोग की सभी कार्यवाही न्यायिक होगी ।

§4§ आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये अधिकार :-

केन्द्रीय सरकार ने अपने निम्न अधिकार आयोग को सौंप दिये है :-

- मान्यता प्राप्त संघों के सदस्यों की संख्या को सीमित या असीमित करना ।

- संघों के नियमों में परिवर्तन करना ।

- प्रत्येक संघ व उसके सदस्यों के लिये नक्शों की व्यवस्था करना ।

- किसी संघ से उसके क्रियाकलापों के बारे में स्पष्टीकरण मांगना ।

- किसी संघ या संघ के सदस्यों की जांच करने के लिये व्यक्तियों को नियुक्त करना ।
- अधिनियम के नियमों को परिवर्तित करना या नये नियम बनाना ।
- संघों के उपनियमों को स्वीकृति देना ।
- संघों के उपनियमों में परिवर्तन करना ।
- किसी संघ से व्यापार को प्रलंबित करना ।
- किसी पंजीकृत व उसकेसदस्यों के लिये नक्शों की व्यवस्था करना ।

(5) आयोग कि क्रियाएं :- प्रारम्भ में आयोग को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा । ये समस्याएं पर्याप्त स्थान तथा कर्मचारियों एवं संगठन के संदर्भ में भी थी । आयोग ने सर्वप्रथम अधिनियम के नियम अग्रिम प्रसंविदे (नियमन) नियम के नाम से बनाये जिनको केन्द्रीय सरकार ने जुलाई 1954 में स्वीकृत दे दी । आयोग ने अपना कार्य विभिन्न पदार्थों के बारे में सरकार को प्रतिवेदन देने से प्रारम्भ किया । इसने पहला प्रतिवेदन रूई के बारे में सरकार को दिया जिसको सरकार ने मान लिया । अत: 30 अप्रैल 1954 को धारा 15 के अन्तर्गत एक विज्ञप्ति जारी की गई । जिसके अनुसार दी ईस्ट इण्डिया काटन एसोसिएशन बम्बई के नियमन का अधिकार बम्बई सरकार से हटकर आयोग के पास आ गया तब से आयोग बराबर अग्रिम प्रसंविदों को नियमित कर रहा है । अब तक लगभग चार

दर्जन पदार्थों पर धारा 15कें आयोग की सिफारिश पर लागू किया गया है जिसमें रूई, बीनौले, अलसी, अण्डा, हल्दी, कच्चा जूट, जूट पदार्थ, काली मिर्च, कपास, मूंगफली का तेल, अण्डी का तेल तथा अन्य तेल आदि प्रमुख हैं। 110 पदार्थों में अग्रिम प्रसंविदे धारा 17 के अन्तर्गत रोक दिये गये है। जिनमें गेहूं, चना, चीनी, सूती कपड़ा, सूत, ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर, जौ, चावल, अण्डी का तेल, वनस्पति घी, मिर्चें, सोना, चांदी अरहर व मूंग की चुनी प्रमुख हैं। लगभग 87 पदार्थों में अहस्तांतरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदे पर भी रोक लगा दी गयी है।

आयोग समय-समय पर अधिनियम व मान्यता प्राप्त संघों के बारे में अपना प्रतिवेदन सरकार को देता है। इस समय देश में 111 से अधिक पंजीकृत व लगभग 45 मान्यता प्राप्त संघ हैं। बहुत से संघ एक से अधिक पदार्थों के लिए मान्यता प्राप्त हैं। आयोग चुने हुये केन्द्रों एवं मान्यता प्राप्त संघों के माध्यम से भविष्य बाजार का नियमन करता है। तथा विनियमों पर अत्यधिक मूल्यवृद्धि अस्वस्थ्यकर प्रवृत्ति होने पर आयोग इन्हें रोकने का प्रयत्न करता है। 1976-77 वर्ष में आयोग ने जूट के बोरे, काली मिर्च, हल्दी, अण्डा तथा अलसी के भविष्य बाजार का नियमन किया लेकिन 5 फरवरी 1977 से अण्डी, अलसी तथा तेलों में भविष्य व्यापार पर रोक लगा दी। निश्चित अवधि के लिए रूई, कच्चे जूट एवं जूट वस्तुओं के लिए अहस्तांतरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों की अनुमति दी गयी।

§6§ अग्रिम बाजार आयोग के कार्यकारी खण्ड :- ये खण्ड तीन है :-

1. वस्तु खण्ड
2. एन्फोर्समेंट खण्ड
3. प्रशासनिक खण्ड

1976-77 वर्ष में एम्फोर्समेंण्ट खण्ड ने स्थानीय पुलिस की सहायता से देश भर में 105 स्थानों पर छापे मारे जहां पर अवैधानिक रूप से भविष्य व्यापार होता था । इसी वर्ष अर्थात् 1976-77 में 28 मामलों में सजाएं दी गई तथा 13 फर्म व 75 व्यापारियों पर जुमनि किये गये । 1987-88 में सरकार ने बड़ी मात्रा में देश भर में छापे डाले और लगभग 50 से अधिक मामलों में सजाए दी गयी तथा 170 व्यापारियों पर जुर्माना लगाया गया ।

केन्द्रीय सरकार के अधिकार :-

आयोग को विभिन्न अधिकार सौंपने के पश्चात् अब केन्द्रीय सर-कार के पास निम्न अधिकार रह गये हैं :-

1. संघ को मान्यता देना ।
2. मान्यता प्राप्त संघों के प्रबन्ध मण्डलों में संचालकों को नियुक्त करना ।
3. संघ की मान्यता वापिस लेना ।
4. संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में मान्यताप्राप्त संघों के नियमों में परिवर्तन करना ।

5. मान्यता प्राप्त संघों को आकरण करना ।

6. अग्रिम व्यवहार निश्चित पदार्थों व निश्चित स्थानों पर नियमित करना ।

7. धारा 25 व 17 लागू होने पर प्रसंविदे को पूरा करने के लिए मूल्य निश्चित करना ।

8. निश्चित पदार्थों व निश्चित क्षेत्रों में अग्रिम व्यापार पर रोक लगाना ।

9. अहस्तांतरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों को अधिनियम के अन्तर्गत छूट देना ।

10. अहस्तांतरणीय विशेष सुपुर्दगी प्रसंविदों को नियमित करना या रोकना ।

11. सलाहकार समिति नियुक्त करना ।

12. किसी अधिकारी या सत्ता को अधिकार सौंपना ।

13. किसी भी प्रकार के अग्रिम प्रसंविदे को अधिनियम की धाराओं से छूट देना ।

14. अधिनियम में दिये हुए कार्यों के लिए नियम बनाना ।

(7) <u>अग्रिम बाजार निरूपण समिति</u> :- भारत सरकार ने 16 फरवरी को श्री एम. एल. दन्तवाला की अध्यक्षता में 7 व्यक्तियों की एक समिति निम्न

कार्यों की छानबीन कर प्रतिवेदन देने के लिए नियुक्त की ।

- अग्रिम-बाजार आयोग को पिछली 10 वर्षों में हुई कार्य प्रणाली का निरूपण करना और यह पता लगाना कि वह कहां तक अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक हुआ है ।

- देश में परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों में अग्रिम बाजार भविष्य में क्या अभिनय प्रस्तुत कर सकता है ।

- वर्तमान विधान में उन्नति हेतु संशोधन के सुझाव देना ।

- उन कार्यों के बारे में सुझाव देना जो अग्रिम बाजार आयोग के बारे में दिये जा सकते हैं । इस समिति से 6 माह के अन्दर प्रतिवेदन देने को कहा गया था लेकिन समिति के आग्रह पर इसका कार्यकाल 15 नवम्बर 1966 तक बढ़ा दिया गया । समिति ने अपना प्रतिवेदन 20 अक्टूबर 1966 को प्रस्तुत कर दिया ।

इस समिति ने कार्य करने के लिए दो प्रकार की प्रश्नावली बनाई थी । जिन्हें मान्यता प्राप्त संघों व पंजीकृत संघों को भेजा गया था । समिति ने विभिन्न प्रान्ती सरकारों, सरकारी व अर्द्ध सरकारी व निजी व्यापारिक संगठनों आदि के विचार सुने तथा इस उद्देश्य से अहमदाबाद, राजकोट, सुरेन्द्र नगर, कलकत्ता व नयी दिल्ली में बैठकें की । 16 फरवरी, 1966 में 7 व्यक्तियों की समिति में निम्नलिखित व्यक्ति समिति के सदस्य

घोषित किये गये । श्री ए.यस. नायक, आई.सी.एस.चेयरमैन फारवर्ड मार्केट कमीशन, बम्बई, श्री आर.डी. मिर्चान्दनी, भारत सरकार के कृषि विपणन के सलाहकार, नागपुर, श्री जी.यम.लैण्ड, फाइनेन्सियल एक्सप्रेस के संपादक बम्बई, श्री सी,यल. घी वाला, सचिव भारतीय व्यापारिक संघ बम्बई, प्रो. एस.वी.कोगेकर सदस्य फारवर्ड मार्केट कमीशन बम्बई, और श्री आर महादेवन वित्त मंत्रालय के वित्तीय सलाहकार, नई दिल्ली ।

अग्रिम बाजार निरूपण समिति की सिफारिशे :-

अग्रिम बाजार निरूपण समिति की सिफारिश को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बांटा गया है ।

§1§ भविष्य बाजार आयोग की स्थापना :-

समिति ने सिफारिश की है कि अग्रिम बाजार प्रसंविदे §नियमन§ अधिनियम 1952 का नाम बदल कर भविष्य बाजार §नियंत्रण§ अधिनियम कर दिया जाय व वर्तमान अग्रिम बाजार आयोग का नाम भी परिवर्तित कर भविष्य बाजार आयोग कर दिया जाय और यह एक विशिष्ट, स्वतंत्र संस्था हो जिसका कार्य भविष्य व्यापार का नियमन व देख भाल हो । इस संस्था के दिन प्रतिदिन के कार्य में सरकार का हस्तक्षेप न हो । यद्यपि सर-कार को नीति निर्धारित करने एवं निर्देश देने का अधिकार होना चाहिये । आयोग को बाजार ज्ञान विभाग खोलना चाहिये । जिसका प्रमुख एक योग्य

अर्थशास्त्री हो । आयोग को रोजाना नक्शा मांगने का अधिकार होना चाहिये तथा भविष्य व्यापार व तत्काल व्यापार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के बही खाते, किताबें, पुस्तकें व अन्य रिकार्ड देखने का भी अधिकार होना चाहिये । आयोग को सभी अधिकार अधिनियम से सीधे मिलने चाहिये ।

§2§ अग्रिम बाजार नियमन :-

आयोग ने नियमन के सम्बन्ध में जो कार्य किया है ।उसे सीमित उद्देश्य की प्राप्ति हुई है । यह तत्काल कीमतों में वृद्धि को नहीं रोक पाया है । समिति ने सिफारिश की है कि नियमन सम्बन्धी तरीके भविष्य व्यापार की कीमतों को काम में नहीं लाने चाहिये जब तक की तत्काल कीमतों को रोकने का ऐसा प्रयत्न न किया जाय । यदि पदार्थ का सीधा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये । संघों को मान्यता देते समय ध्यान देना चाहिए । आयोग व मान्यता प्राप्त संघ के बीच नियमन सम्बन्धी अधिकारों का साफ-साफ उल्लेख होना चाहिये । पंजीकृत संघों के वर्ग को समाप्त कर देना चाहिये । जिन पदार्थों में भविष्य बाजार हो उनकी एक सूची अधिनियम के साथ लगी होनी चाहिए व सरकार को इस सूची में न हो उनमें व्यापार अवैध घोषित कर देना चाहिये । एक शहर या एक कस्बों में एक पदार्थ के लिए एक ही संघ या विनिमय होना चाहिए । तथा एक पदार्थ के सभी भविष्य बाजारों में सुपुर्दगी के महीने एक होने चाहिए ।

सिफारिशों पर अमल :-

समिति का पूरा प्रतिवेदन 17 मई 1977 को सरकार द्वारा

प्रकाशित किया गया व सम्बन्धित समुदायों, व्यक्तियों व संघों आदि से इस प्रतिवेदन पर अपनी प्रक्रिया 12 जून 1967 तक अग्रिम बाजार आयोग, बम्बई को व उसकी एक प्रति वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार को भेजने का आग्रह किया गया । इन सभी सुझावों व प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अधिनियम में परिवर्तन करने का निश्चय किया और असका उल्लेख राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में 12 फरवरी 1968 को संयुक्त अधिवेशन का उद्घाटन करते समय किया था । लेकिन अभी तक इस संबंध में कोई आवश्यक कदम नहीं उठाये गये हैं । 11 अक्टूबर 1971 को राष्ट्र-पति ने एक अध्यादेश जारी कर भविष्य प्रसंविदे व तत्काल प्रसंविदे की परि-भाषाओं में परिवर्तन कर दिया । इसका उद्देश्य तत्काल प्रसंविदों का प्रयोग भविष्य प्रसंविदों की तरह न होने देना है ।

§3§ खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954 :

खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954 का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र में व्याप्त बुराइयों को दूर करना तथा व्यापारियों व उत्पादकों द्वारा खाद्य पदार्थों में मिलावट को रोकना एवं जनता को शुद्ध खाद्य वस्तुओं को उपलब्ध कराना है । आधुनिक समय में विभिन्न केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारें देश में खाद्य मिलावट करने वाले व्यक्तियों पर इस अधिनियम के माध्यम से उन पर कड़ी नियंत्रण करती है तथा उन्हें दण्डित करती है इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित है ।

1. अधिनियम की धारा 7 के अनुसार कोई भी व्यक्ति न तो ऐसी वस्तु बनायेगा न बेचेगा, न संग्रह करेगा और न वितरित करेगा जो -

    §अ§ कोई मिलावटी खाद्य पदार्थ हो ।

    §ब§ कोई धोखे वाली ब्राण्ड का खाद्य पदार्थ हो ।

    §स§ कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री पर स्वास्थ्य अधिकारी द्वारा रोक लगा दी गयी हो ।

    §द§ कोई मिलावटी वस्तु हो ।

    §च§ कोई खाद्य पदार्थ जिसकी बिक्री के लिये कोई लाइसेंस लेना आवश्यक है ।

2. अधिनियम की धारा 5 के अनुसार कुछ खाद्य पदार्थों के आयात पर रोक लगा दी गयी है अर्थात् कोई भी व्यक्ति निम्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का आयात नहीं करेगा ।

- मिलावटी खाद्य पदार्थ
- कोई धोखे या नकली ब्राण्ड का खाद्य पदार्थ
- कोई ऐसा खाद्य पदार्थ जिसके आयात के लिये लाइसेन्स लेना आवश्यक है ।
- कोई खाद्य पदार्थ जो इस अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध हो ।

3. <u>खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति एवं उनके अधिकार</u> :- केन्द्रीय व राज्य सरकार गजट में प्रकाशित करके खाद्य निरीक्षकों की नियुक्ति की जा सकती है । जिनको यह अधिकार होगा कि वे किसी भी ऐसे विक्रेता या ऐसे व्यक्तियों से जो वस्तुओं को दे रहा है, नमूना ले सकते हैं । इसके सम्बन्ध में खाद्य निरीक्षक जहां ऐसी वस्तुयें बन रही हों या संग्रह करके रखी गयी हों, प्रयोग कर सकता है, और ऐसी वस्तु का नमूना ले सकता है लेकिन इसके लिये उसे सामान्य मूल्य देना होगा । इसके साथ ही साथ वह पुस्तकें व सभी कागजातों को भी अपने अधिकार में ले सकता है । नमूना लेते समय उसकी मात्रा का ध्यान रखना अति आवश्यक है जो दूध के लिये 200 मिलीलीटर, घी व मक्खन 150 ग्राम, चाय 125 ग्राम आदि के बराबर होना चाहिये।

4. नमूने का विश्लेषण एवं मुकदमा

खाद्य निरीक्षक द्वारा लिये गये नमूने को जन विश्लेषक को भेजा जायेगा जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा की जायेगी। यह विश्लेषक निर्धारित फार्म पर अपनी रिपोर्ट देगा। यदि रिपोर्ट में यह पाता है कि वस्तु मिलावटी है तो उचित न्यायालय में मुकदमा दायर किया जायेगा। न्यायालय द्वारा ऐसे मामलों में कम से कम छः माह की सजा तथा एक हजार रूपये तक आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। लेकिन इसको सजा बढ़ाकर तीन वर्ष तक की जा सकती है। कुछ मामलों में कम से कम तीन माह की सजा जिसको दो वर्ष तक किया जा सकता है तथा कम से कम 500 रूपये जुर्माना किया जा सकता है। यदि राज्य सरकार द्वारा अधिकृत कर दिया जाय तो मुकदमें सरसरी में सुने जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश को एक वर्ष तक सजा देने का अधिकार होगा।

(5) आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955

समय-समय पर जब आवश्यक वस्तुओं का अभाव उत्पन्न होना प्रारम्भ हुआ, चाहे यह अभाव वस्तु के उत्पादन के द्वारा या पूर्ति या वितरण के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ हो तो सरकार ने इन वस्तुओं के अभाव को समाप्त करने के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 को

पारित किया, जिससे आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को बनाये रखा जाय । इसके प्रमुख लक्षण निम्न है :-

1. उद्देश्य व क्षेत्र

आवश्यक वस्तु अधिनियम को पारित करने में सरकार के निम्न उद्देश्य थे ।

- इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य सामान्य जनता के हित में आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, पूर्ति व वितरण, व्यापार व वाणिज्य पर नियंत्रण करना है, जिससे कि आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करायी जा सके ।

- इस अधिनियम का मुख्य अभिप्राय दो आवश्यक तत्वों से है प्रथम तो उपभोक्ता आवश्यक वस्तुओं का समान वितरण, द्वितीय आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर वस्तुएं उपलब्ध कराना है ।[58]

- इस अधिनियम का उद्देश्य आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति बनाए रखना ।[59]

---

58. आर. रागन जून वैटिवर और वाणिज्य मंत्रालय, तमिलनाडु सरकार ए.आई.आर. 1982 मद्रास उच्च न्यायालय 2619

59. एम्पायर उद्योग लि. और अन्य तथा एम.सी. सुवरमा और अन्य ए.आई. आर. 1982 बम्बई उच्चन्यायालय 537

आवश्यक वस्तुओं का अर्थ इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित है -

"जानवरों का चारा, जिसमें खली, चूनी एवं अन्य वस्तुयें जैसे - कोयला व अन्य ईंधन, सूती व ऊनी कपड़ा, औषधियां, खाद्य पदार्थ एवं खाद्य तेल, लोहा व स्टील, कागज, अखबारी कागज व अन्य कागज बनाने का सामान, पेट्रोलियम तथा अन्य पेट्रोलियम उत्पाद, कच्चा जूट। इस अधिनियम के अन्तर्गत अन्य ऐसी वस्तुयें जो केन्द्रीय सरकार द्वारा समय समय पर निर्धारित एवं घोषित की जाये। को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

2. अधिनियम के अन्तर्गत सरकार के अधिकार :-

आवश्यक वस्तु अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को आवश्यक, वस्तुओं की पूर्ति, उत्पाद तथा वितरण पर नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त है इन प्राप्त अधिकारों को निम्न शीर्षकों में वर्णित किया जा सकता है :-

§1§ केन्द्रीय सरकार यदि आवश्यक समझती है कि आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को यथा स्थिर रखा जाये या उसमें वृद्धि की जाये तथा इसके साथ ही साथ आवश्यक वस्तुओं का समान वितरण किया जाये जिससे कि समाज के कमजोर वर्ग को आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध करायी जा सके। इस प्रकार की आवश्यक वस्तुओं का संरक्षण भारत में सुरक्षा की दृष्टिकोण से या सैनिक दृष्टिकोण से उचित हो तो सरकार अपने आदेशों के द्वारा इन वस्तुओं का उत्पादन पूर्ति एवं वितरण को नियमित व प्रतिबन्धित कर सकती है।

(2) इस प्रकार के अधिकारों के द्वारा किसी प्रकार का पक्षपात न हो, इसके लिए निम्न प्रावधान किये गये जो निम्न है -

- आवश्यक वस्तु का निर्माण या उत्पादन को लाइसेंस या कोटा द्वारा नियमित करना ।
- इस सम्बन्ध में कृषि योग्य भूमि जो बेकार पड़ी है उस पर भवन या मकान नही बनाया जा सकता, उस भूमि पर केवल खाद्यान्नों का उत्पादन या निर्धारित खाद्यान्न या खाद्यान्नों के उत्पादन को बनाये रखना ।
- आवश्यक वस्तुओं की नियंत्रित मूल्यों पर खरीदना व बेचना ।

3. सरकार द्वारा उठाये जाने वाले कदम :-

अधिनियम में आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति बनाये रखने, उनके उत्पादन पर नियंत्रण करने तथा वितरण से सम्बन्धित निम्न प्राविधान हैं -

- देश में खाद्यान्नों के अभाव में, सरकार सभी कदम जो इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित है उठाने के लिए बाध्य है तथा उसका संशोधन भी समय-समय पर सरकार द्वारा होता रहा है ।[60]

---

60. सुख विंदपाल विपिन कुमार अन्य एवं पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1982

- खाद्यान्न विक्रेता का निर्णय विचाराधीन की दशा में, सरकार उसका लाइसेंस जब्त कर सकती है। या लाइसेंस निलम्बित कर सकती है या उसके लाइसेन्स को निरस्त कर सकती है।

इस प्रकार का कदम अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।[61]

- किसी भी अधिसूचना के अन्तर्गत सरकार थोक विक्रेता या फुटकर विक्रेता के बीच कोई भी विभिन्नता उत्पन्न नहीं करती और न ही कोई ऐसी अधिकतम सीमा गेहूं के सम्बन्ध में स्टाक रखने की आज्ञा प्रदान करती है जो कि अविवेकीपूर्ण है, उसे तो केवल ग्रामीण आवश्यकता को देखते हुए उचित मूल्य पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराना है।[62]

- राष्ट्रीय हित के विपरीत आवश्यक वस्तुयें, कोई भी थोक विक्रेता कोई भी सीमा अपने इच्छा से व विवेक से निर्धारित नहीं कर सकता।[63]

- सरकार आदेश के द्वारा आवश्यक वस्तुओं का उचित वितरण व आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने में खाद्यान्नों की जमाखोरी व कालाबाजारी को समाप्त करने के लिए, जांच करने व स्टाक को

---

61. सुख विंदपाल विपिन कुमार अन्य एवं पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1982
62. सूरजमल कैलाशचन्द्र व अन्य और केन्द्रीय सरकार, ए.आई.आर. 1980
63. विशम्भर दयाल चंद मोहन और उत्तर प्रदेश ए.आई.आर. 1980

देखने का भी आदेश दे सकती है जिससे कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति किया जा सके ।[64]

4. अधिनियम की अवज्ञा पर जुर्माना :-

इस अधिनियम का पालन न करने, जमाखोरी, कालाबाजारी करना, आवश्यक वस्तु की पूर्ति को न करने में सरकार को वस्तुओं को जब्त करने का अधिकार है तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा इसका उल्लंघन करने पर वह निम्न का भागी होगा ।

- उसे एक वर्ष की सजा हो सकती है, तथा इसके साथ ही साथ उसे आर्थिक दण्ड भी देना होगा ।

- किसी भी आदेश का उल्लंघन करने पर उसे कम से कम तीनमहीनें और अधिक से अधिक सात वर्ष तक की सजा हो सकती है और इसके साथ उसे आर्थिक दण्ड भी देना होगा ।

- इस अधिनियम के उल्लंघन करने में लगी कोई भी सम्पत्ति सरकार जब्त कर सकती है ।

- ऐसी कोई भी सम्पत्ति, जिसमें पैंकिंग की गयी हो, या उसके द्वारा वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान ले जायी गयी हो, परिवहन के साधन जानवर, ट्रक इत्यादि सभी सम्पत्तियों को सरकार न्यायालय के आदेश से जब्त कर सकती है ।

---

64. विशम्भर दयाल चंद मोहन और उत्तर प्रदेश सरकार ए.आई.आर. 1980

§5§ प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम 1956

प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में अवांछित सौदों को रोकने, विकल्प व्यवहारों को समाप्त करने व ऐसी परम्पराएं डालने के लिए जो आवंछित परिकल्पना को समाप्त करें और सभी सौदे निर्धारित नियमों के अनुसार हो यह अधिनियम बनाया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य सट्टे वाली क्रियाओं को नियमित करना है जिससे कि लोग जुएं में आकर्षित न हो सकें । इसका अभिप्राय यह है कि प्रतिभूति अनुबन्ध §नियमन§ अधिनियम के अन्तर्गत उन सौदों को करने पर विशेष बल दिया जाता है जो राजनियम द्वारा वैध होते हैं किन्तु ऐसे सौदें जो अवांछित है या जिनकी प्रवृत्ति जुएं से सम्बन्धित है ऐसे सौदों को रोकने का प्रयास इस अधिनियम के अन्तर्गत किया जाता है साथ ही साथ ऐसी स्वस्थ परम्परा का अभ्युदय किया जाता है जिससे अवांछित परिकल्पना समाप्त हो जाय । प्रतिभूति अनुबन्ध §नियमन§ अधिनियम अखिल भारतीय स्तर पर पहला अधिनियम है जो स्वतंत्रता के पश्चात् 20 फरवरी 1957 के लागू किया गया है ।

प्रतिभूति अनुबन्ध §नियमन§ अधिनियम के उद्देश्य :- प्रतिभूति अनुबन्ध अधिनियम का मुख्य उद्देश्य प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में अवांछित सौदों को रोकने से है । इसका अभिप्राय यह है कि जो भी सौदे किये जाय वो निर्धारित नियमों के आधार पर किये जाय साथ ही साथ विकल्प व्यवहारों

को समाप्त करने एवं अवांछित परिकल्पना को समाप्त करने से है । भारत सरकार के तत्कालीन वित्त मंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा कि "स्कन्ध विनिमय सुधार का मुख्य उद्देश्य सट्टेवाली क्रियाओं को नियमित करना है जिससे कि वो जुएं में आकर्षित न हो सके इस सुधार का यह उद्देश्य नहीं है कि विनियोग की खरीद या बिक्री में हस्तक्षेप करें या वे. सट्टे में हस्तक्षेप करे जब तक कि वो नियमों के अनुसार है । इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, विधेयक जो संसद के समक्ष है, बनाया गया है ।" इस अधिनियम के निम्नलिखित उद्देश्य है । -

1. अवांछित सौदों को रोकना
2. विकल्प व्यवहारों को समाप्त करना
3. ऐसी स्वस्थ परम्परा का विकास जिससे अवांछित परम्परा समाप्त हो जाय ।
4. सौदे पहले से निर्धारित नियमों के अनुसार उचित रूप से हो सके ।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम की मुख्य बातें :

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम, 1956 में समय-समय पर संशोधन किये गये हैं । इस संशोधित अधिनियम की मुख्य बातों का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं ।

1. स्कन्ध विनिमयों को मान्यता

2. केन्द्रीय सरकार के विनिमयों के अधिकार

3. प्रतिभूतियों में सौदे

4. स्कन्ध विनिमय की कार्य प्रणाली पर नियंत्रण

5. सदस्यता

6. हिसाब किताब की पुस्तकों का अनुरक्षण

(1) स्कन्ध विनिमयों को मान्यता :- कोई भी स्कन्ध विनिमय बिना केन्द्रीय सरकार की मान्यता के कार्य नहीं कर सकता है और न कोई नया स्कन्ध विनिमय बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के खोला जा सकता है। धारा (9) मान्यता प्राप्त करने के इच्छुक विनिमय को केन्द्रीय सरकार को निर्दिष्ट रूप से आवेदन पत्र देना पड़ता है। इस आवेदन पत्र के साथ उपनियमों की व विधान की एक प्रतिलिपि भी देनी पड़ती है। केन्द्रीय सरकार आवश्यक जांच पड़ताल करने के बाद, यदि संतुष्ट हो जाती है, तो उस विनिमय को मान्यता प्रदान कर सकती है। लेकिन मान्यता प्रदान करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार निम्न बातों पर विशेष ध्यान देती है।

1. स्कन्ध विनिमय के नियम व उपनियम इस प्रकार के हैं कि विनियोक्ताओं के साथ उचित व्यवहार होगा व उनके हितों की रक्षा होगी।

2. स्कन्ध विनिमय सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों के मानने के लिए तैयार है।

3. विनिमय पर केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधित्व (सदस्यों से अधिक नहीं)

4. सदस्यों द्वारा हिसाब किताब रखना व उनका अंकेक्षण ।

यदि केन्द्रीय सरकार यह अनुभव करती है कि मान्यता को व्यापार व जनहित में वापस ले लेना चाहिये तो केन्द्रीय सरकार विनिमय को अपनी बात रखने का उचित अवसर देते हुए मान्यता को वापस ले सकती है ।

उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने आठ स्कन्ध विनिमयों को मान्यता प्रदान की है जो इस प्रकार है - बम्बई स्कन्ध विनिमय, कलकत्ता स्कन्ध विनिमय, मद्रास स्कन्ध विनिमय, दिल्ली स्कन्ध विनिमय, अहमदाबाद स्कन्ध विनिमय, हैदराबाद स्कन्ध विनिमय, मध्य प्रदेश स्कन्ध विनिमय, इन्दौर एवं बंगलौर स्कन्ध विनिमय ।

(2) केन्द्रीय सरकार के अधिकार :- प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये है । केन्द्रीय सरकार आवश्यक समय पर अपने अधिकार का प्रयोग करके विनिमय व्यवस्था को नियंत्रित करती है । ये अधिकार निम्न हैं :-

- प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम की धारा 5 के अनुसार केन्द्रीय सरकार विनिमय की मान्यता को वापस ले सकती है ।

- अधिनियम की धारा 6 में केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह विनिमय से समय-समय पर विभिन्न प्रकार की सूचनाएं मांग सकती है ।

- अधिनियम की धारा 7 में प्रत्येक विनिमय द्वारा वार्षिक प्रतिवेदन सरकार को भेजना ।

- धारा 7(अ) के अनुसार मान्यता प्राप्त विनिमय के नियमों में बिना केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।

- केन्द्रीय सरकार धारा 10 के तहत किसी भी विनिमय को नये नियम व उपनियम बनाने के लिए बाध्य कर सकती है एवं उसके वर्तमान नियमों व उपनियमों में परिवर्तन कर सकती है ।

- धारा 11 में केन्द्रीय सरकार किसी भी मान्यता प्राप्त विनिमय की प्रबन्ध समिति को भंग कर सकती है ।

- धारा 12 के अनुसार यदि व्यापार व जनहित में आवश्यक हो तो किसी विनिमय का व्यापार अधिक से अधिक 7 दिन के लिए बन्द कर सकती है ।

- केन्द्रीय सरकार विशेष परिस्थितियों में धारा 16 के अन्तर्गत अनुबन्धों के व्यापार को रोक सकती है ।

- धारा 21 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार किसी सार्वजनिक कम्पनी को अपने अंशों को विनिमय पर सूचियन कराने के लिए बाध्य कर सकती है ।

- केन्द्रीय सरकार धारा 30 के अन्तर्गत यदि आवश्यक समझे तो नये-नये नियम बना सकती है ।

- प्रतिभूतियों में व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को जो मान्यता प्राप्त विनिमय के सदस्य न हो सरकार उन्हें अनुमति पत्र लेने के लिए बाध्य कर सकती है ।

- केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह चाहे तत्काल सुपुर्दगी व्यवहारों को नियमित कर सकती है ।

- सरकार को यह भी अधिकार है कि वह विनिमय कार्यों की जांच उच्च समिति के माध्यम से करा सकती है ।

- केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह विनिमय के सदस्यों को व्यवहारों का पूरा लेखा रखने के लिये बाध्य कर सकती है तथा उनका अंकेक्षण चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट से करा सकती है ।

§3§ प्रतिभूतियों में सौदे :- विकल्प व्यवहार अधिनियम द्वारा अवैधानिक घोषित कर दिये गये है, यदि कोई व्यक्ति या विनिमय इस प्रकार के सौदे

करेगा तो उसको दण्ड दिया जा सकता है । तत्काल सुपुर्दगी अनुबन्ध यद्यपि इस अधिनियम की परिधि में नहीं आते लेकिन फिर भी सरकार को ऐसे अनुबन्धों को नियमित करने का अधिकार दिया गया है ।

जिन स्थानों पर मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमय नहीं हैं वहां प्रतिभूतियों में व्यवसाय करने वाले व्यवसायियों को अनुमतिपत्र दिये जा सकते है । वे व्यवसायी उस क्षेत्र में अग्रिम व्यवहार भी कर सकते हैं ।

§4§ स्कन्ध विनिमय की कार्यप्रणाली पर नियंत्रण :-

स्कन्ध विनिमय की कार्य प्रणाली पर नियंत्रण के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित विषयों का निर्धारण कर सकती है ।

- विनिमय के खुलने व बन्द होने तथा कार्य करने का समय ।
- व्यवहारों से निपटने के लिए समाशोधनगृह की स्थापना ।
- समाशोधनगृह द्वारा समय-समय पर सरकार को ब्यौरा देना ।
- निरंक हस्तान्तरणों का नियमन करना या समाप्त करना ।
- बदला या पूर्व विशिष्ट को समाप्त करना या उसका नियमन करना ।
- बाजार दरों का निर्धारण करना ।
- तरावनी व्यापार का नियमन करना ।

- प्रतिभूतियों का सूचियन करना ।
- झगड़ों को तय करने का तरीका ।
- फीस, जुर्माना व दण्ड, दलाली आदि का निर्धारण करना ।
- आपत्तिकाल में प्रतिभूतियों का न्यूनतम व अधिकतम मूल्य निर्धारित करना ।
- सदस्यों के व्यवहारों का नियमन करना ।
- दलाल के कार्यों को अलग-अलग करना ।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम 1956 की धारा 30 के द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है । इस धारा के अन्तर्गत सरकार ने प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) नियम 1957 बनायें हैं । जिनकी मुख्य बातें इस प्रकार है :-

सदस्यता :-

नियम आठ के अनुसार निम्न व्यक्ति किसी विनिमय के सदस्य नहीं हो सकते हैं -

1. जिनकी आयु 21 वर्ष से कम है ।
2. जो भारत के नागरिक नहीं है ।
3. जो दिवालिया हैं या दिवालिया घोषित किये जा चुके हैं ।

4. जिन्होंने अपने लेनदार को पूरा धन नहीं चुकाया है ।

5. जो धोखाधड़ी या बेईमानी के लिए अदालत द्वारा सजा प्राप्त कर चुके हैं ।

6. जो प्रतिभूतियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से व्यापार में या तो प्रधान है या कर्मचारी है ।

7. वे व्यक्ति जो ऐसी संस्था के संबंधित हैं जो प्रतिभूतियों में व्यापार करती हैं या वह ऐसी कम्पनी के संचालक, साझेदार या कर्मचारी है ।

8. जिसको किसी विनिमय से बहीस्कृत कर दिया गया है या जिनको दोषी पाया गया है ।

9. जिसकी सदस्यता का आवेदन पत्र अस्वीकार कर दिया गया है और दुबारा आवेदन पत्र देने तक एक वर्ष का समय व्यतीत नहीं हुआ है ।

उपर्युक्त शर्तों को पूरा करने के साथ-साथ सदस्य बनने के लिए निम्न में से एक शर्त अवश्य पूरी हो जानी चाहिये -

(अ) उसने कम से कम दो वर्ष तक किसी संस्था में साझेदार या अधिकृत सहायक या अधिकृत लिपिक या उपदलाल के रूप में कार्य किया हो ।

(ब) यह साझेदार या प्रतिनिधि सदस्य या अन्य सदस्य के साथ कम से कम दो वर्ष तक काम करने के लिए तैयार हो और विनिमय में सौदे उनके

<u>§6§ हिसाब किताब की पुस्तकों का अनुरक्षण</u> :- अधिनियम की धारा 14 के अनुसार प्रत्येक विनिमय को निम्न वस्तुएं एवं प्रलेख 5 वर्ष तक सुरक्षित रखने होगें - सदस्यों, प्रबन्धक सभा व अन्य समितियों की कार्यवृत्त पुस्तक, सदस्यों का रजिस्टर जिसमें सदस्यों का नाम व पता लिखा हो, अधिकृत लिपिकों का रजिस्टर, अधिकृत सहायकों का रजिस्टर, जमानत जमा का प्रलेख, अन्तरराशि जमा पुस्तक, बही खाते, रोजनामचा, रोकड़ बही, बैंक पासबुक ।

<u>अधिनियम का प्रबन्ध :</u>

प्रतिभूति अनुबन्ध §नियमन§ अधिनियम, 1956 के विनियामिक प्रावधानों के उचित प्रबन्ध के लिए केन्द्रीय सरकार ने 1959 में वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामले के विभाग के अन्तर्गत स्कन्ध विनिमय मण्डल खोला है । इसका मुख्य कार्यालय बम्बई है और शाखाएं कलकत्ता, देहली व मद्रास में है । इस स्कन्ध विनिमय मण्डल के मुख्य कार्य निम्नलिखित है।-

1. यह मण्डल यह देखता है कि विभिन्न स्कन्ध विनिमयों का संचालन एवं प्र शासन प्रतिभूति अनुबन्ध §नियमन§ अधिनियम के अनुसार हो रहा है इस कार्य के लिए मण्डल विनिमयों पर निगरानी रखता है और जब कभी भी बाजार में अप्रिय स्थिति उत्पन्न होती है तो सरकार को आवश्यक सलाह देता है ।

2. यह मण्डल सदस्यों द्वारा किये गये सौदों का दैनिक विवरण उनसे प्राप्त करता है और उन विवरणों की जांच करता है तथा जिन सदस्यों ने अधिव्यापार किया है उनके विरुद्ध कार्यवाही करने की सलाह देता है ।

3. मण्डल इस बात की जांच करता है कि किसी कम्पनी ने सूचियन सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं को उचित रूप से पूरा कर दिया है जिससे धन विनियोजन करने वालों को किसी प्रकार का धोखा न हो और उन्हें आर्थिक दशा का ज्ञान हो सके ।

4. मण्डल का कार्य कई व्यापार को नियंत्रण में लाना व विकल्प व्यवहार में निगरानी रखना है जिससे अधिनियम के उद्देश्य का उल्लंघन न हो सके ।

प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम 1956 की उपलब्धियां :

(1) प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत सरकार एक शहर में एक ही विनिमय को स्वीकृति प्रदान करती है । इसका प्रभाव यह हुआ कि विनिमयों में प्रतियोगिता समाप्त हो गयी है और वर्तमान स्कन्ध बाजारों में अच्छी परिपाटी स्थापित होने लग गयी है और छोटे-छोटे असंवैधानिक बाजार जैसे कलकत्ता का कटनी बाजार व बम्बई का ग्रे बाजार समाप्त हो गये हैं ।

§7§ विनिमय के नियम को स्वीकार करते समय सरकार इस बात की चेष्ठा करती है । समाशोधनगृह स्थापित किया जाये, समय के घण्टे निश्चित हों, प्रसंविदें की शर्तें उचित हो, सदस्यों के व्यापार करने की सीमा हो, प्रतिभूतियों के न्यूनतम व अधिकतम मूल्य निश्चित हों, झगड़ों का निपटारा पंचायत से हो आदि इन सबका प्रभाव होता है कि विनिमय की क्रियाएं प्रमाणित हो जाती है और मतभेद होने या धोखा खाने की संभावनाएं कम हो जाती हैं ।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम ने §1§ सारे भारत के विनिमयों के कार्यों व विधियों में एकरूपता लादी है, §2§ कुछ सीमा तक अवांछित व्यक्तियों को सदस्य बनने से रोक दिया है । §3§ अवांछित व्यवहारों पर भी रोक लगा दी है तथा §4§ सट्टे पर भी कुछ प्रतिबन्ध लग गया है ।

§6§ कम्पनी अधिनियम 1956

संसार के लगभग सभी उद्योग प्रधान देशों को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । ये कम्पनियां मानव उपलब्धियों का एक सर्वोत्तम नमूना है।

कम्पनी ने भारतीय अर्थव्यवस्था एवं व्यापार को वे नूतन तथा विविध आयाम उपलब्ध किये हैं और कर रही है जिन्होंने भारत को दुनियां के सात औद्योगिक देशों मे एक देश के रूप में प्रतिष्ठित करवा दी है । ऐसे महत्वपूर्ण व्यवसायिक प्रणाली को प्रभावी बनाने के लिए प्रत्येक राष्ट्र में कानून के द्वारा नियंत्रण रखा जाना आवश्यक समझा गया है । हमारे देश की कम्पनियों का निर्माण प्रबन्ध एवं प्रशासन सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवस्था का नियमन एवं नियंत्रण भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 द्वारा किया जाता है । अन्य देशों की भांति इस कानून की भी दोहरी भूमिका है वैधानिक और सामाजिक । इसके सामाजिक पहलू के अन्तर्गत यह समाज के प्रति प्रबन्धकों के आचार संहिता विकसित करने का प्रयास करता है । दूसरी ओर इस कानून के माध्यम से सरकार देश की अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करती है एवं कम्पनी में निहित विभिन्न हितों का समन्वय करती है ।

भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956

कम्पनियों के निर्माण प्रबन्ध एवं प्रशासन के लिए प्रायः सभी देशों में कम्पनी अधिनियमों का चलन है । भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956

भारत के कम्पनी व्यवसाय पर नियंत्रण करने वाला वह व्यापक कानून है जिसमें 658 धाराओं एवं 12 अनुसूचितयों का समावेश है । यही नही अपितु कम्पनी व्यवसाय पर नियंत्रण के लिए धारा 643 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तीन परिशिष्टों और 160 फार्मों सहित 361 कोर्ट नियमों का भी निर्माण किया गया है । धारा 641 एवं 642 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने कम्पनियों के विषय में सामान्य नियमों एवं फार्मों को निर्धारित किया है जिसमें समय-समय पर संशोधन किये जाते रहते है इनके अलावा कम्पनी प्रशासन बोर्ड के परामर्श पर केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अनेक विज्ञप्तियाँ भी जारी करती है । कुल मिलाकर ये सब कम्पनियों के निर्माण, प्रबन्ध एवं प्रशासन के प्रत्येक पहलू का अत्यन्त सूक्ष्मता से नियं-त्रण एवं निर्देशन करते हैं । इसीलिए प्रायः यह कहा जाने लगा है कि इतनी अधिक धाराओं, उपधाराओं, परिशिष्टों, नियमों, उपनियमों निर्धारित फार्मों एवं समय-समय पर जारी की गयी विज्ञप्तियों की अधि-कता के कारण कम्पनियों का संचालन एवं प्रशासन अब अत्यन्त जटिल हो गया है । देश में शायद ही ऐसा कोई साहसी व्यक्ति हो जो इस बात का दावा करे कि उसने इस कानूनी चक्रव्यूह को पूरी तरह समझ लिया है ।

भाभा समिति के सुझावों पर सन् 1956 में नवीन कम्पनी अधि-नियम का निर्माण हुआ इस अधिनियम में कम्पनियों के संचालन एवं प्रबन्ध सम्बन्धी पहलुओं के साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक पहलुओं का विशेष ध्यान रखा गया, ताकि नवीन कम्पनी अधिनियम को समय की मांग के

अनुसार सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से भी अधिक उपयोगी बनाया जा सके । सुधार की यह प्रक्रिया कम्पनी अधिनियम में किए जाने वाले संशोधन के द्वारा सदैव निरन्तर सक्रिय रही है । इस पेचीदा एवं व्यापक अधिनियम ने कम्पनी के प्रबन्ध तथा संचालन में उत्पन्न तथा व्याप्त दोषों को और कम्पनियों में कुछ व्यक्तियों अथवा इनके गुटों द्वारा हुए आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को कहाँ तक दूर किया है, यह एक विवादास्पद विषय हो सकता है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि नवीन कम्पनी अधिनियम ने न्यायोचित एवं सम्यक परम्पराओं को जन्म देने का प्रयत्न अवश्य किया है । प्रबन्ध संचालकों, प्रबन्धकों, कोषाध्यक्षों, एवं सचिवों आदि की नियुक्ति उनके कार्यकाल, पारिश्रमिक तथा वित्तीय अधिकारों के विषय में अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये है । इसी प्रकार स्थगित अंशों के निर्गमन को समाप्त करके असमानुपातिक मताधिकारों को भी समाप्त कर दिया है, क्योंकि इसके आधार पर प्रवर्तक प्रबन्धक एवं संचालक कम्पनियों में अपेक्षाकृत कम पूंजी का विनियोग करके भी अधिक मताधिकार प्राप्त करने में सफल हो जाते थे । और कम्पनी का संचालन सामान्य हितों की अपेक्षा करते हुए अपने निजी हितों के अनुसार कर सकते थे । अन्तर कम्पनी विनियोग व अन्तर कम्पनी ऋणों को सीमित कर दिया गया है । संचालकों के अधिकारों पर भी प्रतिबन्ध लगाए गए है ।

पटेल समिति के सुझाव पर भारत सरकार द्वारा 324 के अन्तर्गत सूती वस्त्र, चीनी सीमेण्ट, जूट एवं कागज उद्योग में प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली

को समाप्त करने का निश्चय किया गया । बीमा एवं बैंकिंग कम्पनियों में प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली प्रतिबन्धित थी । अन्ततः कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1969 के द्वारा भारत सरकार ने 3 अप्रैल सन् 1970 से प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली को सदा के लिए समाप्त कर दिया । उसके बाद कम्पनियों ने प्रबन्ध के अन्य प्रारूप स्वीकार कर लिया है जैसे : संचालक मण्डल, अथवा प्रबन्ध संचालक द्वारा कम्पनी को प्रबन्ध का प्रारूप । वर्तमान में यह अनुभव किया जाने लगा है कि कुछ प्रबन्ध अभिकर्ता मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली के उन्मूलन के बाद से कम्पनियों के सलाहकार बन गये हैं और परामर्श सेवाओं द्वारा उन्हीं कम्पनियों से ऊँचे शुल्क वसूल कर रहे हैं । इस प्रकार की अनियमितताओं एवं कमियों को दूर करने के उद्देश्य से भारत सरकार कम्पनी कानून में पुनः संशोधन करने का विचार कर रही है कम्पनी कानून ने केन्द्रीय सरकार के अधिकारों को बहुत व्यापक बना दिया है तथा इस बात की भी व्यवस्था कर दी है कि आवश्यक होने पर उसके प्रबन्ध का दायित्व केन्द्रीय सरकार ले सके । यही नही अपितु धारा 369 के आधीन भारत सरकार जनहित को ध्यान में रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर किसी कम्पनी अथवा किन्ही कम्पनियों के एकीकरण अथवा संविलियन के लिए आदेश दे सकती है । इसी प्रकार कम्पनियों के अंतिम वार्षिक लेखों को तैयार करने और उनके अंकेक्षण के विषय में अनेक व्यवस्थाओं तथा प्रतिबन्धों का भी प्रावधान किया गया है । एक आदेश द्वारा सरकार ने कम्पनियों द्वारा एक मात्र विक्रय प्रतिनिधि की नियुक्ति पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया

है ।[65] सरकार संचालकों द्वारा नियंत्रित की जाने वाली कम्पनियों की संख्या में कमी करने पर भी विचार कर रही है । वर्तमान कम्पनी कानून द्वारा कम्पनी के नियंत्रण को सुविधा की दृष्टि से पांच भागों में बांटा जा सकता है ।

1. समामेलन एवं रजिस्ट्रीकरण
2. अंश निर्गमन एवं पूंजी नियंत्रण
3. प्रबन्ध एवं प्रशासन
4. समापन
5. सूचनायें एवं आंकड़े

इन्हीं के अन्तर्गत कम्पनी के निर्माण, संचालन एवं प्रशासन का नियमन होता है ।

कम्पनी अधिनियम का प्रशासन

कम्पनी अधिनियम के प्रशासन हेतु देश में अग्रांकित चार स्तरीय व्यवस्थाएं की गयी है :-

1. कम्पनी मामलों का विभाग :-

कम्पनी अधिनियम को लागू करना, इस सम्बन्ध मे उत्पन्न कठि-

---

65. इकोनामिक टाइम्स 16 अगस्त, 1977

नाइयों को दूर करना तथा इस अधिनियम में केन्द्रीय सरकार के दिये गये अधिकारों का उपयोग करने अथवा उन्हें अन्य एजेन्सियों को सौंपने का परामर्श देना । इस विभाग के मुख्य कार्य है । यह विभाग न केवल अधिनियम से सम्बद्ध कार्यों को भी करता है । बल्कि भारत में कम्पनियों के संचालन से सम्बन्धित विविध सूचनाएं भी एकत्रित करते हैं तथा इनके कुशल संचालन एवं प्रबन्ध के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण शोध की व्यवस्था भी करता है । यह विभाग प्रतिवर्ष कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 638 के आधीन, अधिनियम की कार्यपद्धति और प्रशासन पर संसद के दोनों सदनों के रिपोर्ट भी प्रस्तुत करता है । कम्पनी विधिमण्डल तथा कम्पनी विधान परामर्श दात्री समिति इसी के आधीन तथा इसी के निर्देशन तथा नियंत्रण में संगठित व संचालित की जाती है । कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं का कम्पनी अर्थों में पालन कर सके, इसके लिए यह आवश्यक बना दिया गया है कि प्रत्येक कम्पनी योग्यता प्राप्त कम्पनी सचिवों की नियुक्ति करे । कम्पनी मामलों का विभाग इस दृष्टि से कम्पनी सचिव संस्थान पर निरीक्षणात्मक नियंत्रण रखता है । इसके अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम 1956 के आधीन केन्द्रीय सरकार के मंत्रालय के आधीन यह विभाग उन अधिकारों का भी प्रयोग करता है जो अधिनियम में इसके लिए सुरक्षित है और जिन्हें इसने अन्य एजेन्सियों जैसे कम्पनी विधि मण्डल को नही सौंपे हैं ।

2. कम्पनी विधि मण्डल :-

कम्पनी विधि मण्डल जिसे पहले कम्पनी विधान प्रशासन मंडल कहते थे, कम्पनी अधिनियम के प्रशासन की मुख्य ईकाई है । कम्पनी अधिनियम के प्रशासन में इसे उपर्युक्त वर्णित कार्यों को छोड़कर केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र के लिए आरक्षित अधिकार प्राप्त हैं ।

कम्पनी विधि मण्डल का गठन सन् 1963 में कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 1963 के आधीन किया गया था । इनका उद्देश्य उन समस्त कार्यों को करना तथा उन समस्त दायित्वों को निभाना है जो कम्पनी अधिनियम 1956 के या किसी अन्य अधिनियम के आधीन, कम्पनी के प्रशासन के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सौंपे गये है । इन सारे सदस्यों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में आवश्यक विज्ञप्ति प्रकाशित करके की जाती है । इसी सदस्यों में से एक सदस्य को केन्द्रीय सरकार आवश्यक विज्ञप्ति जारी करके मण्डल का अध्यक्ष नियुक्त करती है कम्पनी विधि मण्डल द्वारा किया गया कोई भी कार्य केवल इस आधार पर व्यर्थ या शून्य नहीं माना जाता है कि विधि मण्डल का संगठन ठीक ढंग से नहीं किया गया है । 1965 में कम्पना अधिनियम में एक नये परि-वर्तन के अनुसार, यह मण्डल केन्द्रीय सरकार की अनुमति से अपने आपको प्राप्त अधिकारों में से सभी को या कुछ अधिकारों को कुछ सीमाओं व प्रति-बन्धों के साथ अपने अध्यक्ष को या किसी सदस्य को या मुख्य अधिकारी को

सौंप सकता है । अधिकार सौंपने का यह कार्य लिखकर किया जाना आवश्यक है । इस प्रकार से अधिकार प्राप्त अध्यक्ष, सदस्य, या मुख्य अधिकारी द्वारा किया गया कोई भी नियमानुकूल कार्य का दिया गया नियमानुकूल आदेश मण्डल द्वारा किया गया कार्य या दिया गया आदेश माना जाता है । अपने अधिकारों के प्रयोग में कम्पनी विधि मण्डल केन्द्रीय सरकार के आधीन रह कर कार्य करता है ।

कम्पनी विधि मण्डल में कार्य को आसान बनाने के लिए सरकार ने कम्पनी अधिनियम के प्रशासन का कार्य चार क्षेत्रीय संचालकों को सौंप रखा है । ये क्षेत्रीय संचालक बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा कानपुर में कार्य करते है । केन्द्रीय सरकार की पूर्णानुमति से बोर्ड का एक या अधिक बैचों में बांटा जा सकता है ।

कम्पनी के रजिस्ट्रार

अधिनियम के सामान्य संचालन एवं प्रशासन को देखने के लिए कम्पनी अधिनियम में रजिस्ट्रारों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है के रजिस्ट्रार केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते है और कम्पनी मामलों के आधीन काम करते है । प्रत्येक राज्य में अलग-अलग रजिस्ट्रार अतिरिक्त रजिस्ट्रार, संयुक्त एवं उपरजिस्ट्रार, भी नियुक्त किये जाते है 1956 के पहले जब कम्पनी मामलों का कोई अलग स्वतंत्र विभाग नहीं होता था तब कम्पनी अधिनियम के प्रशासन का सारा भार इन्ही रजिस्ट्रारों के कन्धों पर आता है ।

सुधार के सुझाव

विद्वानों का मत है कि व्यापक कानून और प्रशासनिक नियमनों के फलस्वरूप कम्पनियों की स्वायत्तता और बदली हुई स्थिति के अनुरूप शीघ्रता से अपने को ढालने के लिए आवश्यक लोचशीलता नष्ट हो गयी है । अपेक्षाकृत साधारण से मामलों पर निर्णय लेने के लिए भी सरकारी स्वीकृति आवश्यक होती है । फलस्वरूप कम्पनियों का काम करने का वेग और विकास धीमा पड़ चुका है । इसके लिए आवश्यक प्रशासकीय कार्यों पर भारी मात्रा में सरकारी खर्चा होता है और इसमें भी अधिकांश काम अनुत्पादक है तथा भारत जैसे गरीब देश को यह अनुत्पादक व्यय बहुत मंहगा पड़ता है । यह उचित समय है जब ऐसे नियमों के कारण सरकार की कितनी विशाल धनराशि बर्बाद हो रही है, जिसके अन्तर्गत मामूली बातों के लिए सरकारी स्वीकृति आवश्यक है, तथा समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य देश क्यों रास्ता अपना रहे है ।

विरोधाभास यह है कि कम्पनी कानूनों और नियमों की दीर्घसूत्रता, जिसका बदलती हुई स्थितियों से तालमेल बनाए रखने के आधार पर समर्थन किया जाता है, का प्रभाव यह पड़ता है कि कम्पनियों की लोचशीलता खत्म हो जाती है जो कि उनको बदलती स्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने के लिए आवश्यक है । नई स्थितियों को निपटाने के अपने हर प्रयास में कम्पनी प्रबन्धक अपने आपको कानून के किसी अलचिले प्रावधान के सामने खड़ा पाते हैं । जब तक वे प्राधिकारी परिवर्तन की वास्त-

व्यवहारों से प्रभावित नहीं होता जो निजी व्यापारिक उपमों को प्रभावित करते हैं।"[76]

उपरोक्त परिभाषा का अवलोकन करने से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि परिभाषा में दो बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया है प्रथम आर्थिक शक्ति जिसका अभिप्राय यह है कि सदस्यों में सामूहिक रूप से सहकारिता केमाध्यम से कार्य करने पर ये आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हैं और महाजनों व साहूकारों की चंगुल से मुक्त होते हैं। द्वितीय परम्पराओं जिसका आशय यह है कि सहकारी विपणन की व्यवसायिक क्रियाएं इस प्रकार कीहोती है जिसमें कि सभी सदस्यों के सामूहिक हित पर विशेष ध्यान दिया जाता है अर्थात लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता दिया जाता है और उन्हें शोषण की प्रवृत्ति सेबचाया जाता है।

सहकारी विपणन समितियां किसान की उपज पैदा करने एवं तैयार करनेके सम्बन्ध में शिक्षा देतीहै बजार केलिए उपज की पर्याप्त मात्रा एकत्र करती है जिससेकि वस्तुओं का कुशल श्रेणीकरण संभव हो सके। इस प्रकार ये किसानों को निर्यात बाजार केसम्पर्क में लाती है।"[77]

76-बेकन एवं सचार्स, एकोनामिक आफ क्वापरेटिव मार्केटिंग, 1937 पृष्ठ 3

77-शाही कृषि उद्योग, बाजार व्यवस्था, पृष्ठ 524

फिजूलखर्ची भी एक प्रमुख कारण है । यह खर्च ऐसा है जिसका उत्पादन सेकोई सम्बन्ध नहीं है और प्रमुखत: उद्योगपतियों और प्रबन्धकों के भोग विलास तथा स्तुति प्रशंसा में खर्च होता है । कम्पनियों के वार्षिक बैठकों की कार्यवाही कारखाने के अध्यक्ष या प्रबन्ध संचालक के हितों के साथ अविस्तार छपती है । इसके अलावा कम्पनियों के खर्च पर अनेक सभा सम्मेलन, संगोष्ठी वार्ता, स्वागत सत्कार और अभिनन्दनों का भी आयोजन होता है उत्पादकता के साथ जिसका कोई सीधा रिश्ता नही है । अनेक कम्पनियां जो वर्ष के अन्त में बही खाते में प्रतिवर्ष बड़ा हुआ घाटा दिखाती है उनकी बहियों एंव खातों में भी फिजूलखर्ची में बेरोकटोक बढ़ोत्तरी दिखाई जाती है । कम्पनी के उत्पादन की विक्रय एजेन्सियां एवं कच्चे माल एवं मशीनरी की खरीद पर दलालो की भारी रकमें अपने नाते रिश्तेदारो को वितरित की जाती है । यह सारा खर्चा कारखाने के लागत को बढ़ाता है और उत्पादित वस्तु का मूल्य बढ़ाता है । इसके साथ ही कम्पनी के लाभ को कम करता है अथवा भाड़े में वृद्धि करता है ।

यह स्थिति अवांछनीय है और उद्योगपति अथवा प्रबन्धकों की सामाजिक दायित्वहीनता की ऐसी दुष्प्रवृत्ति है जो उत्पादकता का मूल्य ह्रास करती है और आर्थिक हालत को सस्ता बनाती है । कई उद्योगपति इन विषयों मे यथेष्ट माहिर है और वे कारखानों की लाभ उपार्जन क्षमता को चूमकर अपनी तिजोरियां भर लेते हैं पर संस्थागत वित्तीय सहायता तथा शेयरहोल्डरों की पूंजी को घाटे के जाल में फंसा देते हैं । देश के कई

बड़े और आवश्यक सामग्री के उत्पादकों का स्वास्थ्य खराब है तो इसका असली कारण आर्थिक नहीं बल्कि मालिकों एवं प्रबन्धकों की भ्रष्टता है । अन्यथा कोई कारण नहीं कि देश में सीमेन्ट, कपड़ा, चीनी, वनस्पति जैसे भारी मांग और खपत के उत्पादक कारखाने घाटे में चलें या ऐसी हालत में ढ़केल दिये जायें कि असाध्य बीमारियां बताकर बन्द हो जायें ।

इसका कारण यह है कि कम्पनी के प्रबन्धकों ने कम उत्पादन करके अथवा कारखानों को बन्द करके भारी मुनाफा और वह भी काले धन के रूप में एकत्र करने का हुनर हासिल कर रखा है । देश में ऐसी दुर्व्यवस्था वाले कारखानों की जांच की जाय तो अनेक सनसनीखेज रहस्यों का पता लगेगा । सरकार ने उत्पादन को चालू रखने की दृष्टि से बन्द एवं खस्ता हालत की सूती वस्त्र के कारखानों को अपने नियंत्रण में लेने की जो विधि अपनायी थी, उसके सुपरिणाम इस लिए नही मिल रहे है कि कारखाना मालिकों ने कारखाने के नाम पर कबाड़खाने सौंपे हैं । अतः आवश्यकता इस बातकी है कि कारखानों के स्वास्थ्य की तथा उसके वार्षिक लेखे जोखे की तथा बेरहमी तथा बेईमानी से खर्च की गयी धनराशि की व्यापक और कठोर जांच हो तथा इस अपराध, षड्यंत्र, में शामिल मालिकों प्रबन्धकों तथा अफसरों के विरुद्ध कठोकर कार्यवाही की जाये । आखिर में कम्पनियों में अधिकांश पूंजी राजकीय एवं सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं की तथा शेयर-होल्डरों की होती है तथा संचालक मण्डल या प्रबन्धकों को इस राष्ट्रीय अमानत के अपव्यय अथवा जालसाजी द्वारा अपनी तिजोरी भरने की कार्य-वाही को कठोरता से रोका जाना चाहिए ।

अन्त में कम्पनियों की फिजूलखर्ची को रोकने के लिए संशोधन या परिवर्तन करके कम्पनी रिपोर्टों और अध्यक्षों के तथा पांच तारों के होटलों के अपवास एवं भोजन व दावतों के आयोजनों पर अंकुश लगा देना चाहिए । घाटों पर चलने वाली कम्पनियों के हिसाब किताब की पुख्ता जांच होनी चाहिए और कम्पनी के संचालक मण्डल खरीद व बिक्री की एजेन्सी व कमीशन के लाभकारी पदों पर एक ही परिवार व सगे सम्बन्धियों के वर्चस्व एवं घुसपैठ को भी कानूनी बन्दिश द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए । जिन लोगों की आदतें और स्वभाव बेहद बिगड़े हुए है और जिन्होंने कार्यक्षमता के स्थान पर हाथ की सफाई से अर्जित करने की कुशलता हासिल कर रखी है, उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए अन्य कदम भी उठाने चाहिए । उसके लिए हमें कितनी बार कम्पनी कानून में संशोधन क्यों न करना पड़े । कम्पनियों का सामाजिक नियंत्रण समय की मांग है ।

सन् 1977 में सरकार ने कम्पनी अधिनियम के व्यापक प्रावधानों द्वारा व्यवसाय पर कड़ा नियंत्रण करने का प्रयास किया । इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा नियुक्त सच्चर समिति की रिपोर्ट भी 31 अगस्त 1978 को संसद में प्रस्तुत की गयी । समिति ने लगभग आठ सौ पृष्ठों की रिपोर्ट में कम्पनियों के प्रबन्ध में श्रमिक की भागीदारी, स्वतंत्र कम्पनी बोर्ड के गठन, कम्पनियों द्वारा अन्य कम्पनियों में पूंजी लगाने पर रोक जैसी कई सिफारिशों के साथ-साथ गुमराह करने वाले विज्ञापनों से उपभो-

क्ताओं को बचाने के लिए कानून बनाने कोकहा है । इस सम्बन्ध में एम. आर. टी. पी. कानून में ही एक नया अध्याय जोड़ने की भी बात कही गयी ।

इस सिफारिश के अनुसार जब उपभोक्ता किसी भी उस गलत विज्ञापन के लिए मुआवजे का दावा हेतु एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार आयोग में जा सकेगा जिसमें किसी भी प्रकार के गलत सूचना अथवा वस्तु की खूबियों को गलत ढंग से पेश किया गया हो । इस सिफारिश के अनुसार उपभोक्ता किसी वस्तु की भी अधिक कीमतों को चुनौती देने के लिए भी आयोग में जा सकेगा ।

समिति ने उन सभी कम्पनियों के प्रबन्ध में श्रमिकों के भागीदारी की सिफारिश की है जिसमें श्रमिकों की संख्या एक हजार अथवा इससे अधिक है । परंतु इसके लिए श्रमिकों को गुप्त मतदान से निर्णय करना होगा । यदि श्रमिक सामान्य बहुमत से ऐसा चाहेंगे तभी यह प्रणाली लागू की जायगी । समिति ने एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यापार कानून के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों की सीमा 20 करोड़ रुपये की सिफारिश की है । बड़े औद्योगिक घरानों को तोड़ने अथवा उनके प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में सच्चर समिति की रिपोर्ट में कोई जिक्र नहीं किया गया है ।

§7§ व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम 1958

भारत में ट्रेडमार्क के पंजीकरण हेतु इस अधिनियम को पारित किया गया । किसी भी निर्माता द्वारा अपनी वस्तु को पहचान एवं उसका नाम याद रखने के लिये कोई चिन्ह या नाम, शब्द दिया जाय या इसके सम्मिश्रण से कोई चिन्ह या नाम बनाकर अपनी वस्तु पर छाप देता है तो उसको ब्रांड कहा जाता है, परन्तु जब इसी ब्रांड का पंजीकरण इस अधिनियम के अन्तर्गत करा लिया जाता है तो वही ब्रांड ट्रेडमार्क बन जाती है । इससे निर्माता या विक्रेता को लाभ होता है । इस प्रकार के ट्रेड मार्क की नकल कोई और नहीं कर सकता इसके प्रयोग करने का एक मात्र अधिकार पंजीकरण कराने वाले को मिल जाता है ।

इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेड मार्क के पंजीकरण का कार्य पेटेन्ट डिजायन्स, ट्रेडमार्क महानिदेशक, बम्बई के द्वारा किया जाता है जो इस अधिनियम के अन्तर्गत ट्रेडमार्क रजिस्ट्रार कहलाता है इसकी तीन शाखा कलकत्ता, मद्रास, व नई दिल्ली में है ।[65]

§8§ एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम 1969:

भारतीय संविधान में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार राज्य को अपनी नीतियों का निर्धारण करते समय यह सुनिश्चित

---

65 शर्मा एवं जैन " बाजार व्यवस्था" साहित्य भवन आगरा, सन् 1979, पृष्ठ 414

करना होगा कि आर्थिक प्रणाली के क्रियान्वयन के फलस्वरूप धन और उत्पत्ति के साधनों का जनहित के बिरूद्ध केन्द्रीकरण न हो । राज्य के इस संवैधानिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्वति अधिनियम 1969 पारित किया गया जिसे और प्रभावी बनाने के लिये अधिनियम में 1982 और 1984 में व्यापक संशोधन किये गये हैं । यह अधिनियम आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारिक प्रतिबन्धात्मक और अनुचित व्यापारिक नीतियों के नियंत्रण हेतु एक बृहत वैधानिक अस्त्र है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य इस बात को सुनिश्चित करता है कि देश की आर्थिक प्रणाली सामान्य हितों के बिरूद्ध आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण नहीं करती है और ऐसी एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्वत्तियों को रोकना है जो जनहित के बिरूद्ध है ।

अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण देश मे लागू होता है और सार्वजनिक उपक्रमों सरकार द्वारा अपने प्रबन्ध में ले ली गई अन्य इकाइयों, वित्तीय संस्थानों एवं श्रमिकों द्वारा स्वयं अपने हितों के रक्षार्थ "स्थापित संघो अथवा श्रमसंघों को छोड़कर सभी व्यवसायिक इकाइयों पर लागू होता है । इस अधिनियम के प्राविधान मुख्य रूप से विस्तारों, सम्मिश्रणों, संविलियनों तथा कुछ विशेष श्रेणी के उपक्रमों मे संचालकों की नियुक्ति के नियमन किसी विशिष्ट श्रेणी की विद्यमान इकाई से परस्पर सम्बन्ध बनाने के उद्देश्य से स्थापित की जाने वाली किसी नयी व्यवसायिक

इकाई के नियमन तथा जनहित में हानिकारक एकाधिकारी प्रतिबन्धात्मक एवं अनुचित व्यवसायिक नीतियों के नियंत्रण से सम्बन्धित है ।

1- आयोग की स्थापना

अधिनियम में दी गई व्यवस्थाओं का पालन करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा एक आयोग स्थापित किया गया है । इस आयोग का एक अध्यक्ष जिसमें सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की योग्यता हो, तथा कम से कम दो और अधिक से अधिक आठ सदस्य हो सकते हैं । आयोग के सदस्य व्यापार, उद्योग, कानून, अर्थशास्त्र, लेखांकन एवं सार्वजनिक प्रशासन आदि के क्षेत्रों के निपुण व्यक्ति होने चाहिये आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है । आयोग के सदस्यों का कार्यकाल अधिक से अधिक पांच वर्ष तक का हो सकता है । जिसको अगले पांच वर्ष तक के लिए बढ़ाया जा सकता है । लेकिन कोई भी सदस्य पैसठ वर्ष की उम्र तक ही आयोग के सदस्य के रूप में कार्य कर सकता है ।

आयोग को एकाधिकारात्मक, निरोधात्मक एवं अनुचित व्यवसायिक आचरणों की जांच करने का अधिकार प्रदान किया गया है । इस अधिनियम की धारा 10 के अनुसार यह आयोग स्वेच्छा से सरकार के अनुरोध पर, जनता अथवा उपभोक्ता की शिकायतों पर तथा रजिस्ट्रार, प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियों के आग्रह पर किसी भी प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक कार्य की जांच का आदेश दे सकता है ।

आयोग केन्द्र सरकार के निर्देश अथवा अपनी स्वयं की जानकारी के आधार पर एकाधिकारात्मक आचरण की जांच बिना किसी अन्य प्रक्रिया के आरम्भ कर सकता है, किसी व्यवसायिक अथवा उपभोक्ता संगठन से प्राप्त निरोधात्मक आचरण सम्बन्धी शिकायतों के संदर्भ मे आयोग सम्बद्ध पक्षों को उपस्थित होने का आदेश जारी करने के पहले जांच के महासंचालक को इस बारे में प्रारम्भिक जांच करने का आदेश दे सकता है । इस अधिनियम के अन्तर्गत जांच के लिए आयोग को गवाहों को बुलाने व शपथ दिलाने साक्ष्यों को प्रस्तुत करने, शपथ पत्रों पर साक्ष्य प्राप्त करने एवं किसी न्यायालय अथवा कार्यालय के सार्वजनिक अभिलेखों को मंगाने के सम्बन्ध में किसी न्यायालय के समक्ष अधिकार प्राप्त है । आयोग के समक्ष सम्पन्न कार्यवाही न्यायिक कार्यवाही होती है और आयोग को दीवानी अदालत माना जाता है ।

आयोग किसी भी व्यक्ति से ऐसी पुस्तकों, लेखों या अन्य अभिलेखों को जो उसके अधिकार में हो, आयोग द्वारा प्राधिकृत किसी भी अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कह सकता है । जिसकी इस अधिनियम के अन्तर्गत निरोधात्मक अथवा प्रतिबन्धात्मक व्यवसायिक आचरण की जांच के लिए आवश्यकता हो । आयोग के द्वारा किसी व्यक्ति को इस अधिनियम की आवश्यकतानुसार किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किये जा रहे व्यापार के सम्बन्ध में ऐसी सूचनायें भी देने के आदेश दिये जा सकते हैं जो ऐसे व्यक्ति के पास हो ।

किसी एकाधिकारात्मक, निरोधात्मक अथवा अनुचित व्यवसायिक आचरण की जांच के दौरान आयोग को ऐसे आचरण से सम्बन्धित व्यक्ति

अथवा उपक्रम के कार्यों पर रोक लगाने के लिए अस्थायी निषेधाज्ञा जारी करने का भी अधिकार प्राप्त है । प्रतिबन्धात्मक आचरण के कारण हानि या क्षति होने की दशा में आयोग को क्षतिपूर्ति का आदेश देने सम्बन्धी कोई अधिकार नहीं प्राप्त था, किन्तु 1984 के संशोधन अधिनियम के द्वारा आयोग को इस प्रकार अधिकार भी प्रदान किया गया है ।

§2§ <u>एकाधिकारिक एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों में भेद</u> :

यह अधिनियम एकाधिकारी व्यापार व्यवहारों एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों में अन्तर करता है । एकाधिकारी व्यापार व्यवहारों में प्रभावी फर्म के व्यवहारों को सम्मिलित किया गया है । इनमें फर्म के वैयक्तिक व्यवहार या तीन फार्मों तक के समूह के अल्पजनाधिकार का संकेत मिलता है क्योंकि फर्म का या फर्म समूह का बाजार उत्पादन में श्रेष्ठ भाग होता है । प्रतिबन्धात्मक व्यापार में दो या दो से अधिक फर्मों द्वारा एक समझौता किया जाता है जिसके अनुसार आपसी प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है । ऐसे समझौता में किसी फर्म का बाजार उत्पादन में प्रधान भाग होना अनिवार्य शर्त नहीं । एकाधिकारी व्यवहार और प्रतिबन्धात्मक व्यवहार में एकाधिकार आयोग को केवल सिफारिश करने का अधिकार दिये गये हैं और यह बात सरकार पर निर्भर है कि वह इसकी सिफारिश को स्वीकार करे या न करें । अभी तक जो प्रधान मामले इस आयोग को सौंपे गये हैं उन्हें आयोग के सदस्यों में मतभेद होने के कारण नहीं निपटाया जा सका है । प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध मे एकाधिकार आयोग को न्यायालय के अधिकार दिये गये हैं । परन्तु इसे प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों

में ऐसे प्रत्येक मामले की अलग-अलग जांच करनी होगी । अत: यह बिल्कुल संभव है कि एक प्रतिबन्धात्मक व्यवहार एक उद्योग में तो कानूनी रूप से बन्द कर दिया जाये, परन्तु वह किसी दूसरे उद्योग में चलता रहे क्यों कि संभवत: रजिस्ट्रार ने इस मामले को आयोग के पास नहीं भेजा हो ।

3. एकाधिकारी व्यापारिक प्रवृत्तियों पर रोक :

यदि कोई एकाधिकारी ऐसा कार्य करता है जिससे प्रतिस्पर्धा कम करती है, बाजार में वस्तुओं का अभाव उत्पन्न होता है, वस्तुओं या सेवाओं के गुण में गिरावट आती है, वस्तुओं के मूल्यों में अभिवृद्धि करती है, वस्तु तथा सेवा की उत्पादन लागत, वितरण या पूर्ति की लागत में अन्यायोचित ढंग से वृद्धि करती है तब एकाधिकार आयोग की सिफारिशें पर सरकार द्वारा इस पर रोक लगायी जा सकती है ।

4. आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण

एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम 1969 में आर्थिक शक्ति को रोकने के उद्देश्य से अनेंक प्रभावी प्राविधान दिये गयें हैं । ये प्राविधान तीन मुख्य वर्गों में दिये गये हैं । प्रथम वर्ग में ऐसे प्राविधान है जिनका सम्बन्ध उन तत्वों से है जो जनहित के विरूद्ध आर्थिक शक्ति केन्द्रीयकरण के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं । द्वितीय वर्ग में उन प्राविधानों का वर्णन है जो केन्द्र सरकार को ऐसे केन्द्रीयकरण को तोड़ने का अधिकार प्रदान करते हैं । तृतीय वर्ग में ऐसे मामलों का उल्लेख

है जो केन्द्र सरकार अथवा एकाधिकार आयोग द्वारा प्रथम एवं द्वितीय वर्ग में प्राप्त अधिकारों के आधार पर निपटाये जायेगें ।

अधिनियम के तृतीय अध्याय के भाग "अ" में ऐसे प्राविधान दिये गये हैं जो केन्द्र सरकार को उन कारकों को नियंत्रित करने का अधिकार प्रदान करते हैं जो सामान्य जनहित के विरूद्ध आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं । ये प्राविधान ऐसे उपक्रम के लिए लागू हो सकते हैं जो अधिनियम की धारा 20 (अ) अथवा धारा 20 (ब) के अन्तर्गत आते हैं । ऐसे सभी उपक्रम जिसकी अपनी सम्बद्ध इकाइयों के साथ कुल सम्पत्तियाँ 20 करोड़ रूपये से अधिक हों धारा 20 (अ) के अन्तर्गत आते हैं जब कि ऐसी सभी इकाइयां जिनकी अपनी सम्बद्ध इकाइयों के साथ कुल परिसम्पत्तियां एक करोड़ रूपये से अधिक हों धारा 20 (ब) के अन्तर्गत आते हैं । अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार भाग (अ) के अन्तर्गत आने वाले सभी उपक्रमों के लिए ऐसे उपक्रम के रूप में पंजीकरण कराना अनिवार्य है । अधिनियम में प्राप्त अधिकारों का प्रयोग केन्द्र सरकार द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण न हो सके । इस उद्देश्य केन्द्र सरकार विद्यमान उपक्रमों के सारपूर्ण विस्तार, दो या दो से अधिक उद्योग के सम्मिश्रण अथवा संविलियन एक उपक्रम द्वारा किसी दूसरे उपक्रम के क्रय अथवा अधिग्रहण, तथा नये उपक्रमों के किसी विद्यमान उपक्रम से सम्बन्धित होने जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर नियंत्रण रखती है ।

अधिनियम की धारा 21 के अनुसार नयी पूँजी निर्गमित कर अथवा नई मशीनों के लगाने अथवा किसी अन्य विधि से किसी उपक्रम का सारपूर्ण

विस्तार केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता । सारपूर्ण विस्तार से आशय उद्योग अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले उपक्रमों में विस्तार के फलस्वरूप अनुमति प्राप्त क्षमता में 25 प्रतिशत या अधिक की वृद्धि अथवा प्रभावशाली उपक्रमों की दशा मे विस्तार के फलस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन, विपणन अथवा वितरण में 25 प्रतिशत या अधिक की वृद्धि से लगाया जाता है । विस्तार के किसी प्रस्ताव को कार्यक्रम देने से पहले सारपूर्ण विस्तार के इच्छुक उपक्रम के स्वामी द्वारा केन्द्र सरकार को निर्देशित स्वरूप में एक सूचना देनी होती है । ऐसी सूचना के साथ प्रस्तावित विस्तार की वित्त व्यवस्था का विवरण एवं इस तथ्य का स्पष्टीकरण की ऐसा विस्तार किसी अन्य उपक्रम या उपक्रमों से सम्बन्धित तो नहीं है । केन्द्र सरकार द्वारा ऐसी सूचना प्राप्त होने पर, यदि आवश्यक हो तो यह उपक्रम के स्वामी से ऐसा स्पष्टीकरण मांग सकती है कि प्रस्तावित विस्तार की वित्त व्यवस्था आर्थिक शक्ति की जनहित के विरूद्ध केन्द्रीयकरण में सहायक नहीं होगी । पूरी तरह संतुष्ट हो जाने पर केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे विस्तार की अनुमति प्रदान कर दी जाती है । यदि केन्द्र सरकार ऐसा समझती है कि विस्तार की अनुमति बिना और जांच के नहीं दी जा सकती तो इस प्रकार की जांच एवं अन्य विस्तृत विवरण जानने के लिए विस्तार का आवेदन एकाधिकार आयोग को सौंप दिया जाता है । आयोग की जांच रिपोर्ट प्राप्त हो जाने के बाद केन्द्र सरकार द्वारा ऐसा निर्णय लिया जाता है जो केन्द्र सरकार उचित समझे । केन्द्र सरकार की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद विस्तार की योजना अथवा इसकी वित्त व्यवस्था में

बिना सरकार की पुष्टि कराये कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।

अधिनियम की धारा 22 के अनुसार अधिनियम के तृतीय अध्याय के भाग "अ" के अन्तर्गत आने वाले उपक्रमों से सम्बद्ध होने की संभावना वाले किसी नये उपक्रम की स्थापना अथवा पहले से विद्यमान उपक्रम के साथ किसी इकाई को जोड़ने सम्बन्धी प्रस्तावों के लिए केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है । ऐसे उपक्रम जिन पर अधिनियम की धारा 20 (ब) के अन्तर्गत आने वाले उद्योग के लिये नये उपक्रम की स्थापना के लिए केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है । सरकार द्वारा ऐसी अनुमति प्रदान नहीं की जायेगी यदि नये उपक्रम द्वारा प्रस्तावित उत्पादन विद्यमान उपक्रम द्वारा उत्पादित अथवा वितरित की जाने वाली वस्तु या सेवा से भिन्न न हो । ऐसे किसी नये उपक्रम की स्थापना अथवा विद्यमान उपक्रम में नयी इकाई जोड़ने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के द्वारा केन्द्र सरकार को निर्देशित स्वरूप में आवेदन करना होता है । आवेदन में नये उपक्रम की अन्य उपक्रमों से परस्पर सम्बद्धता, नये उपक्रम द्वारा प्रस्तावित उत्पादन की मात्रा, नये उपक्रम की स्थापना के लिए वित्त व्यवस्था आदि से सम्बन्धित विवरण देने होते हैं ।[66] केन्द्र सरकार द्वारा आवेदन पत्र के विचार के क्रम में सम्बद्ध व्यक्ति अथवा अधिकारी से सरकार को इस बारे में संतुष्ट करने के लिये अन्य विवरण मांग सकती है कि प्रस्तावित वित्त व्यवस्था का परिणाम आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं होगा। यदि सरकार

---

66. जगदीश प्रकाश –राज्य एवं व्यवसाय, प्रकाशन प्रयाग पुस्तक भवन, पृष्ठ–92

इस दिशा में पूरी तरह संतुष्ट है तो नये उपक्रम की स्थापना को अनुमति प्रदान कर दी जाती है । यदि सरकार ऐसा समझती है कि आवेदन पत्र में कोई निर्णय बिना और अधिक जांच किये नहीं लिया जा सकता है तो उसके द्वारा एकाधिकार आयोग को आवेदन पत्र विचार हेतु भेज दिया जाता है । आयोग की जांच के बाद प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर ही केन्द्र सरकार द्वारा कोई निर्णय लिया जाता है । विभिन्न सम्बद्ध तथ्यों को ध्यान में रखते हुये यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई विशेष उद्योग बृहत राष्ट्रीय महत्त्व का है अथवा भारत के बाहर निर्यात के दृष्टिकोण से अथवा स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र में स्थापित होने वाले उद्योग के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार सारपूर्ण विस्तार एवं नये उपक्रम की स्थापना सम्बन्धी प्राविधानों से मुक्ति सम्बन्धी आदेश जारी कर सकती है ।

जनहित के विरूद्ध आर्थिक शक्ति या अधिकारों के केन्द्रीयकरण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से ही अधिनियम में दो या अधिक उपक्रमों के सम्मिश्रण, संविलय अथवा किसी उपक्रमों के अधिग्रहण तथा प्रबन्ध की सम्बद्धता को नियमित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्राप्त है । इन व्यवस्थाओं के अनुसार यदि दो या अधिक उपक्रमों का संविलयन अथवा किसी उपक्रम द्वारा अन्य उपक्रम के अधिग्रहण के फलस्वरूप कोई ऐसा उपक्रम अस्तित्व में आयेगा जिस पर इस अधिनियम की धारा 20 लागू होगी, तो ऐसे संविलियन अथवा अधिग्रहण की कोई योजना केन्द्र सरकार के स्वीकृति के बिना लागू नहीं की जा सकती है । इसी प्रकार दस से अधिक परस्पर सम्बद्ध उपक्रमों के संचालक को अन्य उपक्रम का संचालक नियुक्त करने के पहले

केन्द्र सरकार की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है ।

जनहित के विरूद्ध आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को तोड़ने के उद्देश्य से अधिनियम में केन्द्र सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह परस्पर सम्बद्ध उपक्रमों अथवा व्यवसाय के विभाजन सम्बन्धी आदेश भी जारी कर सकती है । यदि केन्द्र सरकार का यह मत है कि अधिनियम के भाग "अ" में आने वाला कोई उपक्रम ऐसी एकाधिकारिक या प्रतिबन्धित व्यापारिक क्रियाओं मे लिप्त है जो सामान्य हित के विरूद्ध है तो वह उपक्रम की सम्पत्तियों के किसी भाग की बिक्री अथवा उपक्रम के अमुक उपक्रमों में विभाजन के आदेश जारी कर सकती है । ऐसा कोई निर्देश केन्द्र सरकार द्वारा एकाधिकार आयोग को सौंपे गये मामलों के संदर्भ में प्राप्त प्रतिवेदन के आधार पर दिया जा सकता है । इस संदर्भ में आयोग के द्वारा विभाजन के तरीके एवं इस अवसर पर देय किसी क्षतिपूर्ति के बारे में भी सुझाव दिया जा सकता है ।

अधिनियम मे 1984 मे यह प्राविधान किया गया है कि यदि केन्द्र सरकार विभिन्न परस्पर सम्बद्ध उपक्रमों के सम्बन्ध में ऐसा सोचती है कि इस प्रकार की सम्बद्धता प्रधान उपक्रम के हित अथवा इसके भावी विकास के विरूद्ध है यह ऐसी सम्बद्धता स्वयं उस उद्योग विशेष के विकास के लिए बाधक है तो वह परस्पर सम्बद्धता के बिलगाव सम्बन्धी आदेश जारी कर सकती है ।

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धित व्यवसायिक पद्धति अधिनियम द्वारा केन्द्र सरकार तथा एकाधिकार आयोग को व्यापक अधिकार प्राप्त है । इन अधिकारों का प्रयोग जहां प्रथमतः यह सुनिश्चित करने के लिए किया जायेगा कि आर्थिक शक्ति या जनहित के विरूद्ध केन्द्रीयकरण न हो वहां कुछ अन्य महत्वपूर्ण मामले भी सरकार द्वारा विचार किये जा सकते है । देश की सामान्य आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये ऐसे सभी मामले केन्द्र सरकार एवं आयोग द्वारा विचार हेतु लिये जायेगें जिनका सम्बन्ध देश की सुरक्षा आवश्यकताओं तथा देशी तथा विदेशी आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुओं व सेवाओं का कुशलतम आर्थिक संसाधनों की सहायता से उत्पादन से हो । सरकार द्वारा देश में उपलब्ध मानवीय, भौतिक एवं औद्योगिक क्षमता के श्रेष्ठ प्रयोग को सुनिश्चित करने, व्यवहार एवं विद्यमान बाजार के विस्तार तथा नये विस्तारों की खोज की दिशा में तकनीकी विकास का प्रयोग आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की काट के रूप में नये उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देने, सामान्य हित में देश के भौतिक साधनों के प्रयोग को नियमित व नियंत्रित करने, एवं क्षेत्रीय असमानता एवं असंतुलन को कम करने के उद्देश्य से भी उपयुक्त मामलों पर इस अधिनियम के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है ।

एकाधिकारात्मक व्यवसायिक आचरण का नियन्त्रण

आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने के अतिरिक्त अधिनियम द्वारा केन्द्र सरकार को एकाधिकारी व्यवसायिक आचरणों को भी नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त है । देश में विद्यमान आर्थिक एवं अन्य दशाओं

को ध्यान में रखते हुये कोई एकाधिकारात्मक व्यवसायिक आचरण जनहित के लिए खतरनाक समझा जाता है यदि ऐसे आचरण को प्रभाव किसी वस्तु अथवा सेवा को उत्पादन लागतों में आवांछनीय बृद्धि, कीमतों मे बृद्धि अथवा बिक्री में प्राप्त किये जाने वाले लाभों में आवंछनीय बृद्धि अथवा वस्तु की पूर्ति में रूकावट तथा प्रतियोगिता में कमी के रूप में होता । ऐसी भी किसी स्थिति की उपस्थिति को महसूस करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा सम्बद्ध मामले एकाधिकार आयोग को विस्तृत जांच के लिए सौंपे जा सकते हैं । आयोग की जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर स्थित को नियंत्रित करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार उपस्थित आदेश जारी कर सकती है । ऐसा कोई आदेश, उपक्रम द्वारा उत्पादित वितरित अथवा नियंत्रित किये जाने वाली किसी वस्तु या सेवा के विक्रय या पूर्ति से सम्बन्धित शर्तों का निर्धारण कर उनके नियमन, उपक्रम द्वारा वस्तु के वितरण से सम्बन्धित प्रतियोगिता में कमी लाने वाले किसी व्यवसायिक नीति को अपनाने को प्रतिबन्धित करने, उपक्रम द्वारा उत्पादित अथवा प्रयुक्त वस्तु के स्तर निर्धारण, तथा व्यवसायिक निर्धारण तथा व्यवसायिक क्रियाओं तथा किसी अनुबन्ध को अवैध घोषित करना हो सकता है ।

प्रतिबन्धित व्यवसायिक आचरण तथा उनका नियन्त्रण

ऐसा व्यवसायिक आचरण जिसका वास्तविक तथा संभावित परिणाम बाजार की प्रतियोगिता को बाधित करना, कम करना या नष्ट करना हो प्रतिबन्धित व्यवसायिक आचरण कहलाता है ।

व्यवसायिक जगत में वस्तु अथवा सेवा के उत्पादकों व विक्रेताओं द्वारा कुछ ऐसे व्यापारिक आचरण किये जाते हैं जो जनहित के बिरूद्ध समझा जाता है और उपभोक्ताओं एवं उद्योग व्यापार के व्यापक हित में सरकार द्वारा ऐसे आचरण पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है । इस प्रकार व्यवसायिक नीतियों में व्यवसाय की प्रतियोगिता को कम या नष्ट करने के उद्देश्य से वस्तु के विक्रेताओं द्वारा परस्पर समझौता करना जिसके अनुसार उत्पादन की कीमत अथवा विक्रय की शर्तें अथवा आपस में बाजार को विभाजित करने जैसी बातें तय की जा सकती है, अलग-अलग उपभोक्ताओं मे वस्तु की बिक्री, बाजार में विधमान प्रतियोगिता को हटाने के उद्देश्य से वस्तु को थोड़े समय के लिए लागत से कम कीमत पर बेचना, अधिक बिकने वाले माल के उत्पादकों द्वारा अपने उत्पादन के साथ कम बिकने वाले माल को संयुक्त रूप से बेचना, किसी एक वस्तु के द्वारा क्रेता को उस वस्तु समूह की सभी वस्तुयें एक साथ खरीदने को बाध्य करना, उत्पादक द्वारा वितरक को केवल अपने उत्पादन बेचने को कहना, वितरक के कार्य क्षेत्र को एक निश्चित सीमा निर्धारित करना, उत्पादक द्वारा अपने उत्पादन को बिक्री के लिये कीमत निश्चित कर देना जैसे आचरण शामिल किये जा सकते हैं ।

अधिनियम में निरोधात्मक व्यवसायिक आचरण में कोई प्रतिबन्ध नहीं है जब कि ऐसा आचरण जनहित के बिरूद्ध न हो । किन्तु अधिनियम में यह प्रावधान दिया कि ऐसे अनुबन्ध जिसका सम्बन्ध प्रतिबन्धात्मक व्यवसायिक आचरण से हो जांच एवं पूंजीकरण के महासंचालक द्वारा प्राधिकृत

अनुबन्धों के रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत कराये जाने चाहिये जिससे ऐसे अनुबन्धों का एकाधिकार आयोग द्वारा मूल्यांकन किया जा सके और यह निश्चित हो सके कि प्रतिबन्धित व्यवसायिक आचरण जनहित के विरुद्ध है अथवा नहीं । आयोग द्वारा जाँच की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए पूंजीकरण का होना आवश्यक नहीं है । प्रारम्भिक रूप से रजिस्ट्रार को यह प्रदर्शित करना होता है कि उपक्रम द्वारा प्रतिबन्धित आचरण किया गया है और इसके बाद यह साबित करना सम्बन्धित पक्षकार का दायित्व होता है कि उपक्रम द्वारा अपनाई गई नीतियाँ जनहित के विरुद्ध नहीं हैं ।

एक बार आयोग द्वारायह सुनिश्चित कर लेने पर की कोई निरोधात्मक आचरण जनहित के विरुद्ध है, उसे ऐसे आचरण अपनाना बंद करने या न दोहराने, ऐसे आचरण से सम्बन्धित ठहराव को व्यर्थ घोषित करने, अथवा अनुबन्ध को उपयुक्त तरीके से परिवर्तित करने सम्बन्धी आदेश देने का अधिकार प्राप्त रहता है । ऐसा आदेश पारित करने के बजाय सम्बन्धित पक्ष के आवेदन पर आयोग उपक्रम के स्वामी का प्रबन्धकों को उचित समय के अन्दर या आश्वासन देने का अवसर प्रदान कर सकता है कि प्रतिबन्धित व्यावसायिक आचरण जनहित के विरुद्ध नहीं है । वस्तुत: अधिनियम के अन्तर्गत एकाधिकार आयोग को अपने आदेश को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक प्रावधान बनाने और अपने आदेश को निरस्त करने सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त है । आयोग द्वारा पारित आदेश के सम्बन्ध में केवल सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है ।

जनहित का मूल्यांकन :-

आयोग के समक्ष कार्यवाही के लिये कोई प्रतिबन्धित व्यावसायिक आचरण जनहित के विरुद्ध समझा जाता है । यदि सम्बन्धित पक्षकार प्रथमता यह साबित न कर सके कि यह अधिनियम की धारा 38(1) में वर्णित विभिन्न निर्धारक तत्व में से एक या अधिक को पूरा करता है । और प्रतिबन्धित अवांछनीय नहीं है एवं ऐसे प्रतिबन्ध के परिणाम जनहित के लिए हानिकारक नहीं होते अधिनियम में निर्धारित कुछ कसौटियां इस प्रकार हैं ।[67]

- प्रतिबन्ध जनसाधारण को किसी प्रकार की मौलिक क्षति से बचाने के लिए आवश्यक है ।

- प्रतिबन्ध को हटा लेने पर जनसाधारण को प्राप्त होने वाले विशिष्ट व महत्वपूर्ण लाभ नहीं प्राप्त हो सकेंगें ।

- व्यापार के समान स्तर पर अपनाये गये किसी प्रतिस्पर्धी विरोधी आचरण के उपाय के रूप में प्रतिबन्ध आवश्यक है ।

- प्रतिबन्ध सम्बन्धी पक्षकार की वस्तु की उचित पूर्ति बनाये रखने की स्थिति प्रदान करने के लिये आवश्यक है ।

---

67. जगदीश प्रकाश, राज्य व व्यवसाय प्रशासन, प्रयाग भवन, पृष्ठ 94

- प्रतिबन्ध सम्बन्धी पक्षकार को वस्तु की उचित पूर्ति बनाये रखने की स्थिति प्रदान करने के लिये आवश्यक है ।

- प्रतिबन्ध को हटाने से सम्बन्धित औद्योगिक क्षेत्र में भयंकर बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जायेगी ।

- देश के कुल निर्यात व्यापार अथवा उद्योग के कुल व्यवसाय को ध्यान में रखते हुये प्रतिबन्ध को हटाने से निर्यात आय पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा ।

- किसी दूसरे प्रतिबन्ध की जिसे आयोग जनहित के विरूद्ध नहीं समझता एवं स्थिति बनाये रखने के लिये प्रतिबन्ध आवश्यक है ।

- प्रतिगन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यापार या उद्योग में प्रतिस्पर्धा को कम नहीं करता और न ही इसे हतोत्साहित करता है ।

- ऐसा प्रतिबन्ध केन्द्र सरकार द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकृत एवं पुष्ट किया गया हैक।

- प्रतिबन्ध राज्य की सुरक्षा एवं देश की रक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये अनिवार्य है ।

- प्रतिबन्ध आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित रखने के लिये आवश्यक है ।

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग के कार्यों का मूल्यांकन :

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग की स्थापना 1 जून 1970 को हुई । सन् 1987 तक लगभग दो हजार कम्पनियों ने इस अधिनियम की धारा 26 के अन्तर्गत अपना पंजीकरण कराया है । इन उपक्रमों को अधिनियम विस्तार, नये उपक्रमों की स्थापना व एकीकरण तथा अन्य उपक्रमों को अपने में मिलाने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होती है ।

इस अधिनियम को लागू हुए तथा एकाधिकार आयोग की स्थापना हुए अठारह वर्ष हो चुके हैं । इस अवधि में इस आयोग की प्रगति पर्याप्त आलोचना का विषय रही है तथा इसके कार्यों की मिश्रित प्रतिक्रिया हुई है । कुछ विद्वानों का विचार है कि भारत में एकाधिकारों की अभी कोई विशेष समस्या नहीं है । अतः ब्रिटिश अधिनियम (एम.आर.टी.पी. आफ यू.के.) के आधार पर इस देश में ऐसे अधिनियम को लागू करने तथा स्थायी एकाधिकार आयोग (एम.आर.टी.पी.) के गठन का कोई विशेष औचित्य नहीं था । इस मत के अनुसार एकाधिकारों एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारों की वृद्धि को तब तक नहीं रोका जाना चाहिये जब तक कि वे जनहित के प्रतिकूल सिद्ध न हो जाय ।[68]

---

68. एकाधिकार जांच आयोग की रिपोर्ट 1965

विद्वानों का मत है कि सरकार ने इस अधिनियम को जनाक्षेम के विरूद्ध एक ढाल के रूप में इस्तेमाल करने के अभिप्राय से लागू किया है तथा अधिनियम के प्रावधानों में जानबूझ कर कुछ ऐसी दरारे अथवा कमजोरियाँ छोड़ दी गई हैं जिनका अनुचित लाभ विशाल औद्योगिक गृहों अथवा प्रभावी उपक्रमों के द्वारा उठाया जा सकता है । इस प्रकार वे इस अधिनियम के प्रावधानों से बच सकते हैं । उदाहरण के लिए एकाधिकार एवं आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण के मामलों पर यह आयोग तभी अपनी राय दे सकता है जबकि वे मामले सरकार द्वारा इन्हें प्रेषित किये जाय । यही नहीं प्रेषित मामलों पर दी गई इसके परामर्श से सरकार बाध्य नहीं होगी और तत्सम्बन्धी अंतिम निर्णय सरकार ही कर सकेगी ।

कुछ विपणन वेत्ताओं का मत है कि पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय उद्योगों का आकार छोटा है । अतः उन पर प्रतिबन्ध लगाना न्याय संगत नहीं है क्योंकि इससे न तो राष्ट्र का हित होगा और न औद्योगिक कुशलता में वृद्धि होगी । इन्हीं आलोचकों का यह भी कहना है कि भारत एक विकासशील देश है, यहाँ प्रबन्धकीय कुशलता का अभाव है । यदि उद्योगों पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये तो उनका समुचित विकास नहीं हो पायेगा । आधुनिक युग में देश जब तेजी से औद्योगीकरण की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है, एकाधिकार नियंत्रण रूपी प्रतिबन्ध से उद्योगों का समुचित विकास एवं आधुनिकीकरण नहीं हो सकेगा । वैसे ही कम्पनी अधिनियम में सरकार को इतने व्यापक

अधिकार मिल गये हैं कि वह किसी भी उद्योग पर प्रभावी नियंत्रण रख सकती है ।[69]

यह निर्विवाद है कि जहां एक ओर समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए आर्थिक शक्ति की केन्द्रीयकरण पर नियंत्रण रखना आवश्यक है वहीं दूसरी ओर देश का तीव्र गति से औद्योगीकरण भी करना है । वास्तव में आकार की विशालता अथवा आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की अधिकता स्वयं में कोई सामाजिक दोष नहीं है । वरन् इस स्थिति का दुरुपयोग हानिकारक है । यदि विशाल उद्योगों को सही प्रकार से संचालित किया जाय तो उनसे अनेक प्रकार की मितिव्यायताएं प्राप्त होती है । पूंजी निर्माण की गति तीव्र होती है और राष्ट्र का तेजी से आर्थिक विकास होता है । एकाधिकार जांच आयोग ने अपनी टिप्पणी में लिखा था "आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण ने राष्ट्र के आर्थिक सुधार में सहयोग दिया है । आज भी हमारे आर्थिक विकास का स्तर पश्चिमी जगत अथवा जापान की तुलना में नीचा है । किन्तु जो कुछ भी विकास हुआ है वह उन कतिपय व्यक्तियों के साहस और चातुर्य का परिणाम है जिन्होंने अपने व्यवसायिक उपक्रमों को विशाल रूप देने और इस प्रकार आर्थिक सत्ता के अधिक भाग को अपने हाथ में केन्द्रित करने एवं राष्ट्रीय आय एवं सम्पत्ति के उत्पादन तथा वितरण को निर्देशित करने में सफलता प्राप्त की ।

---

69. एकाधिकार जांच आयोग की रिपोर्ट 1965 पृष्ठ 76

आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर नियंत्रण लगाने के संदर्भ में सरकार को अपनी इस नीति पर भी विचार करना चाहिये कि जिन उद्योगपतियों को विशाल औद्योगिक समूह के नाम पर देश में उद्योग स्थापित करने के लिए लाइसेंस नहीं दिये गये, उन्हीं को विदेशों में उद्योगों को स्थापित करने तथा उद्योगों की स्थापना में सहयोग देने की अनुमति दी गई है। यह ठीक है कि इससे विदेशी विनिमय की प्राप्ति की वृद्धि नहीं होगी ? क्या उनकी योग्यता, साहस पूंजी एवं अन्य साधनों में सहयोग में (जो विदेशों में उद्यम स्थापित करने में लगा रहा है) भारतीय जनता वंचित नहीं रह जावेगी। फिर आज तो अत्यधिक नियमन और नियंत्रण का समय है, उसमें उत्पादन की मात्रा, उत्पादन का प्रारूप, विक्रय मूल्य, मजदूरी स्तर, बोनस की दर, लाभांश की मात्रा इत्यादि सभी कुछ सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है। ऐसी दशा में क्यों न विदेशों में उनके द्वारा विनियोजित किये जा रहे साधनों को देश के औद्योगिक विकास के लिए प्रयुक्त किया जाय।

अपराध एवं दण्ड :

यदि कोई व्यक्ति बिना सूचना के अपने उद्यम का विस्तार कर लेता है तो उस पर एक लाख रूपये तक जुर्माना किया जा सकता है उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति नया उद्यम स्थापित कर लेता है तो अन्तः सम्बन्धित की परिभाषा में आता है या बिना अनुमति के सम्मिश्रण या विलय कर

लेता है तो ऐसे व्यक्तियों को एक लाख रूपये तक जुर्माना किया जा सकता है । इसी प्रकार कोई व्यक्ति यदि समझौते को रजिस्टर्ड नहीं कराता जिसे इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड कराना आवश्यक था तो ऐसे व्यक्ति पर एक हजार रूपये तक जुर्माना किया जा सकता है । यदि इसके बाद भी अपराध चलता रहता है तो पचास रूपये प्रतिदिन तक जुर्माना किया जा सकता है । यदि किसी व्यक्ति के द्वारा मांगने पर सूचना नहीं दी जाती तो उसको तीन माह की सजा व दो हजार रूपये जुमाना या दोनों किया जा सकता है । यदि सूचनाएं गलत दी जाती है तो छः माह तक की सजा या पांच हजार रूपये जुर्माना या दोनों किये जा सकते हैं । धारा 39 व 40 के अन्तर्गत यदि पुनः विक्रय मूल्य नीति जारी रखी जाती है तो ऐसे व्यक्ति को तीन माह की सजा या पांच हजार रूपये जुर्माना या दोनों किया जा सकता है ।[70]

§9§ विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973

देश की समृद्धि अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता देश की मुद्रा के विनिमय मूल्य में स्थायित्व आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विदेशी विनिमय एवं व्यापार का नियमन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है । इस प्रकार का नियमन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आयात एवं निर्यात §नियंत्रण§ अधिनियम 1947 के अन्तर्गत भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय

---

70. शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा सन् 1979 पृष्ठ 426

प्राधिकृत व्यापारी एवं मुद्रा परिवर्तक :-

विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अन्तर्गत विदेशी विनिमय का नियमन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है, किन्तु रिजर्व बैंक जनसाधारण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं करता । विनिमय सम्बन्धी लेन - देन बैंक द्वारा नियुक्त प्राधिकृत व्यापारी से किये जाते हैं । वास्तव में रिजर्व बैंक द्वारा अन्य बैंकों के विदेशी विनिमय में व्यवहार करने के लाइसेन्स जारी किये जाते हैं ।

प्राधिकृत व्यापारियों के अलावा विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम में रिजर्व बैंक द्वारा "मनी चेन्जर्स" को लाइसेन्स जारी करने सम्बन्धी प्रावधान भी दिये गये हैं मनी चेंजर का कार्य रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित शर्तों पर विदेशी मुद्रा को खरीद एवं बिक्री करना होता है ।

विदेशी विनिमय में व्यवहार पर रोक :- अधिनियम में दिये प्रावधानों के अनुसार प्राधिकृत व्यापारी को छोड़कर अन्य कोई व्यक्ति रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना विदेशी विनिमय व्यापार नहीं कर सकता । यह नियम किसी व्यक्ति द्वारा मनी चेंजर्स से विदेशी मुद्रा के खरीद और बिक्री के व्यवहारों पर लागू नहीं होता । अधिनियम द्वारा भारतीय मुद्रा को विदेशी मुद्रा में अथवा विदेशी मुद्रा को भारतीय मुद्रा में रिजर्व बैंक द्वारा निश्चित विनिमय दर के अतिरिक्त किसी अन्य दर पर बदलने वाले व्यवहारों पर भी रोक लगाई गई है ।

विदेशी विनिमय के उपयोग पर रोक :- अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार किसी व्यक्ति द्वारा विदेशी विनिमय का प्रयोग उन्हीं उद्देश्यों के लिये किया जा सकता है जिसके लिये उसने विदेशी विनिमय प्राप्त किया है । इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को कुछ निर्दिष्ट शर्तों के साथ विदेशी विनिमय प्राप्त करने और प्रयुक्त करने की अनुमति प्रदान की गयी है तो उसके लिये इन शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है । यदि शर्तों का उल्लंघन हो तो ऐसे व्यक्ति को तीस दिन के अन्दर विदेशी विनिमय प्राधिकृत व्यापारी या मनी चेंजर्स को बेच देना होगा ।

भुगतानों पर रोक :- अधिनियम में दिये गये प्रावधानों के अनुसार रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना भारत में निवासी कोई व्यक्ति किसी अनिवासी को कोई भुगतान नहीं करेगा न ही ऐसे किसी व्यक्ति के लिये, प्राधिकृत व्यापारी के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम से, कोई भुगतान प्राप्त करेगा । इसी प्रकार की रोक किसी ऐसे विनिमय विपत्र अथवा प्रतिज्ञापत्र के लिखने या हस्तान्तरित करने पर लगाई गई है जिसके द्वारा भारत के बाहर निवासी किसी व्यक्ति के पक्ष में भुगतान प्राप्त करने का अधिकार हस्तांतरित हो जाता है ।

माल, मुद्रा एवं ठोस सोने के निर्यात पर रोक :- विदेशी विनिमय में अधिनियम में यह उल्लेख किया गया है कि निर्यात के समय घोषित मूल्य से कम मूल्य पर माल की बिक्री के लिये भेजने पर रिजर्व बैंक को अनुमति

ली जानी आवश्यक है । अधिनियम द्वारा कुछ निर्दिष्ट वस्तुओं के निर्यात, बिक्री मूल्य की समय पर प्राप्ति आदि के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध लगाए गये हैं । अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार बिक्री की कीमत और शर्तों पर अतिरिक्त रोक लगाने के उद्देश्य से निर्यातम के लिये निर्यात संविदा को उपयुक्त अधिकारियों के समक्ष पंजीकृत करना अनिवार्य है ।

अधिनियम की धारा 13 के द्वारा कुछ मुद्राओं एवं धातुओं के आयात निर्यात पर भी प्रतिबन्ध लगाए गये हैं । अधिनियम के द्वारा केन्द्र सरकार को ऐसे अधिकार प्रदान किये गये हैं जिनके द्वारा वह, रिजर्व बैंक, की सामान्य अथवा विशिष्ट अनुमति के बिना, भारतीय मुद्रा, सोने चांदी अथवा जवाहरात के भारत के बाहर भेजने अथवा विदेशी मुद्रा, सोने चांदी आदि को विदेशों से भारत में आयात करने को रोकने सम्बन्धी आदेश दे सकती है ।

इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है और न तो कोई कम्पनी (बैंकिंग कम्पनी को छोड़कर) जिसका समामेलन भारत के बाहर हुआ है अथवा जिसमें अप्रवासियों का हित 40प्रतिशत से अधिक है कोई भी अचल सम्पत्ति नहीं प्राप्त करती है जब तक की रिजर्व बैंक की अनुमति न प्राप्त हो जाय ।

<u>विदेशी विनिमय की प्राप्ति</u> :- विदेशी विनिमय अधिनियम की धारा 14 के द्वारा केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि कुछ दशाओं में वह विदेशी विनिमय प्राप्त करें। केन्द्रीय सरकार ऐसे व्यक्तियों अथवा भारत के प्रवासियों से जिनके पास विदेशी मुद्रा है यह कह सकती है कि वे इस विदेशी विनिमय का विक्रय रिजर्व बैंक अथवा उसके द्वारा अधिकृत अन्य किसी को कर दे। यह विक्रय उस मूल्य पर होगा जिसे कि समय-समय पर केन्द्रीय सरकार निश्चित करें। हालांकि यह मूल्य उस मूल्य से कम नहीं होगा जिसे कि रिजर्व ने अधिकारिक तौर से गणना करके घोषित किया है।

<u>निर्यात एवं प्रतिभूतियों के हस्तांतरण का नियमन</u> :- यह अधिनियम प्रत्येक व्यक्ति (ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर जिसे रिजर्व बैंक की विशिष्ट अथवा सामान्य अनुमति मिल गयी है) को निम्न कार्य करने से निषिद्ध करता है :-

(अ) भारत के बाहर किसी भी प्रतिभूति को ले जाने अथवा भेजने पर।

(ब) भारत के बाहर किसी निवासी के पक्ष में प्रतिभूतियों का हस्तांतरण अथवा प्रतिभूतियों में हस्तान्तरण अथवा अन्य किसी प्रकार से स्वामित्व उत्पन्न करना।

(स) ऐसी प्रतिभूतियों का हस्तांतरण, जिसका पंजीयन भारत में हुआ है भारत के बाहर प्रवासियों के पक्ष में निषिद्ध है।

(द) भारत के बाहर के प्रवासियों के पक्ष में प्रतिभूतियों का निर्गमन निषिद्ध जिनका पंजीयन भारत में हुआ है ।

(इ) विदेशी प्रतिभूतियों के प्राप्त करने रखने अथवा बेचने से सम्बन्धित लेन-देन ।

भारत में निवास करने वाले व्यक्तियों पर रोक :- भारत में निवासी व्यक्तियों द्वारा विदेशी मुद्रा खाता रखने तथा विदेशों में विदेशी मुद्रा अथवा प्रतिभूतियों आदि से सम्बन्धित क्रियाकलापों का नियमन विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम द्वारा किया जाता है । भारत में निवासी व्यक्तियों द्वारा विदेशों में अचल सम्पत्ति के प्राप्त करने, रखने, हस्तांतरण अथवा बेचने के लिये रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है । संयुक्त साहस जैसे व्यवसाय में व्यापारिक वाणिज्यक तथा औद्योगिक क्रियाकलापों में भारत में निवासियों द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों के नियमन के अधीन ही भाग लिया जा सकता है ।

विदेशी कम्पनियों का नियमन :- विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि अप्रवासी, जो भारत में रहने वाला विदेशी व्यक्ति, कम्पनियां (बैंकिंग कम्पनीयों को छोड़कर) जिनका समामेलन विदेश में हुआ है तथा जिनमें 40 प्रतिशत से अधिक का हित अप्रवासियों का हो तो वे भारत में व्यापारिक औद्योगिक अथवा इसी तरह का कोई कार्य भारत में बिना रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के कर सकती है औरनतो

अपनी शाखायें अथवा कार्यालय ही स्थापित कर सकती है ।

विदेशी व्यक्तियों अथवा विदेशी कम्पनियों पर रोक :- इस अधिनियम के अन्तर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि रिजर्व बैंक की पूर्व अनुमति के बिना कोईभी भारत के बाहर का प्रवासी भारत में निवास करने वाला विदेशी व्यक्ति, अथवा एक कम्पनी ‹बैंकिंग कम्पनी को छोड़कर› जिनका भारत के बाहर समामेलन हुआ अथवा जिनमें अप्रवासियों का 40 प्रतिशत हित से अधिक है अथवा इनकी शाखाएं भारत में किसी भी तकनीकी, प्रबन्धकीय सलाहकार अथवा अभिकर्ता की नियुक्ति को स्वीकार नहीं कर सकती ।

ऐसी कम्पनियां जिनमें 40 प्रतिशत से अधिक का हित अप्रवासियों का हो तो वे भारत में प्रक्रिया के पहले पुर्नविक्रय करने के लिये रिजर्व बैंक की पूर्ण अनुमति से भारत में वस्तुओं की खरीद सकती है ।

रिजर्व बैंक की पूर्ण अनुमति के बिना विदेशी नागरिक भारत में न तो नौकरी कर सकता है और न तो कोई पेशा ही अपना सकता है । यदि वह ऐसे कार्य के बदले मिलने वाले भुगतान को विदेशी मुद्रा में बाहर भेजना चाहता है ।

§10§ पैकेज्ड वस्तु नियमन अधिनियम 1975

यह अधिनियम अमरीका में "फेयर पैकगिंग लेवलिंग एक्ट" के नाम से प्रारम्भ हुआ जिसके अन्तर्गत एक पैकेज पर उसकी वस्तु की मात्रा, उसका वजन, उसके निर्माता आदि का नाम लिखना आवश्यक है जिससे कि उपभोक्ता के द्वारा वस्तुओं की तुलना की जा सके और उनके द्वारा उचित निर्णय लिया जा सके । भारत सरकार ने "भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया है जिसके अनुसार वस्तु के पैकेज पर वस्तु को पैक करते समय शुद्ध मात्रा, अधिकतम मूल्य बनने की तारीख निर्माता का नाम एवं पता होना अनिवार्य है । सरकार ने 28 जुलाई 1975 को पैकेज्ड वस्तु नियमन आदेश, 1975 जारी किया है जो 1 जनवरी 1976 से लागू हो गया है । इस आदेश का उद्देश्य पैकेज्ड वस्तु को उचित मूल्य पर वितरण एवं उपलब्ध कराना है । यह आदेश पहले 1 सितम्बर 1975 से लागू होना था लेकिन बाद में इसके लागू होने की तारीख दो बार बदली गई और अन्त में यह 1 जनवरी 1976 से लागू कर दिया गया है । इस आदेश की मुख्य बातें निम्न हैं :-[71]

- कोई भी व्यक्ति वस्तुओं को बेचने के लिए पैक नही करेगा जब तक कि प्रत्येक पैकेट में निम्न तथ्यों के सम्बन्ध में लेबिल न लगा हो ।

§अ§ पैकेट के अन्दर वस्तु की पहचान ।

---

71. दि इकोनामिक टाइम्स, अगस्त 22, 1975

§ब§ पैकेट के अन्दर रखी हुई वस्तु की मात्रा या वजन या माप ।

§स§ तारीख जिस दिन पैकेट तैयार किया गया है माह एवं वर्ष सहित ।

§द§ पैकिट का विक्रय मूल्य ।

- कोई भी व्यक्ति ऐसे पैकेट को न बेचेगा न वितरित करेगा और न देगा जिस पर उपर्युक्त लिखी हुई बाते नहीं है ।

- पैकेट या लेबिल पर जो मूल्य दिया गया है उससे अधिक मूल्य पर कोई डीलर या वस्तु को नही बेचेगा ।

- प्रत्येक पैकेट पर निर्माता या पैक करने वाले का पूरा नाम एवं पूरा पता होगा ।

- लेबिल या पैकेज पर जो विवरण वजन, माप या नम्बर के बारे में दिया है वह किसी भी प्रकार से शर्त सहित नहीं होगा ।

- वे वस्तुएं जिन पर सरकारी मूल्य नियंत्रण लागू उन पर नियंत्रित मूल्य ही दिये जायेंगे ।

- पैकेट के मूल्य में स्थानीय टैक्स शामिल नहीं होंगे ।

- पैकेट में वस्तु की वजन की घोषणा में उसके पैकिंग सामान का वजन शामिल नहीं होगा ।

- यदि किसी वस्तु को रैपर या आधानपात्र में बेचा जाता है तो उस रैपर या आधानपात्र पर यह सभी सूचनाएं दी जायेगी ।

- यदि किसी पैकेट पर शुद्ध वजन या मूल्य लिखना असम्भव या अव्यवहारिक हो तो पैकेट के साथ एक लेबिल या मुहर लगा दी जाय जिस पर शुद्ध वजन एवं मूल्य स्पष्ट रूप से दिया हो ।[72] सरकार द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार उपर्युक्त आदेश उन वस्तुओं पर लागू नहीं होता है जो किसी उद्योग में कच्चे माल के रूप में काम आती है या थोक पैकेट के रूप में बेची जाती है या वे वस्तुएं जो खानों के काम में आती है या थोक पैकिट के रूप में बेची जाती है । यह आदेश बहुत छोटी वस्तुओं पर भी लागू नहीं होता है । बीड़ी व अगरबत्ती इस सीमा से बाहर हैं तथापि व्यवहारिक रूप से इन वस्तुओं की पैकिंग पर भी वस्तु को मात्रा या संख्या, कम्पनी अथवा उत्पाद करने वाली संस्था का नाम एवं मूल्य आदि दिये होते हैं । वास्तव में यह आदेश उन वस्तुओं पर लागू होता है जो आम जनता की उपभोग की वस्तुएं हैं जैसे काफी, चाय, खाने के तेल, वनस्पति, तेल, साबुन, बिस्कुट, सीमेंट, बच्चों का दूध, दवाइयां, सौन्दर्यप्रसाधन वस्तुएं आदि ।[73]

---

72. शर्मा एवं जैन विपणन व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 430
73. शर्मा एवं जैन, विपणन व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 430-431

भारत वर्ष में यह अधिनियम कड़ाई से लागू नहीं किया गया है । भूतपूर्व उद्योग एवं नागरिक पूर्ति मंत्री श्री जार्ज के अनुसार भारत में उप - भोक्ता को करीब, 32,000 करोड़ रुपये के प्रतिवर्ष {पैक किये हुए पैकिटों में कम वजन से} ठगा जाता है । वास्तव में यह आदेश उपभोक्ताओं की भलाई एवं सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने में एक कदम है । इसके लिये आवश्यक है कि निर्माता पैकिंग के संदर्भ में आचार संहिता एवं अधि-नियमों का पालन करें एवं उपभोक्ता सावधानी एवं विवेक से उपभोग की वस्तुओं का क्रय करते हुए पैकिंगों पर ध्यान दें । सरकार ने "फेयर ट्रेड प्रक्टिसेस बिल" के नाम से एक बिल बनाया था जिसको संसद के समक्ष पेश किया जाना था लेकिन इस बिल को संसद के समक्ष पेश नहीं किया जा सका तथा संसद भंग हो गई ।

इस आदेश के जारी होने से उपभोक्ता को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है । इसका कारण यह है कि वस्तु पर जो अधिनियम मूल्य डाले गये हैं दूकानदार उससे कहीं अधिक मूल्य स्थानीय करों के नाम से वसूल करता है । इस प्रकार का आदेश जनता के लिए अधिक लाभकारी नहीं हो रहा है । यद्यपि कम वजन या माप की शिकायतों में अवश्य कमी हुई है ।

(11) बाट एवं माप अधिनियम 1976

इस अधिनियम का उद्देश्य तौल एवं माप के मान को स्थापित करना तथा तौल एवं माप तथा अन्य वस्तुयें जो इसके माध्यम से बेची या वितरित की जाती है उनके अन्तर्राज्यों व्यापार या वाणिज्य को नियमित करना एवं इसके सम्बन्धित सभी कार्यों को करना है । इस अधिनियम के मुख्य तत्व निम्नलिखित है :-

तौल एवं माप के प्रभावों को निर्धारित करना :-

बाट एवं माप की प्रत्येक ईकाई मैट्रिक प्रणाली पर आधारित होगी तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत इस कार्य के लिये मीटर, किलोग्राम, एम्पीयर, कैलविन आदि को प्रयोग में लाया जाता है ।

गैरमान बाट, माप या अंक के प्रयोग तथा उनके बनाने पर प्रतिबन्ध :-

गैरमान के बाट व माप के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है । साथ ही ऐसे बाट व माप बनाने पर रोक भी लगा दी गयी है । कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु को बेचने के लिये मूल्य गैरमान के बाट एवं माप में नहीं बता सकता और न वस्तुओं पर इस प्रकार का तथ्य अंकित हो कर सकता है । न ही इसका कैशमेमों, बिल या बीजक आदि बना सकता है । यदि कोई परम्परा रीति या तरीका ऐसा है जिसमें मान से कम या अधिक

वस्तु की माँग की जाती है या वस्तु की सुपुर्दगी की जाती है तो इस प्रकार की माँग या सुपुर्दगी व्यर्थ होगी ।

यदि कोई व्यक्ति बाट, माप या अंक को बनाता है, बेचता है या वितरित करता है या उनको मरम्मत करता है तो उसको इस प्रकार के वितरण विक्रय या मरम्मत का लेखा जोखा रखना अनिवार्य है ।

प्रमापों व उपकरणों का सत्यापन :-

प्रत्येक मान पर प्रमाणित होने की मोहर लगवाना आवश्यक है । यह मोहर निर्धारित अधिकरण द्वारा निर्धारित शुल्क लेकर लगायी जायेगी । यदि किसी माप या मान पर मोहर नहीं लगी है तो उसका प्रयोग वर्जित है । सभी प्रयोग में आने वाले मापों व बाटों पर एक निश्चित समय के बाद मोहर लगवाना अनिवार्य है ।

सरकारी अधिकारियों के अधिकार :-

इस अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त निदेशक या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति किसी भी ऐसे स्थान पर उचित समय में प्रवेश कर सकता है तथा तौल, माप या उससेसम्बन्धित रिकार्ड को अपने कब्जे में ले सकता है जहाँ पर इस अधिनियम के अन्तर्गत दयनीय कार्य किये जाने की सम्भावना हो । इस प्रकार का यदि कोई भी अप्रमाणित तौल का माप पाये जायेंगें तो उसको केन्द्रीय सरकार जब्त कर सकती है ।

दण्ड :- धारा 50 के अनुसार यदि कोई भी व्यक्ति निर्धारित मान के मापों व बाटों का उपयोग नही करता तो उसको इस प्रकार का कार्य पहली बार करने पर छः माह की सजा या एक हजार रुपये का आर्थिक दण्ड या दोनों दिया जा सकता है परन्तु द्वितीय व बाद के अपराधों पर दो वर्ष की सजा व जुर्माना किया जा सकता है ।

अधिनियम की धारा 51 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति बाटों व मापों को बनाते समय मान का ध्यान नही रखता है तो उसे दो वर्ष तक की सजा या 5000 रुपये तक का आर्थिक दण्ड या दोनों दिया जा सकता है ।[74]

(12) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

सरकार ने व्यवसायियों के अनैतिक व्यवहारों से उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करने के लिये समय-समय पर अनेक कानून बनाये तथा उसमें आवश्यक संशोधन किये हैं । उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखने के संदर्भ में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 को पारित किया गया ।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 सर्वाधिक व्यापक प्रभावी एवं प्रगतिशील कानून है । यह दण्डात्मक एवं निरोधक ही नही वरन् इसके

---

74. शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 415

उपबन्धों में क्षतिपूर्ति की भी व्यवस्था है । यह अधिनियम निजी , सार्वजनिक व सहकारी सभी क्षेत्रों पर लागू होता है । इसमें केन्द्र व राज्य उपभोक्ता परिषदों के गठन तथा राष्ट्रीय राज्य तथा जिलों स्तरों पर अर्द्ध न्यायिक तंत्र की स्थापना का प्रावधान है । केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद तथा उपभोक्ता विवाद निवारण राष्ट्रीय आयोग की स्थापना हो चुकी है । कुछ प्रदेशों में राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद तथा उपभोक्ता विवाद निवारण डिस्ट्रिक्स फोरमस का गठन हो चुका है ।

तृतीय सर्ग

सरकार एवं सहकारिता

तृतीय सर्ग

सरकार एवं सहकारिता

वर्तमान समय में संसार के लगभग सभी देशों की सरकारें अपने-अपने देश में सहकारिता के विकास एवं विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दे रही हैं । सहकारिता के माध्यम से सरकार देश में समानता के आधार पर विपणन क्रियाओं का कार्यान्वियन कराती है । समाज के भौतिक, प्रौद्योगिक और सांस्कृतिक आधारों में परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक अवस्था में परिवर्तन होना स्वाभाविक है । विश्व बाजार का विकास, विस्तृत प्रौद्योगिकी परिवर्तन विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में होने वाला वृद्धित औद्योगीकरण नये उत्पादों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप आज विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा की एक विषम स्थिति परिलक्षित हो रही है । परिणामस्वरूप विभिन्न संस्थाएं जिनका उद्गम एवं प्रादुर्भाव व्यवसायिक क्रियाओं के साथ-साथ जलकल्याण एवं जनकांक्षाओं को पूरा करने से है, अपने आप को ऐसी विषम प्रतिस्पर्धा में असहाय सी महसूस करने लगी अन्तोगत्वा ऐसी संस्थाओं के हितों की रक्षा करने तथा उन्हें मार्गातीकरण करने के उद्देश्य से सरकार ने सहकारिता के विकास को एक नया आयाम प्रदान किया जिससे कि विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों का अभ्युदय हुआ सरकार की सहकारिता में भूमिका को निम्न दो भागों में वर्गित किया जा सकता है:

(क) सहकारी विपणन

(ख) उपभोक्ता सहकारिता

सरकार उपरोक्त दोनों माध्यमों से विभिन्न संस्थाओं एवं उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करती है तथा देश में शोषण विहीन समाज की स्थापना करने का प्रयास करती है । आधुनिक लोकतांत्रिक समाजवादी, समाज में सरकार व्यवसायिक क्रियाओं में संलग्न होने के साथ-साथ सभी पक्षों के हितों पर ध्यान देती है विशेष रूप से ऐसी संस्थाओं अथवा व्यक्तियों के समूह से जो न केवल व्यवसायिक क्रियाएं करते हैं बल्कि समाज के सभी सद-स्यों के हितों पर विशिष्ट बल देते हैं, उनके उत्थान के लिए सरकार कृत संकल्प होती है ।

§क§ <u>सहकारी विपणन</u> :-

सहकारी विपणन का मुख्य उद्देश्य कृषकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उचित मूल्य पर बेचने तथा उन्हें इसका उचित प्रतिफल दिलाने एवं उनकी आवश्यकताओं के निराकरण के संदर्भ में आवश्यक कार्यवाही करने से है । भारत में छोटे किसानों की बहुलता को ध्यान में रखते हुए, कृषि के वाणिज्यकीकरण तथा कृषि उपजों के विपणन में विद्यमान दोषों को देखते हुए, सहकारिता ही विपण्न की समस्याओं का एकमात्र एवं सही समाधान प्रेतीत होती है । आज किसान की आय बहुत बड़ी सीमा तक उचित मूल्य पर अपनी उपजें बेचने की योग्यता पर निर्भर है ।

<u>आशय</u> :- एक सहकारी विक्रय संघ उसके संरक्षक सदस्यों द्वारा स्थापित एक स्वैच्छिक व्यापारिक संगठन है जो सदस्यों के प्रत्यक्ष लाभ कृषि उत्पादों को

सामूहीकरण रूप से बेचता है । यह लोकतांत्रिक सिद्धांतों द्वारा शासित होती है और इसकी बचतें, सदस्यों को उसकी संरक्षण के आधार पर विभाजित की जाती है । स्वामियों संचालकों और हस्तित्व वस्तुओं के अंशदाताओं के रूप में सदस्य उत्पन्न होने वाली बचतों को प्रत्यक्ष लाभ के भोगी होते हैं । सहकारी विपणन संघ एक व्यापारिक संस्था होती है और इसके आर्थिक उद्देश्य और आर्थिक लक्षण उसका ऐसे संघों जैसे श्रमसंघ, राजनीतिक पार्टी और बिल्कुल सामाजिक संस्थाओं से विनोद करते हैं । इसका संगठन सुदृढ़ व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार व्यापार का संचालन करने के लिये किया जाता है । स्वतन्त्र रूप से एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा में बेचने के स्थान पर, सहकारी कम्पनियों के द्वारा किसान अपनी विक्रय शक्ति को संघटित करते हैं, अपने सौदाकारी शक्ति में सुधार करते हैं तथा अपने साधनों को इकट्ठा करते हैं ।

सहकारी विपणन की अवधारणा: सहकारी विपणन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया है जो कि निम्न है:-

" विपणन में सहकारिता एक व्यापारिक उपक्रम है जो आर्थिक शक्तियों से प्रभावित होता है, उन परम्पराओं, संहिताओं तथा

. बेकन एवं सचार्स, एकोनामिक आफ क्वापरेटिव मार्केटिंग [1937] पृष्ठ 3

व्यवहारों से प्रभावित नहीं होता जो निजी व्यापारिक उद्यमों को प्रभावित करते हैं ।"[76]

उपरोक्त परिभाषा का अवलोकन करने से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि परिभाषा में दो बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया है प्रथम आर्थिक शक्ति जिसका अभिप्राय यह है कि सदस्यों में सामूहिक रूप से सहकारिता केमाध्यम से कार्य करने पर ये आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हैं और महाजनों व साहूकारों की चंगुल से मुक्त होते हैं । द्वितीय परम्पराओं जिसका आशय यह है कि सहकारी विपणन की व्यवसायिक क्रियाए इस प्रकार कीहोती है जिसमें कि सभी सदस्यों के सामूहिक हित पर विशेष ध्यान दिया जाता है अर्थात लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता दिया जाता है और उन्हें शोषण की प्रवृत्ति सेबचाया जाता है ।

" सहकारी विपणन समितियाँ किसान की उपज पैदा करने एवं तैयार करनेके सम्बन्ध में शिक्षा देतीहै बजार केलिए उपज की पर्याप्त मात्रा एकत्र करती है जिससेकि वस्तुओं का कुशल श्रेणीकरण संभव हो सके । इस प्रकार ये किसानों को निर्यात बाजार केसम्पर्क में लाती है ।"[77]

76—बेकन एवं सचार्स, एकोनामिक आफ क्वापरेटिव मार्केटिंग, 1937 पृष्ठ 3

77—शाही कृषि उद्योग, बाजार व्यवस्था, पृष्ठ 524

उपरोक्त परिभाषा का विश्लेषण करने पर इसके तीन लक्षण दर्शित होते हैं, प्रथम सहकारी विपणन के अन्तर्गत किसानोंको उनकी उपज पैदा करने एवं तैयार करने केसम्बन्ध में विशिष्ट रूप से जानकारी करायी जाती है । द्वितीय बाजार में मांग के अनुसार उपज को पर्याप्त रूप से एकत्रित किया जाता है एवं, तृतीय एकत्रित उपज को सुविधा के अनुसार श्रेणीकरण किया जाता है । अतः यह परिभाषा अधिक व्यवहारिक प्रतीत होती है ।

"सहकारी विपणन का अर्थ पारस्परिक लाभ प्राप्त करने एवं विपणन समस्याओं के हल करने के लिये मिलकर कार्य करना है । सहकारी विपणन संगठन व्यापारिक उद्यम है । [78]

उपरोक्त परिभाषा में सहकारी विपणन को एक व्यापारिक उद्यम बताया गया है तथा इसकी स्थापना का मूल्य उद्देश्य पारस्परिक लाभ प्राप्त करना एवं विपणन समस्याए जो विक्रय अथवा वितरण के संदर्भ में आती है उनका निवारण करना है । यह परिभाषा अधिक व्यवहारिक है ।

"वे संगठन जो सहकारिता केआधार पर किसानों केसमूह के द्वारा अपनी वस्तुओं कोबेचने और सामान तथा अन्य वस्तुयें खरीदने केलिये स्थापित हुए हैं सहकारी विपणन संघ कहलाते हैं ।[79]

78-ओ.बी. जैसनेस, क्वापरेटिव मार्केटिंग आफ फार्म प्रोडक्ट्स, पृष्ठ 4

79-फिलिप्स एवं डंकन, मार्केटिंग प्रिंसिपिल एवं मेथड्स, पृष्ठ 487

उपरोक्त परिभाषा में सामूहिक विक्रय या कृषकों के समूह के माध्यम से विक्रय एवं क्रय की क्रिया को करने वाले संगठन को सहकारी विपणन बताया गया है । ये संघ कृषकों जो इनके सदस्य होते हैं उनकी उपज को एकत्रित करके सामूहिक रूप से उनका विक्रय करते हैं ।

"एक सहकारी विपणन संस्था स्वेच्छा से सामूहिक खरीद व बिक्री के लिये बनाया गया व्यवसायिक संगठन है ।"[80]

यह परिभाषा सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों है । परिभाषा में दो बातों पर विशिष्ट बल दिया गया है । प्रथम यह संस्था स्वेच्छा से सामूहिक खरीद व बिक्री करती है एवं द्वितीय यह एक व्यवसायिक संगठन है ।

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इसके निम्नलिखित लक्ष्य दर्शित होते हैं :-

1. सहकारी विपणन सामूहिक लाभ के लिये एक ऐच्छिक संगठन है ।
2. इसका उद्देश्य अपने प्रत्येक सदस्य को लाभ पहुंचाना है ।
3. इसका संचालन लोकतंत्रीय सिद्धांतों के आधार पर होता है ।
4. इसका प्रयोजन कृषि जन्य पदार्थों की विपणन व्यवस्था करना है ।
5. यह सहकारिता के सिद्धांतों का पालन करती है ।
6. यह उत्पादक व उपभोक्ताओं के मध्य एक कड़ी का कार्य करती है ।

---

80. एम.पी. माथुर, क्वापरेटिव मार्केटिंग इन यू.पी., पृष्ठ 29

7. यह निजी उपक्रमों की परम्पराओं संहिताओं तथा व्यवहारों से अलग है ।

8. यह समाजवादी समाज की स्थापना करने की दिशा में कार्य करती है ।

<u>सहकारी विपणन के उद्देश्य:</u> सहकारी विपणन का मुख्य उद्देश्य किसानों अथवा उत्पादकों को उपज को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने में आवश्यक विपणन क्रियाओं को पूरा करने से है । वास्तव में कृषकों को उनके उपज का न्यायोचित प्रतिफल दिलाना तथा उन्हें उनकी आवश्यकताओं के पूरा करना सहकारी विपणन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है । संक्षेप में हम सहकारी विपणन के उद्देश्यों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट कर सकते हैं:

§1§ <u>न्यायोचित प्रतिफल:</u> सहकारी विपणन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने विक्रेता सदस्यों के हितों के रक्षा हेतु उनकी उत्पत्ति का उचित प्रतिफल दिलाना है । यह उचित प्रतिफल संस्था को सामूहिक सौदा करने की क्षमता, विभिन्न मध्यस्थों से बचत, बाजारों की बुराइयों में कमी, उपज व पदार्थों का वर्गीकरण तथा उन्नत बिक्री साधन आदि होने से मिल जाता है । भारतीय कृषक अपने उपज को आज भी नियमित मंडियों में न बेचकर साहूकारों या अनियमित मण्डी में बेचते हैं जिससे कि उनका शोषण होता है । उन्हें उनकी उपज का सही मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता । साहूकार कृषकों के उपज को वास्तविक मूल्य से भी कम मूल्य पर खरीदते हैं । सहकारी विपणन में कृषकों को उपज का न्यायोचित प्रतिफल प्रदत्त किया जाता है ।

§2§ <u>वित्तीय सहायता:</u> सहकारी विपणन के अन्तर्गत आर्थिक रूप से पिछड़े सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है । आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों के लिये अपने व्यक्तिगत साधनों से उत्पादन करना संभव नही होता ये विवशता में साहूकारों या महाजनों से ऋण ले लेते हैं और उनके चंगुल में फंस जाते हैं और इस प्रकार साहूकार मनमानी ढंग से इन कृषकों का शोषण करते हैं । सहकारी विपणन के अन्तर्गत सदस्यों को उनको आवश्यकता पड़ने पर पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जिसमें वे साहूकारों या महाजनों से ऋण न ले और अपनी उत्पत्ति को कम मूल्य पर न बेचे ।

§3§ <u>विपणन सूचना:</u> सहकारी विपणन का तीसरा उद्देश्य अपने सदस्यों को बाजार से सम्बन्धित सूचना देना है जिससे कि उत्पादन को मांग और पूर्ति के अनुरूप समायोजित किया जा सके । उत्पादन के नये-नये साधन, प्रमाणीकरण व वर्गीकरण के तरीके, व लागत कम करने वाले उपायों की भी जानकारी देने का इनका उद्देश्य होता है ।

§4§ <u>मूल्यों में स्थायित्व:</u> सहकारी विपणन का एक उद्देश्य बाजार मूल्यों में स्थायित्य लाना है । सहकारी समितियां फसल के समय अपने सदस्यों की उत्पत्ति रोककर रख लेती है और भविष्य में धीरे-धीरे बेचती रहती है जिससे बाजारू मूल्यों में स्थायित्व लाने में सहायता मिलती है ।

§5§ कच्चे माल की पूर्ति करना: सहकारी विपणन का पाँचवा उद्देश्य अपने सदस्य को आवश्यक कच्चा माल, यांत्रिक योग्यता, उन्नत बीज आदि उपलब्ध करना है जिससे कि भविष्य में उत्पादन उच्च कोटि व प्रमापों के आधार पर हो सके और सदस्यों की उत्पत्ति उचित मूल्य पर बेची जा सके।

§6§ उचित व्यापारिक रीतियों का विकास: सहकारी विपणन का उद्देश्य व्यापारिक जगत में उचित व्यापारिक रीतियों का विकास करना भी है। इसके लिये यह संगठन उचित नीति को अपनाते हैं और सदस्यों को अपनाने के लिये बाध्य करते हैं।

§7§ संग्रह सुविधा: सहकारी विपणन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने सदस्यों को उत्पत्ति के संग्रह की सुविधा प्रदान करना है जिससे कि बाजार को अपने हित में आने तक उत्पत्ति सुरक्षित रखी जा सके।

सहकारिता के सिद्धांत: सहकारिता के सिद्धान्तों का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधार पर वर्णन किया है सुविधा के लिये इन सिद्धान्तों को चार भागों में बांटा जा सकता है।

1. आर्थिक सिद्धान्त
2. आधारभूत सिद्धान्त
3. सामान्य स्वीकृत सिद्धान्त
4. गैर आवश्यक सिद्धान्त

I. सहकारी विपणन और आर्थिक सिद्धांत: कोई सहकारी संघ अथवा निजी उपक्रम आर्थिक नियमों और सिद्धान्तों की उपेक्षा करके लम्बे समय तक सफल नहीं हो सकता है। संगठन की सहकारी योजना में ऐसा कुछ नहीं है जो इसे विशेषाधिकार, कोई विशेष आर्थिक अधिकार अथवा शक्ति अथवा कोई अतिरिक्त स्वतन्त्रता देता है जो कि निजी व्यापार को प्राप्त नहीं है । यदि विपणन को जाने वाले उत्पादों की मात्रा उपभोग की आवश्यकताओं से बहुत ही अधिक हो, तो सहकारिता उच्च मूल्य प्राप्त नहीं कर सकती है । यदि व्यक्तियों की इच्छा क्रय करने की नहीं है तो यह उन्हें क्रय करने के लिये बाध्य नहीं कर सकती है, न ही कम मात्रा, अकुशल प्रबन्ध और अति पूंजीकरण से संचालन की न्यून लागतों की आशा कर सकती है । सफल सहकारी संस्थायें इसलिये सफल नहीं हुई कि उन्होंने अर्थशास्त्र के नियमों को अस्वीकार किया, लेकिन इसलिये सफल हुई क्योंकि उन्होंने इन नियमों के अनुसार अपनी गतिविधियों का निपुणता से संचालन किया । इस प्रकार उन्होंने प्रतिस्पर्धा का मुकाबला किया । उन्होंने अपने संचालन की कुशल और व्यवहारिक रीतियों द्वारा व्यापार में विश्वास प्राप्त किया । विपणन में सुधार करने के प्रभावकारी साधन के रूप में किसानों ने सहकारी रीति को करते चुना । इसका आशय जानने के लिये उत्पादों के क्रय की लागतों में कमी करने और बेचे गये कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि करने की विभिन्न रीतियों पर विचार करना आवश्यक है इसके निम्न पांच विकल्प हैं:-

1. प्रतिस्पर्धा
2. एकाधिकार
3. सरकारी नियम
4. राजकीय वितरण
5. सहकारिता

विपणन की लागतों को कम करने तथा किसानों को दिये गये जाने वाले मूल्यों में वृद्धि की जाने वाली शक्ति के रूप में प्रतिस्पर्धा ने अपने आप के सुधार का विश्वसनीय माध्यम प्रमाणित नहीं किया । "जियो और जीने दो" के अच्छे पड़ोसी की नीति और कृषि उत्पाद के क्रेताओं में साँठ-गाँठ केसाथ प्राथमिक बाजारों में विशाल निगमों द्वारा आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण ने कृषि उत्पादों के क्रय में एक अविश्वस्त और दुर्बल शक्ति बना दिया । यदि कृषि उत्पादों में एकाधिकार का प्रचलन का परिणाम कार्य मेंसुस्पष्ट मितव्ययिताएं होता, फिर भी इसकी सुनिश्चितता नहीं होतीकि ऐसे लाभ उच्चतर मूल्यों के रूप में किसानों को अथवा न्यून फुटकर मूल्यों के रूप में उपभोक्ताओं को प्राप्त होगें । एकाधिकारों से डरने का न्यायसंगत कारण है क्योंकिग्रामीण समाजों में जहांकेवल एक व्यापारी उत्पादकों के उत्पादों का हस्तन करता है ।, किसानों के अनुभव ने बार-बार प्रकट किया है ।

उत्पादक और उपभोक्ता, दोनों केलिये एक रक्षोपाय के रूप में व्यापार के सरकारी नियमन शासन केलोकतांत्रीय रूप के अन्तर्गत पूर्णता प्रभावकारी होने केआयोग्य साबित हुआ है । केन्द्र या राज्योंकेविधान मण्डल द्वारा पारित अधिकांश नियंत्रक विधानों का निजी उपक्रमों द्वारा तीव्र विरोध किया गया है । विधान अक्सर एकमध्य मार्गी उपाय होता है जिसे विधान मण्डल के द्वारा पारित किये जाने के दौरान उसके विरोधियों द्वारा बहुत कमजोर और प्रभावहीन कर दिया जाता है । इसके अतिरिक्त, ऐसेविधान के प्रवर्तन को प्राय: अकर्मण्य आयोगों और न्यायालयों द्वारा व्यर्थ कर दिया जाता है । अक्सर सूक्ष्मतमप्राविधिकता पर अपराधियों के अभियोजन में बाधा डाली जाती है तथा कानून की भावना का

उलंघन होता है । इस प्रकार यद्यपि सरकारी नियमन वांछित है, वास्तविक तथ्य किसानों और उपभोक्ताओं को विश्वास नहीं दिलाते कि उनके हितों को पूर्ण सुरक्षा होगी अभी ऐसा कोई संकेत नहीं है कि सरकार कृषि उत्पादों की वितरण एजेन्सी बन जायेगी । हमारी लोकतंत्रीय सरकार में नारा यह रहा है कि व्यापार में कम सरकार, लेकिन सरकार में अधिक कार्य" । अभी कोई विश्वास नहीहै कि सरकार द्वारा संचालित व्यापार किसानों के हितों का श्रेष्ठ प्रवर्तन करेगा ।इस तथ्य केकारण कि सरकारका समाज मेंसभी समूहों के प्रति उत्तरदायित्व है ।

उपर्युक्त विवेचन रीतियों में सेकिसी का भी परिणाम उत्पादकों और उपभोक्ताओं का दीर्घकालीन लाभ नहीं हुआ है । कारण यह हो सकता है किसरकारी वितरण केआधीन को छोड़कर लाभ सदैव वितरण कीलाभ सीमा केएकभाग का निर्माण करता है । सहकारी एजेन्सी एकमात्र सुदृण माध्यम प्रमाणित हुई है जो लाभ प्रेरणा को विलुप्त करती है ।इस योजना में मध्यस्थों केलाभ उच्चतर भावों के रूप में उत्पादकोंको अथवा न्यूनतममूल्यों के रूप में उपभोक्ताओं को प्राप्त होते हैं । सरकारी रीति किसानों के लिये अधिक हितकर है क्योंकि यह उस पर आधारित है जोकिसानों द्वारा बेचा जाना है अर्थात कृषि उपजें न कि उस पर आधारित हैं जिसकी कई किसानों के पास कमी है, अर्थात पूंजी ।

जबतक व्यापारी की सफलता पूंजीविनियोग की उपेक्षा संरक्षण पर अधिक निर्भर है, यह स्पष्ट है किव्यापार का सहकारी संघ, संगठन के सामान्य सामूहिक रूप की अपेक्षा, कृषि उपजों केविक्रय के व्यापारकेलिये अधिक उपयुक्त है । इसमें संशय नहीं किसहकारीकम्पनी में पूंजी कीआवश्यकता होतीहै लेकिन यह

महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना संरक्षण जो स्वयं पूंजी ऋणों का आधार बन सकता है । कई सहकारीसंस्थाएं पूंजी विनियोग के बिना प्रारम्भ की गई, संरक्षकों के उत्पादों पर ऋण लिया और सफल हुई । लेकिन संरक्षण के बिना पूंजी की कोई मात्रा व्यापार को सफल नहीं बना सकती ।[81]

II द्वितीय आधार भूत सिद्धांत : अध्ययन की दृष्टि से आधारभूत सिद्धांत को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत बांटा जा सकता है :-

(1) ऐच्छिक संगठन : यह सहकारी संगठन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख सिद्धांत है । इसके अनुसार इन संगठनो की सदस्यता ऐच्छिक है अर्थात् लोगों की इच्छा पर है कि ये इसके सदस्य बने अथवा नहीं । सदस्यता के लिये कोई दबाव नहीं डाला जाता । इसी प्रकार स्वेच्छा से सदस्यता का परित्याग किया जा सकता है । ऐच्छिक सदस्यता के परिणाम स्वरूप समय-समय पर नये सदस्य सहकारी संगठनों में शामिल होते हैं और पुराने सदस्य संस्था में या तो कार्य करते हैं अथवा संस्था से चले जाते हैं परिणामत: नये-नये सदस्यों के प्रवेश करने से उनकी कार्य शैली में गुणात्मक परिवर्तन आता है ।

(2) प्रजातन्त्रीय नियंत्रणं : यह भी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है । इसके अनुसार प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का होता है चाहे उसके पास एक से अधिक अंश हो क्यों

---

81. कुम्भट एवं अग्रवाल, विपणन प्रबन्ध, किताब महल, पृष्ठ 625

न हो । जैसा कि स्पष्ट है कि लोकतंत्रीय व्यवस्था में प्रत्येक निर्णय समानता के आधार पर जन कल्याण के उद्देश्य से लिये जाते हैं । सहकारिता की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ही शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना एवं समाता की स्थिति लाना है । बहुत से सदस्यों के पास इस सन्दर्भ में एक से अधिक अंश होते हैं ऐसे सदस्य चाहे कि प्रत्येक अंश में आचार पर मत दिया जाय तो इसके अन्तर्गत शक्ति का केन्द्रीयकरण होने की आशंका है प्रत्यक सदस्य चाहे वह एक अंश का स्वामी है या इससे अधिक उसे वास्तव में एक ही मत देने का अधिकार है ।

§3§ <u>आधिक्य वितरणः</u> सहकारी संस्थाओं का महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने सदस्यों को अधिक से अधिक सेवा प्रदान करना है और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ये संस्थाएं बनायी जाती है । ये लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता देती है । यदि जन कल्याण एवं सेवा भाव के साथ=साथ इन्हें लाभार्जन होता है तो उसको सदस्यों में उनके व्यवहारों के अनुपात में बाँट दिया जाता है ।

§4§ <u>सहकारी संस्थाओं में सहकारिताः</u> सहकारी संस्थाओं में सहकारिता को विकास एवं सदस्यों को इसकी प्रेरणा देने के लिये अनेक महत्वपूर्ण प्रभावशाली कदम उठाये जाते हैं । ये संस्थाएं अपने सदस्यों में सहकारिता की भावनाओं का विकास करने के लिये तरह-तरह की योजनाए अपनाती है । सहकारी संस्थायें नीचे से ऊपर तक विभिन्न सहकारी संस्थाओं से संबंधित होती है जिससे संस्थाओं में आपसी सहकारिता का विकास होता है ।

§5§ पूंजी पर सीमित ब्याजः सहकारी संस्थाओं को वित्तीय संस्थायें सुगमता से ऋण प्रदान करती है और ऋण पर बहुत ही रियायती दर से ब्याज लेती है । ये संस्थाएं चूंकि जनकल्याणके उद्देश्य से स्थापित की जाती हैं और इनकी स्थापना अधिक से अधिक सेवा प्रदान करना है अतः वित्तीय संस्थाए इन्हें उदार नीति के आधार पर ऋण देती है । इस प्रकार इन संस्थाओं का सिद्धांत पूंजी पर एक निश्चित और सीमित दर से ब्याज का भुगतान करना है जिससे पूंजी एकत्रित करने में कठिनाई न हो ।

III सामान्य स्वीकृति सिद्धान्तः सामान्य स्वीकृति सिद्धान्त निम्नलिखित है-

§1§ पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायताः सहकारी संस्थायें प्रायः अपने साधनों पर निर्भर रहती है इसी को हम आत्म सहायता कहते हैं । पारस्परिक सहायता का अर्थ है एक दूसरे को सहायता करना । ये संस्थायें अपने कार्यों से अपना विकास करती हैं । इसके लिये ये अपने सदस्यों को प्रशिक्षित भी करती है । आत्म सहायता व पारस्परिक सहायता सहकारिता केमूल तत्व है ।

§2§ सेवा का सिद्धान्तः सहकारी संस्थाओं का उद्गम एवं प्रादुर्भाव समाज में व्याप्त शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त करना है । इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये ये संस्थाएं निःस्वार्थभाव से अपना कार्य करती है । ये लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता देती हैं जिससे कि सदस्यों में कार्यों के प्रति उत्साह

एवं निस्वार्थ की भावना जागृत हो । यदि सेवा भाव के साथ कार्य करने पर इनको लाभ प्राप्त हो जाता है तो उसका वितरण ये अपने सदस्यों में उनके व्यवहार के आधार पर कर देती है ।

§3§ समानता का सिद्धान्तः सहकारिता में सभी सदस्यों के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है । प्रत्येक सदस्य चाहे वह एक अंशों का स्वामी हो या अधिक अंशों का उसे एक ही मत देने का अधिकार होता है । इस प्रकार ऐसे सदस्य जो अल्पसंख्यक अर्थात कम या एक ही अंश को क्रय करते हैं उन्हें भी वही सारे अधिकार प्राप्त होते हैं जो बहुसंख्यक अंश वाले सदस्या को प्राप्त होते हैं । लेकिन लाभ या अधिक्य उनके क्रय या विक्रय के अनुपात में बाँटा जाता है ।

§4§ सामाजिक स्वामित्व सिद्धान्तः सहकारी संस्थाए निजी संस्थायें मानी जाती है लेकिन इनका स्वामित्व सदस्यों पर आधारित है तथा सदस्यों का संस्था की सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं होता । कोई भी व्यक्ति सदस्यता ग्रहण कर सकता है, सहस्वामी बन सकता है और सहकारी संस्थाओं की सेवा से लाभ उठा सकता है ।

§ § गैर आवश्यक सिद्धान्तः इन सिद्धान्तों को व्यवहारिक सिद्धांत भी कहते हैं कुछ देशों में इनको सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया है । ये सिद्धांत निम्नवत हैः

§1§ अवैतनिक सेवा सिद्धान्तः प्रारम्भ में इस सिद्धांत को माना गया और प्रवर्तकों ने सहकारिता कीसफलता केलिये अवैतनिक कार्य किया ।छोटे आकार की

सहकारिता में यह आज भी संभव है लेकिन बड़े आकार में यह संभव नहीं है। इसी कारण आज इनके संचालन हेतु वेतन भोगी कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है।

§2§ <u>उपभोक्ता का संरक्षण सिद्धान्तः</u> सहकारिता का यह सिद्धान्त उपभोक्ता को व्यापारियों की बुराइयों से बचाता है। सहकारी संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे उपभोक्ताओं के साथ ईमानदारी का व्यवहार करेंगे।

§3§ <u>नकद विक्रय का सिद्धांतः</u> कुछ देश जैसे स्वीडन, फिनलैण्ड तथा स्विटजरलैण्ड इसको एक सिद्धांत मानते हैं और इन देश में सहकारी व्यवहारों में नकद बिक्री पर विशेष जोर दिया जाता है।

सहकारी विपणन के लाभ

भारत में सहकारी विपणन का बहुत महत्व है। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को सहकारी संस्थाओं के द्वारा कृषिजन्य उपजों के प्रणालन से बढ़ाया जा सकता है। व्यक्तियों द्वारा विपणन की अपेक्षा सामूहिक विपणन की व्यवस्था करना अधिक लाभप्रद है, विशेष रूप से उन परिस्थितियों में जहां उत्पादक बहुत छोटी इकाइयों में हो। कृषि उपज का सहकारी अथवा सामूहिक विपणन न केवल अत्यधिक कुशलता की दृष्टि से, बल्कि उत्पादक की सौदा बनाकर उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये भी आवश्यक है।

•शर्मा एवं जैन, बाजार, व्यवस्था, प्रकाशनसाहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 205 से 206

•शाही कृषि उद्योग 1928

•विपणन उप-समिति 1944

इस प्रकार सहकारी विपणन के अनेक लाभ हैं लेकिन इन सभी लाभों को एक वाक्य से प्रदर्शित किया जा सकता है कि "सहकारी विपणन कृषक की स्थिति को विक्रेता के रूप में सुदृढ़ बनाता है। उसकी उपज के नियमित रूप से बिकने का विश्वास स्थापित करता है और उनको अच्छे दाम पर बिकने में योग्य बनाता है।"[85] यही नहीं यह व्यवस्था कृषकों को यह सिखाती है कि कृषि एक प्रकार का व्यवसाय है। जिसके लिये विभिन्न प्रकार की व्यवसाय नीति का पालन करना आवश्यक है।[86] संक्षेप में सहकारी विपणन के अग्रलिखित लाभ है।-

§1§ <u>मध्यस्थों का अन्त</u> :- सामूहिक विपणन का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि उपभोक्ता व उत्पादक या निर्माता के बीच मध्यस्थों की जो श्रृंखला बनी होती है उसका अन्त हो जाता है जिससे उपभोक्ता व उत्पादक दोनो को लाभ होता है। मध्यस्थ बड़ी मात्रा में निर्माताओं से वस्तुओं की क्रय करके उनका संग्रह कर लेते हैं और उसकी कृत्रिम कमी पैदा कर देते हैं और मांग बढ़ जाने पर उसका ऊँचे मूल्यों पर विक्रय कर देते हैं परिणामत: उपभोक्ता को वस्तु की बहुत अधिक कीमत देनी पड़ती है। मध्यस्थों का अन्त होने से उपभोक्ता को वस्तु सस्ती मिल जाती है तथा उत्पादक को अपनी वस्तु का उचित मूल्य मिल जाता है।

---

85. शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन, आगरा, पृष्ठ 205-206

86. दि क्वापरेटिव प्लानिंग कमेटी, 1945

(2) <u>बाजार अवस्थापना</u> :- किसानों के लिये भण्डारगृहों, गोदामों, परिवहन, श्रेणीकरण, आदि की व्यवस्था सहकारी संघ नाममात्र के शुल्क पर कर सकते हैं। इन सुविधाओं की स्थापना के लिये ये संघ सरकार से कुछ सीमा तक वित्तीय सहायता प्राप्त करते है। सहकारी संघों द्वारा मूल्यों मांग, उत्पादन आदि पर न्यूनतम सूचनायें नियमित रूप से अपने सदस्यों के भेजने की व्यवस्था कर सकते है। इस प्रकार कृषिजन्य वस्तुओं के विपणन के लिये आवश्यक बाजार अवस्थापना का निर्माण ऐसे संघों द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

(3) <u>सामूहिक मोलभाव व अधिक मूल्य का लाभ</u> :- सहकारी विपणन का यह बहुत ही महत्वपूर्ण लाभ हैं। व्यक्तिगत रूप से उत्पादक में मोलभाव करने की शक्ति नहीं होती है। लेकिन सहकारिता में संगठित होकर सामूहिक क्षमता आ जाती है। जिसका प्रभाव यह पड़ता है कि उसको वस्तु का मूल्य कुछ अधिक मिल जाता है तथा वृहत खरीद व बिक्री के लाभ का भी भागी बन जाता है।

(4) <u>साख, संसाधन को जोड़ना</u> :- विपणन के क्षेत्र में सहकारिता या तो कृषि के ऐसे अन्य पहलुओं, जैसे साख, संसाधन और कृषि को व्याप्त करते हुए विस्तार कर सकती है, अथवा सहकारी विपणन संस्थाओं के क्रियाओं को इन कार्यों में व्यवहार करने वाली अन्य संस्थाओं से जोड़ सकती है। बाद वाली दशा में बहुउद्देश्य की संस्थाएं होंगी जो कृषि, संसाधन साख और विपणन की विभिन्न गतिविधियों से व्यवहार करने की आवश्यकता और सरलता के कारण, विशिष्ट प्रयोजन संस्थाओं से उत्तम होती है।

§5§ <u>निवेशों और उपभोक्ता माल की आपूर्ति करना</u> :- सहकारी विपणन संस्थाएं बीजों, उर्वरकों, जीवनाशकों, उपकरणों, आदि जैसे निवेशों तथा किसान के लिये आवश्यक उपभोक्ता माल, जैसे कपड़ा, माचिस, मिट्टी का तेल आदि की सरलतम से और सस्ते में आपूर्ति करने का उत्तरदायित्व ले सकती है । किसानों को उपलब्ध कराने के लिये दी गयी वित्तीय सहायता या धन को उनकी उपजों के विक्रय में से काटा जा सकता है । इसके अतिरिक्त विपणन संघ द्वारा थोक मूल्यों पर निवेशों और उपभोक्ता माल को खरीदा जा सकता है तथा सस्ती दर पर अपने सदस्यों को बेचा जा सकता है ।

§6§ <u>बाजार की बुराइयों से छुटकारा</u> :- सहकारी विपणन हो जाने से किसान बाजार की विभिन्न प्रकार की बुराइयों जैसे कर्दा काटना, धर्मादा काटना, आढ़त, पुलाई, गौशाला, चौकीदारी, आदि से बच जाता है । सहकारी विपणन समिति में कुछ निश्चित खर्चे निश्चित दर पर ही लिये जाते हैं ।

§7§ <u>संग्रह की सुविधा</u> :- उत्पादकों के पास पदार्थ एकत्रित करने के लिये उचित साधन नहीं होते हैं उनके पास तो वही पुराने रूढ़िवादी साधन होते है । सहकारी विपणन समितियाँ आधुनिक वैज्ञानिक साधन संग्रह की सुविधा अपने सदस्यों को उपलब्ध कराती है । इनके माल को सुरक्षित रखने का भी व्यय बहुत कम लिया जाता है । संग्रह की सुविधा होने से माल खराब नहीं होता है और बाजार की परिस्थितियाँ अपने पक्ष में आने तक माल को रोक कर रखा जा सकता है ।

§8§ वित्तीय सुविधा :- सहकारी विपणन समितियों को विभिन्न प्रकार की वित्तीय संस्थायें सुगमता से ऋण रियायती ब्याज पर देती है और ये संस्थायें वास्तव में अपने सदस्यों को आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता करती हैं और साहूकारों के चंगुल में फंसने से बचाती हैं । इन समितियों की ब्याज की दरें बहुत कम होती हैं ।

§9§ उचित तौल की सुविधा :- सहकारी विपणन का एक लाभ यह भी है कि नाप तौल इन समितियों द्वारा ठीक तरह से की जाती है, जब कि इसके अभाव में नाप तौल बाजार में उचित तरीके से नहीं होती है । यद्यपि सर-कार ने इस संदर्भ में कानून बना लिये हैं लेकिन फिर भी विभिन्न प्रकार के तौल के बाट बाजारों में पाये जाते हैं ।

§10§ सरकार की सहायता :- सहकारी संस्थायें सरकार को कृषि पदार्थ खरीदने सहायता करती हैं जिससे कि सरकार इस प्रकार के एकत्रित कृषि पदार्थों को उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से जन साधारण को वितरित कर सकें ।

§11§ एकत्रीकरण की सुविधा :- सहकारी विपणन समितियां अपने सदस्यों की सुविधा के लिये गांव में ही उपज को एकत्रित करने के लिये क्रय केन्द्र खोल देती है जिससे कि वे अपनी उत्पत्ति को बाजार में ले जाने की परेशानी से बच जाते हैं । यह सुविधा उन उत्पादकों के लिये बहुत ही लाभप्रद है जिनके पास उत्पत्ति ले जाने के साधन नहीं है ।

§12§ <u>अन्य लाभः</u> सहकारी विपणन से अन्य लाभ भी है जैसे-

§अ§ उचित मूल्य पर रासायनिक खाद, उत्तम बीज व औजार, समितियाँ द्वारा सदस्यों को बेचना ।

§ब§ आवश्यक व लाभप्रद सूचनायें सदस्यों को देना जिससे उत्पत्ति में परिवर्तन किया जा सके ।

§स§ गाँव में समितियों द्वारा अन्य सामाजिक उत्थान के कार्य करना जिससे जीवन स्तर में उन्नति हो ।

<u>सहकारी विपणन का उद्गम आर विकास</u>

भारत में सहकारी विपणन का प्रारम्भ सहकारी समितियाँ अधिनियम 1912 के पास होने से हुआ है जिसमें गैर- साख समितियाँ के बनाने की सुविधा सर्वप्रथम दी गई थी इससे पहले का अधिनियम सहकारी साख समिति अधिनियम 1904 सिर्फ साख समितियाँ के बनाने के लिये था । 1912 के अधिनियम के विपणन समितियों की स्थापना की शुरूआत की जिसके अनुसार देश में कृषि पदार्थों की बिक्री, औजार व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समितियाँ स्थापित होने लगी । अक्टूबर 1914 में सरकार ने एडवर्ड मैकमिलन की अध्यक्षता में एक समिति बनायी । जिसने अपनी रिपोर्ट 1915 में दी और गैर साखसमितियों को प्रोत्साहन देने की सिफारिश की ।

भारत में पहली सहकारी विपणन समिति बम्बई राज्य में हुबली नामक स्थान पर 1915 में बनायी गयी थी इसके बाद दूसरी समिति बम्बई राज्य में गडक नाम स्थान पर 1917 में बनी । धीरे-धीरे इन समितियों की संख्यामें वृद्धि

ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति, 1957 ने यह पाया कि उसके सर्वेक्षण के लिये चयनित 75 जिलों में से 63 जिलों में कोई सहकारी विपणन नहीं होना था। शेष जिलों में कृषि उपजों के विपणन में सहकारिताओं का अंश सभी एजेन्सियों को बेचे गये उत्पादों का एक प्रतिशत मात्र था। इस प्रकार ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति के प्रतिवेदन के पश्चात सहकारी विपणन की गति में तेजी आयी। समिति ने साख को विपणन से जोड़ने का सुझाव दिया। तब से कृषि उपजों से व्यवहार करने वाली समितियों की संख्या में वृद्धि हुई। इन समितियों की संख्या - 1957-58 में 1899 से बढ़कर 1971-72 में 3260 हो गई।

स्वतन्त्रता के पश्चात सन् 1952 में रिजर्व बैंक ने ग्रामीण साख जांच समिति जो श्री ए. डी. गोखाला की अध्यक्षता में बनायी इसी से सहकारी विपणन को काफी बल मिला तथा 1955 में राज्य सहकारी मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें इस बात का लक्ष्य निर्धारित किया कि मंडियों में बेची जाने वाली कृषि उपज का 10 प्रतिशत अगले 5 वर्षों में सहकारी समितियों में बेचा जाय।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं विकास:

प्रथम पंचवर्षीय योजना में सहकारिता साख के साथ-साथ सहकारी विपणन के विकास पर भी बल दिया गया, लेकिन कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किये गये। 1955 के ग्रामीण जांच समिति के सुझावों को सरकार ने स्वीकार कर लिया तथा कृषि उपज अधिनियम के आधीन एक सहकारिता विकास तथा माल गोदाम मण्डल की स्थापना की गई। मण्डल को विपणन, संचालन, भण्डारण तथा गोदामों की योजना बनाने तथा कार्यक्रम का प्रवर्तन करने का कार्य सौपा गया

लेकिन साख समिति के विचारानुसार प्रथम योजना की अवधि में सहकारी विपणन के विस्तार के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किये गये । वर्ष 1955-56 में सहकारी विपणन समितियों द्वारा केवल 53 करोड़ रूपयों की बिक्री की गई । द्वितीय योजना में 1800 प्राथमिक विपणन समितियों, एवं संसाधन समितियों प्राथमिक विपणन समितियों के लिये 1500 गोदामों और 23 शीर्ष विपणन समितियों की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा गया । दूसरी योजना की अवधि में लगभग 1,670 गोदाम तथा 378 संसाधन इकाइयों की स्थापना की गई । अन्तर्राज्यीय व्यापार बढ़ाने तथा शीर्ष विपणन समितियों के कार्यों को समरिक्त करने के लिये एक राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ की स्थापना की गयी ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में सहकारी विपणन व्यवस्था के विकास के लिये निम्न लक्ष्य निर्धारित किये गये:

-544 नवीन विपणन समितियों की स्थापना करना ।

-कृषि उपज की बिक्री की मात्रा में दुगनी वृद्धि करना ।

-980 अतिरिक्त गोदामों की स्थापना करना, आदि । तृतीय योजना के अन्त में सहकारी विपणन समितियों की स्थिति तालिका नं. १ में दर्शायी गई है ।

तालिका नं. 9

सहकारी विपणन समितियों की स्थिति

सहकारी समितियों की (किस्म) स्तर	सं.	1960-61 सदस्यता लाख में	कार्यशील पूंजी करोड़में (रू0)	विक्रय सं. करोड़ में (रू0)	सं.	सदस्यता लाख में	कार्यशील पूंजी करोड़में (रू0)	विक्रय करोड़ में (रू0)
1. सर्वोच्च विपणन समितियाँ	24	0.05	9.09	42.90	29	0.07	48.07	154.68
2. जिला विपणन समितियाँ	71	0.16	10.34	31.27	155	0.82	17.28	80.78
3. प्राथमिक विपणन समितियाँ	3108	14.77	28.21	88.72	3148	22.80	63.72	309.66

स्त्रोत : कुम्भट एवं अग्रवाल, विपणन प्रबन्ध, किताब महल, पृष्ठ 530

चौथी योजना में सहकारी समितियों का लक्ष्य 80 लाख मीट्रिक टन खाद्यान्न, 360 लाख मीट्रिक टन गन्ना, 6 लाख मीट्रिक टन मूंगफली, 10,000 मीट्रिक टन फल और सब्जी तथा 18 लाख गांठे कपास के व्यापार का रखा गया । विपणन समितियों द्वारा कुल व्यापार का लक्ष्य 900 करोड़ रूपये था । इस प्रकार चौथी योजना में सहकारिता के सर्वांगणीय विकास का लक्ष्य रखा गया और इसके विकास एवं विस्तार के लिये पर्याप्त एवं प्रभावशाली कदम उठाये गये । योजना की अवधि में सहकारी विपणन समितियों से 1100 करोड़ रूपये के माल का व्यापार किया तथा 350 करोड़ रूपये के उर्वरक बेचे ।

पांचवी योजना में 100 नवीन विपणन समितियां बनाई जाने का लक्ष्य रखा गया । ऐसा अनुमान लगाया गया कि ये अन्तिम वर्षों में 19000 करोड़ रूपयों का व्यापार कर सकेगी 80 करोड़ रूपये का अर्न्तराज्यीय व्यापार तथा 15 करोड़ रूपये का निर्यात कर सकेगी । यद्यपि इस अवधि में सहकारी विपणन अपने नियोजित कार्यक्रमों को करने में सफल नहीं हो सकता तथापि इस अवधि में सहकारी समितियों की संख्या में बृद्धि हुई । देश में 1974-75 में 3287 समितियां तथा 2688 सामान्य उद्देश्य हेतु, 590 विशेष उद्देश्य हेतु समितियां थी । इनकी सदस्य संख्या 31 लाख थी तथा इनकी कार्यशील पूंजी 288 करोड़ रूपये थी । समितियों ने 1975-76 में 1560 करोड़ रूपये के मूल्य का कृषि उत्पादन किया ।[87]

इस प्रकार छटवीं तथा सातवीं योजना में इसकी प्रगति में गुणात्मक

87-वार्षिक रिपोर्ट, खाद्य एवं आपूर्ति मंत्रालय, भारत सरकार 1976-77

वृद्धि हुई । इसकी प्रगति की समीक्षा करने के उद्देश्य से सन् 1981 में एक समिति गठित की गई जिसने कि सुझाव दिया कि इसके विकास और विस्तार में और तेजी लानी चाहिये । समिति का मत था कि आज भी भारतीय कृषक साहूकारों या महाजनों के चंगुल में फंसा होने के कारण अपनी उपज उचित मूल्य निर्भता पूर्वक नहीं बेच पाता और उनका शोषण होता है । सहकारी विपणन ही इस समस्या व एकमात्र समाधान है और इसके लिये सदस्यों में सहकारिता की भावना के वृद्धि को आवश्यकता है । परिणामस्वरूप वर्तमान में सहकारी समितियों की संख्या में अभूत पूर्व वृद्धि हुई है और इनके व्यापार में भी वृद्धि संभव हो सकी है ।

भारत में सहकारी विपणन का संगठन

भारत में सहकारी विपणन का संगठन निम्न प्रकार का पाया जाता है:-

1. प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां
2. केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियां
3. प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियां
4. राष्ट्रीय सहकारी विपणन संघ

1. प्राथमिक सहकारी विपणन समितियाँ:

ये समितियां गांव के स्तर पर कार्य करती है तथा अपने सदस्यों के लाभ के लिये कृषि सम्बन्धी पदार्थों का क्रय विक्रय करती है । एकत्रीकरण व

4. सहकारी समितियां किसानों को उत्पत्ति के लिये खाद, बीज, कृषि यन्त्र एवं उपकरण तथा अन्य आवश्यक साज सामान उपलब्ध करती है जिससे कि कृषि उपज उत्तम प्रकार की हो ।

5. सहकारी समिति अपने सदस्यों को आवश्यकता के समय वित्तीय सहायता भी करती है जिससे कि वे महाजन, आदि के चंगुल में न फंस जायें ।

6. जब कभी भी सरकार नियन्त्रित वस्तु का वितरण या उगाई करती है तो यह समितियां सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है ।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त यह समितियां सदस्यों के उपज को बाजारों में पहुंचाने का कार्य भी करती हैं । इसके लिये परिवहन व्यवस्था की जाती है । सदस्यों में बचत, आत्म-सहायता व सहकारी भावनाओं का भी विकास किया जाता है ।

2. केन्द्रीय सहकारी विपणन समिति:

प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों के उपर केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियां होती हैं । इन समितियों को केन्द्रीय संघ या परिषद भी कहते हैं । इन समितियों का कार्य प्रारम्भिक समितियों व अपने सदस्यों की सहायता करना, क्रय विक्रय करना व अपना सम्बन्ध प्रान्तीय समिति से रखना है । यह समितियां वो सभी कार्य करती है जो प्राथमिक समितियों के द्वारा किया जाता है । यह समितियां शहरों व कस्बों में पायी जाती है । सहकारी

विपणन के विकास में केन्द्रीय सहकारी समिति की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है । ये सदस्यों को न केवल आर्थिक सहायता देते हैं वरन् उनके सामाजिक विकास एवं सहकारिता की भावना के विस्तार पर बल देते हैं । 1977-78 में इस प्र कार के समितियों की संख्या 370 थी जो 1986-87 में बढ़कर लगभग 440 हो गयी ।

3. प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियाँ:

इस प्र कार की समितियां प्रान्त भर में चल रही समितियों के उपर सर्वोच्च संस्था के रूप में कार्य करती है तथा केन्द्रीय समितियों के माध्यम से प्राथमिक समितियों की सहायता करती है इन प्रान्तीय समितियों द्वारा वे सभी कार्य किये जाते हैं जो केन्द्रीय व प्राथमिक समितियों करती हैं । प्रान्तीय सहकारी विपणन समितियों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य पूरे प्रान्त में सहकारिता का विस्तार एवं विकास करना है और अधिक से अधिक संतोष अपने सदस्यों को प्रदान करना है । ये समितियां प्रायः प्रदेश की राजधानी में पायी जाती है । इस समय 23 प्रान्तीय समिति कार्य कर रही हैं । भारत में इस प्र कार की समितियों का विकास बहुत मन्दगति से हुआ है ।

4. राष्ट्रीय सहकारी विपणन संघ:

राष्ट्रीय स्तर पर भारत में सिर्फ एक संस्था है जो कृषि कार्य के लिये है तथा जिसका नाम राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ है । इसका मुख्य कार्यालय नई दिल्ली में है ।

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन

उत्तर प्रदेश सहकारी विपणन में काफी आगे हैं और इस राज्य ने इस क्षेत्र में विशेष रूप से सफलता प्राप्त की है । सम्पूर्ण भारत में सहकारी बिक्री के आधार पर उत्तर प्रदेश की कृषि विपणन समितियों, गन्नापूर्ति समितियों, एवं घी पूर्ति यूनियन व समितियों का स्थान प्रथम है तथा दुग्ध पूर्ति यूनियन व समितियों का पांचवा स्थान है । इन समितियों की प्रगति एवं विकास अन्य राज्यों की अपेक्षा काफी द्रुतगामी रहे हैं । इन समितियों की प्रगति निम्न प्र कार से हुई ।

1. कृषि विपणन समितियाँ:

आज सम्पूर्ण भारत की कृषि विपणन समितियों की कुल बिक्री में उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है । प्रदेश में तीन प्रकार की समितियां पाई जाती हैं ।

(अ) प्रान्तीय समिति (ब) केन्द्रीय समिति एवं

(स) प्राथमिक समिति

(अ) प्रान्तीय समिति:

प्रान्तीय या राज्य स्तर पर प्रान्तीय सहकारी विपणन एवं विकास फेडरेशन है । जिसका कार्य केन्द्रीय व प्राथमिक समितियों के कार्यों को समन्वित करना व इनको सहायता पहुंचाना है । 30 जून 1970 को समाप्त होने वाले वर्ष में इसकी कार्यशील पूंजी 25.96 करोड़ रुपये थी । इस वर्ष इस फेडरेशन ने

8.17 करोड़ रूपये के मूल्य के कृषि पदार्थों का विक्रय किया । 30 जून 1974 को इसकी कार्यशील पूंजी बढ़कर 66.87 करोड़ रूपये हो गई है तथा इसी वर्ष में इसने 25.53 करोड़ रूपये की कृषि उपज की बिक्री की है । 1986-87 में कृषि उपज की बिक्री 50 करोड़ रूपये रखा गया था और इस समिति ने लगभग अपने लक्ष्य को पूरा कर लिया था ।

(ब) केन्द्रीय समिति:

यह केन्द्रीय समिति जिला स्तर पर काम करती है । इनका कार्य प्राथमिक समितियों के कार्यों में सहायता पहुंचाना है । इस समय 187 केन्द्रीय समितियां उत्तर प्रदेश में काम कर रही है जबकि 30 जून 1970 को केवल 51 समितियां काम कर रही थी । 30 जून 1974 को समाप्त हो वाले वर्ष में इन्होंने 175.23 करोड़ रूपये के कृषि पदार्थों का विक्रय किया । वर्तमान में इनके विक्रय में लगभग दुगनी बृद्धि हुई है ।

(स) प्राथमिक समिति:

यह समितियां गांव के स्तर पर पायी जाती है । 30 जून 1974 को इनकी संख्या 241 थी । 1973-74 वर्ष में इन समितियों ने 11.88 करोड़ रू. के मूल्य के कृषि पदार्थ बेचे ।

उत्तर प्रदेश में कृषि पदार्थों की बिक्री का कार्य सर्वप्रथम मुरादाबाद जिला सहकारी बैंक ने किया था लेकिन बाद में हानि होने के कारण बैंक ने

यह कार्य बन्द कर दिया । 1938-39 में सहकारी विपणन विकास के लिये उत्तर प्रदेश कांग्रेस सरकार ने एक पंचवर्षीय योजना बनाई जिससे 1940 में 75 सहकारी समितियां स्थापित हुई । यह संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चल गयी व सन् 1943 में विभिन्न स्तरों पर काम करने वाली समितियों के कार्यों को समन्वित करने के लिये प्रान्तीय सहकारी विपणन एवं विकास फेडरेशन की स्थापना की गयी । 1944-45 में इन समितियों की संख्या 153 हो गयी । सन् 1946 की एक योजना के अनुसार 5 सहकारी समितियां स्थापित की गयी । स्वतन्त्रता के बाद इनकी संख्या में बराबर बृद्धि हो रही है । इस समय 3 प्रान्तीय, 187 केन्द्रीय व 241 प्राथमिक समितियां कार्य कर रही हैं ।

2. गन्नापूर्ति समितियां:

गन्ना उत्तर प्रदेश की मुख्य कृषि उपजों में एक है । प्रारम्भ में गन्ना का प्रयोग गुड़ व खाद आदि के लिये किया जाता था । उस समय गन्ने की बिक्री की कोई समस्या नहीं थी क्योंकि गन्ने के खरीद छोटे स्तर पर होती थी । उत्तर प्रदेश के पास के प्रदेश बिहार में चीनी मिलों की स्थापना व उनके निरन्तर विकास से गन्ने के विपणन में बहुत सी बुराइयां व कठिनाइयां उत्पन्न हो गयी । चीनी मिलों के मालिक प्राय: यह प्रयत्न किया करते थे कि किसान को गन्ने का कम से कम मूल्य दिया जाय । इस उद्देश्य से मिल के दरवाजें पर खड़ी गन्ने से भरी गाड़ियों को कई दिनों तक न तुलवाना, तौल में गड़बड़ी करना, तुरन्त भुगतान न करना व विभिन्न प्रकार की कटौतियां आदि कार्य किया करते थे ।

अतः उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् 1935 में गन्ना विकास विभाग की स्थापना की तथा प्रत्येक मिल मालिक से कहा गया कि वे 3000 रूपये प्रति वर्ष इस विभाग को गन्ना विकास के लिये दे । यह योजना अधिक लाभ प्रद सिद्ध नहीं हुई । सन् 1938 में सरकार ने उत्तर प्रदेश चीनी मिल नियंत्रण अधिनियम व नियम लागू किये । इस अधिनियम का उद्देश्य चीनी मिलों को लाइसेंस देना, गन्ने की पूर्ति नियमित करना व गन्ने को उचित मूल्य निर्धारित करना था । इस अधिनियम में 1939 व 1948 में संशोधन किये गये हैं ।

यहाँ दो प्रकार की समितियाँ पायी जाती है §1§ केन्द्रीय समिति, यूनियन या संघ §2§ प्राथमिक गन्ना पूर्ति समिति । इन सबके कार्यों में समन्वय व सहयोग करने के लिये उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना यूनियन फेडरेशन है । इन सभी यूनियनों व समितियों के कार्यों की देखभाल के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने एक अधिकारी गन्ना आयुक्त के नाम से नियुक्त कर रखा है ।

प्रत्येक वर्ष गन्ने की फसल आने से पहले केन्द्रीय समिति या यूनियन चीनी मिल के आस-पास के क्षेत्रों का सर्वेक्षण करती है और उस वर्ष होने वाले गन्ने के उत्पादन का अनुमान लगाती है जिसके आधार पर यूनियन व समिति मिल मालिकों से अनुबन्ध करती है । मांग और पूर्ति को देखकर पूरे मौसम के लिये एक कार्यक्रम बना लिया जाता है जिसके आधार पर पूरी तैयार की जाती है जो प्राथमिक समिति के माध्यम से गन्ना उत्पादकों तक पहुंचा दी जाती है गन्ना उत्पादक उस पुर्जों में दीये समय पर अपना गन्ना मिल के दरवाजे पर

पहुंचा देता है जहां पर दरवाजे पर लगी मशीन से तौला जाता है व मिल का कर्मचारी माल तुल जाने पर एक लिखित आदेश गन्ना उत्पादक को देता है । जिसके दिखाने पर मिल का रोकड़िया भुगतान कर देता है । कहीं-कहीं भुगतान सहकारी यूनियन को कर देती है जो बाद में मिल से इकट्ठा भुगतान ले लेती है । प्रत्येक मिल के दरवाजे पर गन्ना यूनियन का दफ्तर होता है । जिसका काम गन्ने की उचित तौल कराकर तुरन्त भुगतान दिलाना है । गन्ना समिति व यूनियनों को इस बिक्री पर कुछ कमीशन मिलता है जिसका 1/3 उस क्षेत्र की विकास परिषद को चला जाता है ।

सन् 1938 में अधिनियम के लागू होने पर से उत्तर प्रदेश में गन्ना पूर्ति यूनियनों व समितियों की मात्रा व इनके कार्य कलापों में काफी बृद्धि हुई है । वर्ष 1937-38 में 28 यूनियन थी जिनकी संख्या 1947-48 में बढ़कर 99 हो गयी । 1955-56 में यह संख्या 115 व 1974-75 में 134 हो गयी 1937-38 में यह यूनियन मिलों की 16% मांग को पूरा करती थी लेकिन आज 95 प्रतिशत मांग को पूरा करती है ।

वर्तमान में उत्तर प्रदेश में 134 प्राथमिक यूनियन है इनकी कार्यशील पूंजी 21.18 करोड़ रूपये है । 1969-70 में इन्होंने 120 करोड़ रूपये की कीमत का गन्ना बेचा था जबकि 1974-75 में 178.53 करोड़ रूपये का गन्ना बेचा । इसके अतिरिक्त इन समितियों ने बीज, खाद सीमेन्ट व यन्त्र आदि अपने सदस्यों को वितरित किये । यह यूनियनें गन्ने की बिक्री सदस्यों को ऋण

व आवश्यक पदार्थों को उपलब्ध करने के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करती है जैसे, नये कुए बनाना, पुराने को मरम्मत करवाना, सड़के बनाना व उनकी मरम्मत करवाना, सामाजिक उत्थान के कार्य जैसे स्कूल, दवाखाने व अस्पताल स्थापित करना व उनको चलाना ।

सहकारी यूनियनों व समितियों की सर्वोच्च संस्था उत्तर प्रदेश सहकारी गन्ना यूनियन फेडरेशन है जिसकी 134 यूनियन सदस्य है ।

यह फेडरेशन खाद, बीज व अन्त्र, आदि उपलब्ध कराता है । जिससे कि गन्ने की किस्म व गुण में सुधार हो सके । यह यूनियनों व समितियों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देता है । गन्ना उत्पादकों, संघों व मिलों में ताल-मेल बनाये रखता है । सस्ते दामों पर यूनियनों व उत्पादकों के काम आने वाले रजिस्टर उपलब्ध करता है और यूनियनों व समितियों की योजनाओं का संचालन करता है ।

3. घी यूनियन व समितियाँ:

घी सहकारिता में उत्तर प्रदेश का प्रमुख स्थान है । भारत में इस समय जितनी भी सहकारी यूनियन व समितियां पायी जाती है उनकी 94 प्रतिशत उत्तर प्रदेश में पायी जाती है । सम्पूर्ण सहकारी बिक्री के आधार पर उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है ।

यहां दो प्रकार की समितियां पायी जाती है §क§ सहकारी समिति व §ख§ सहकारी यूनियन । सहकारी समिति गांव स्तर पर काम करती है इसके सदस्य समिति को यह विश्वास दिलाते हैं कि वे हर 15 दिन के पश्चात समिति को घी देते रहेगें । इन समितियों के द्वारा सदस्यों को ऋण भी दिया जाता है । यदि सदस्य समिति को मिलावट करके घी देते हैं तो समिति उसको लौटा देती है तथा उन पर आर्थिक दण्ड लगा देती है, समितियां द्वारा इस प्रकार एकत्रित घी यूनियनों को बेच दिया जाता है । जो अपने यहां प्रयोगशाला में की जांच कर मुहरबन्द टीनों व डिब्बों में भर कर व्यापारियों व उपभोक्-ताओं को बेच देती है । इन डिब्बे व टीनों पर ट्रेड मार्क की मोहर भी यूनियन लगा देती है ।

उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम सहकारी घी समिति आगरा जिले में चौवन का पुरा नामक स्थान पर गठित हुई थी जिसके पश्चात मैनपुरी, इटावा, मेरठ व बुलन्दशहर जिलों में स्थापित हुई । अब अलीगढ़ हाथरस, ऐटा, सहारनपुर, मुरादाबाद, झांसी व उरई आदि स्थानों पर भी यह समितियां व यूनियन गठित हो गयी है । इस समय लगभग 6 यूनियन व 145 समितियां प्रदेश में कार्य कर रही ।। इन समितियों व यूनियनों ने 1974-75 वर्ष में 61 हजार रूपये के मूल्य के घी की बिक्री की ।

4. दुग्ध पूर्ति यूनियन व समितियाँ:

उत्तर प्रदेश का इस क्षेत्र में पंचम स्थान है । पहला स्थान गुजरात व दूसरा स्थान महाराष्ट्र का है । तृतीय व चतुर्थ स्थान क्रमशः तमिलनाडु व केरल

का है । शहरी क्षेत्रों में दूध देने वाले जानवरों को पालने में व्यय अधिक बैठता है । साथ ही शहरी व्यक्ति परिश्रम भी नहीं करना चाहता । शहरों में जनसंख्या बराबर बढ़ रही है । इन सभी कारणों से शहरों में दूध का अभाव रहता है । इस अभाव को दूर करने के लिये प्रदेश में सहकारी दुग्ध पूर्ति यूनियन व समितियां स्थापित हुई है । यह समितियां दो प्रकार की है । §1§ सहकारी समिति §2§ सहकारी यूनियन । सहकारी समिति गांव स्तर पर काम करती है तथा इसके सदस्य उचित समय में समिति को दूध देते हैं । इन समितियों का सम्पर्क यूनियनों से होता है जो अपने सदस्यों से दूध एकत्रित कर शहरी क्षेत्रों में वितरित करने का कार्य करती है । दूध जल्द खराब न हो इस कारण से यह यूनियन वातानुकूलित भण्डारों का भी प्रबन्ध करती है ।

इस दिशा में पहला प्रयत्न 1911 में किया गया जबकि बनारस में सहकारी दुग्ध शाला स्थापित की गयी । इसके बाद इलाहाबाद व लखनऊ में भी दुग्धशाला खोली गयी लेकिन वाराणसी व लखनऊ की दुग्धशालाएं क्रमशः 1927 व 1928 में असफल हो गयी । इसके असफल होने का कारण यह था कि यह दुग्धशालायें मध्यस्थों द्वारा चलायी गयी थी । 1937-38 में दुग्धशालायें ठोस आधार पर संगठित की गयी । 1938-39 में कुल 9 समितियां कार्य कर रही थी लेकिन इनकी संख्या 1947-48 में 109 हो गयी । इसी वर्ष चार यूनियनें भी कार्य कर रही थी । धीरे-धीरे इन यूनियनों व समितियों में बराबर बृद्धि होती रही । इस समय 39 यूनियन व 3140 समितियां उत्तर प्रदेश में कार्य कर रही है । इन यूनियनों समितियों की 1974-75 में कुल बिक्री

क्रमशः 3.86 एवं 14.6 करोड़ रूपये रही है ।[88] जबकि धीरे धीरे इनकी बिक्री में निरन्तर वृद्धि होती रही ।

इस समय आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, कानपुर, मेरठ, हल्द्वानी, अल्मोड़ा आदि स्थानों पर यूनियन कार्य कर रही हैं ।

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन की तुलनात्मक उन्नति के कारण:

उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन के क्षेत्र में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक उन्नति हुई है इसके निम्नलिखित कारण हैं:-

1. उत्तर प्रदेश में सहकारी विपणन समितियों के द्वारा अपने सदस्यों को गांव के साहूकारों व व्यापारियों के प्रतिनिधियों से बचाने और फसल को गांव से ही एकत्रित करने के लिये एकत्रण केन्द्र खोल दिये गये हैं जहां से समिति के कर्मचारी पदार्थों को बड़ी मात्रा में एकत्रित करके समिति के कार्यालय तक पहुंचाते हैं । किसानों व अन्य उत्पादकों को यह लाभ है कि उनको पदार्थ बाजारों तक नहीं ले जाने पड़ते हैं । इस प्रकार आने-जाने की परेशानी से बच जाते हैं ।

2. इन विपणन समितियों की ऋण देने की नीति बहुत उदार है । पहले साख समितियों के द्वारा ऋण भूमि को गिरवी रखकर दिया जाता था

88-रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की रिपोर्ट,अप्रैल, 1977

लेकिन अब यह विपणन समितियाँ सदस्य के इस आश्वासन पर कि वह अपने उत्पादित पदार्थों की बिक्री समिति के माध्यम से ही करेगा, ऋण प्रदान कर देती हैं । यह ऋण नकदी व पदार्थ दोनो में दिया जाता है ।

3. विपणन समितियों के माध्यम से पदार्थ बेचने में उत्पादकों को बहुत से लाभ होते हैं जैसे सही तौल, उचित कटौती, प्रभावीकरण, वर्गीकरण व भण्डारों की सुविधा, बाजारों व महाजनों की बुराइयों से बचत और गोल भाव करने की क्षमता में बृद्धि आदि इन सभी बातों से उत्पादक को उचित मूल्य मिल जाता है ।

4. उत्तर प्रदेश में सरकार की यह नीति है कि आवश्यकताओं को अधिक से अधिक सहकारी समितियों के माध्यम से पूरा करे । साधारणतया प्रदेश का कृषि विभाग अपनी आवश्यकताओं को लिये विपणन समितियों की सहायता लेता है जिससे समितियों के व्यापार में बृद्धि होती है ।

5. राज्य में विपणन समितियों को अपना व्यापार करने से जो लाभ होता है उसका अधिकांश भाग सदस्यों को बोनस व इनाम के रूप में बांट दिया जाता है जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव सदस्यों पर पड़ता है । एक ओर तो उनको पदार्थों के बेचने से लाभ होता है, दूसरी ओर समिति के लाभों में भी भागी बन जाते हैं ।

6. ऋण देते समय यह समितियां सदस्यों से इस बात का लिखित अनुबन्ध कर लेती है कि उत्पत्ति आने पर वे समिति के माध्यम से हीबेचेगें । यदि उत्पत्ति समिति के माध्यम से नही बेची गयी तो ऊंची ब्याज की दर ली जायेगी । इस प्रकार लिखित, नैतिक व कानूनी बन्धन के कारण उत्पत्ति समितियों के द्वारा बेची जाती है जिससे समितियों के कार्य कलाप में वृद्धि होती है ।

7. प्रादेशिक, सहकारी विकास व विपणन फेडरेशन द्वारा जो प्रदेश की सहकारी समितियों की सर्वोच्च संस्था है समय-समय पर सहायता करती है जैसे खरीद व बिक्री में सहायता करना, समितियों के लिये खाद्य औजार व बीज आदि खरीदना, महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध करना, कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों की सेवाओं को आवश्यकताओं के समय समितियों को देना व अपनी बम्बई, कलकत्ता शाखाओं के माध्यम से समितियों के पदार्थों की बिक्री करना, आदि । इन सभी कारणों से प्रदेश में अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक प्रगति हुई है ।[99]

भारत में सहकारी विपणन के दोष

भारत में सहकारी विपणन की प्रगति अन्य देशों की तुलना में बहुत कम व बहुत धीमी गति से हुई है । इसके बहुत से कारण हैं जिनमें निम्न कारण प्रमुख है:

---

89 शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा, पृष्ठ 217 एवं 218

1. सदस्यों में वफादारी का अभाव: सदस्यों में सहकारी विपणन समिति के प्रति वफादारी कम है । वे अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति सदैव इन समितियों के माध्यम से खरीदते हैं और न बेचतें हैं । जिस समय इनको समिति के माध्यम से लाभ होने की संभावना होती है उसी समय समिति की सहायता लेते हैं । इस प्रकार सदस्यों में वफादारी के अभाव के कारण सहकारी विपणन समिति की प्रगति मंद रहती है । ये संस्थाएं यद्यपि अपने सदस्यों की हर तरह से सहायताएं करने की चेष्टा करती हैं तथापि सदस्यगण अवसरवादिता के आधार पर ही समितियों से अपना सम्बन्ध बनाते हैं ।

2. पदाधिकारियों में व्यापारिक योग्यता का अभाव: इन समितियों के पदाधिकारियों में व्यापारिक योग्यता की कमी होती है । सहकारी विपणन समिति की बहुत कुछ सफलता व्यावसायिक योग्यता पर निर्भर करती है इसके लिये यह आवश्यक है कि सदस्यों में व्यवसायिक ज्ञान हो । आज व्यापक प्रतिस्पर्धाओं, उपभोक्ताओं की बदलती हुई रूचि एवं आवश्यकताओं नये-नये बाजारों की स्थापना के परिणाम स्वरूप उपज का विक्रय एक जटिल समस्या है और जब तक सदस्यों में व्यापारिक एवं व्यवहारिक ज्ञान नही होगा तो वे समितियों का विकास नहीं कर सकते ।

3. पदाधिकारियों द्वारा पद का दुरूपयोग: सहकारी विपणन संस्थाओं के जो सदस्य अवैतनिक पदाधिकारी हो जाते हैं उनके द्वारा उचित नैतिक स्तर व ईमानदारी का परिचय नही दिया जाता है । वे सदैव इस बात की चेष्टा

करते हैं कि समिति से अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर लें और इस कार्य के लिये समिति के बही-खातों व अन्य कागजातों में जालसाजी करते हैं । पदाधिकारियों की मानसिकता यह रहती है कि वो चाहे जितना भी कार्य करें उन्हें उनके द्वारा किये गये कार्य का कोई प्रतिफल नहीं प्राप्त होगा । परिणामतः वे अपने पद का दुरूपयोग करने लगते हैं । घूसखोरी और जालसाजी के माध्यम से वे अपना हित देखते हैं न कि समितियों के सदस्यों का ।

4. उचित गोदाम सुविधाओं का अभाव: सहकारी विपणन समितियों के पास धन का अभाव रहता है । इन समितियों के पास इतना धन नही होता कि वो अपने स्वयं के आधुनिक तरीके का गोदाम बनवा सकें । अतः ये किराये के मकानों को गोदाम के रूप में प्रयोग करती है । ऐसा करने से एक ओर तो लाभ कम होता है और दूसरी ओर गोदाम आधुनिक न होने से पदार्थों को चूहों, आदि से काफी नुकसान होता है । इसके साथ ही साथ यह समितियां अपने सभी सदस्यों को गोदाम सुविधाएं उपलब्ध नहीं कर पाती हैं ।

5. धन का अभाव: इन समितियों को धन सदस्यों की सदस्यता फीस से व केन्द्रीय समिति से ऋण के रूप में मिलता है लेकिन इन दोनो का कुलयोग बहुत थोड़ा होता है जिसका परिणाम यह होता है कि समितियां धन के अभाव में प्रगति नहीं कर पाती हैं ।

6. परिवहन सुविधाओं का अभाव: विपणन के विकास के परिवहन की अहम भूमिका होती है । परिवहन के अभाव में विपणन का विकास अवरूद्ध हो

जाता है । सहकारी विपणन समितियोंके पास परिवहन सुविधाओं का अभाव होता है । ये समितियां चूंकि पर्याप्त पूंजी अपने पास नहीं रखती हैं इस कारण ये अपना परिवहन के निजी साधन संचित नहीं कर पाती परिणामत: व्यापार की क्रियाएं एक सीमा में ही हो पाती है ।

7. <u>प्रमाणीकरण व श्रेणीकरण का अभाव:</u> सहकारी विपणन समिति की आर्थिक स्थिति उचित न होने के कारण ये समितियां प्रमाणीकरण व श्रेणीकरण करने वाले यन्त्रों को नहीं खरीद पाती है । फलत: बाजार में इनको अपनी वस्तु का उचित मूल्य नहीं मिल पाता ।

8. <u>तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना:</u> जिस स्थान पर विपणन समितियां खोली जाती है उस स्थान के व्यापारियों के द्वारा संगठित होकर विपणन समितियों से तीव्र प्रतिस्पर्धा की जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि समितियों को अपनी वस्तुएं सस्ती दर पर बेचनी पड़ती है ।

9. <u>बाजार सूचनाओं का अभाव:</u> बाजार सूचनाओं के अभाव में सहकारी विपणन समितियां अपनी कार्यविधि को सही परिप्रेक्ष्य में पूरा नहीं कर पाती । उपभोक्ताओं की रूचि, फैशन, आवश्यकताओं मांग एवं पूर्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सूचनाओं का इनको ज्ञान नहीं हो पाता । परिणामत: इनको उस स्थान के व्यापारियों की गतिविधि के आधार पर ही अपना कार्य करना पड़ता है ।

10. <u>अन्य दोषः</u> उपरोक्त वर्णित दोषों के अलावा अन्य दोषी भी पाये जाते हैं जैसेः- (1) नियन्त्रित बाजारों का अभाव (2) पर्याप्त तकनीकी सलाह का अभाव (3) विभिन्न स्तरों पर सहयोग का अभाव, आदि ।

<u>सहकारी विपणन की उन्नति के लिये सुझाव</u>

भारत में अन्य देशों की तुलना में सहकारी विपणन का विकास बहुत कम हुआ है । साथ ही भारतीय सहकारी विपणन में कुछ कमियां भी पायी जाती है अतः उनकी उन्नति के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं:

1. <u>अनिवार्य सहकारी विपणन की आवश्यकताः</u> भारत में इस समय सहकारी विपणन स्वेच्छा पर निर्भर है । कुछ प्रगतिशील देशों में कुछ क्षेत्रों में सहकारी विपणन कानूनन आवश्यक कर दिया है जिससे वहां काफी प्रगति हुई है । अतः भारत में भी इसी बात की आवश्यकता है कि सहकारी विपणन परीक्षण के आधार पर किसी एक क्षेत्र में आवश्यक कर दिया जाय और जब उस क्षेत्र में सफलता मिल जाय तब अन्य क्षेत्र में भी लागू कर दिया जाय । यह निर्विवाद है कि सहकारी विपणन समिति को अनिवार्य कर देने से सदस्यों में इसके प्रति वफादारी की भावना जागृति होगी । वे निश्चित रूप से अपनी उपज को इन समितियों के माध्यम से बेचने का प्रयत्न करेंगें और इस प्रकार समिति का पर्याप्त विकास हो सकेगा ।

1. गोदाम बनाने की आवश्यकता: अधिकांश सहकारी विपणन समितियों के पास पदार्थों को एकत्रित करके रखने के लिये गोदाम नहीं है। अत: इस बात की आवश्यकता है कि गोदाम बनाये जाय। सहकारी समितियाँ स्वयं गोदाम नहीं बनवा सकती क्योंकि इनके पास पूंजी बहुत कम होती है इसलिये सरकार को इस सम्बन्ध में आर्थिक सहायता करनी चाहिये तथा विभिन्न पदार्थों के लिये आधुनिक गोदाम के नक्शे बनवाकर देने चाहिये जिससे वे अपने गोदाम उसी के अनुरूप बना सकें।

2. सहकारी विपणन-ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता: भारत में सहकारी विपणन के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के संगठन पाये जाते हैं। कहीं तो सिर्फ प्राथमिक समितियां व संघ है, कहीं प्राथमिक केन्द्रीय व प्रान्तीय समितियां हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि पहले इनके ढांचे में परिवर्तन किया जाय जिससे कि देश के स्तर पर एक संगठन स्थापित किया जा सके। विभिन्न प्रकार की समितियों की कार्यशैली वास्तव में अलग होती है। जैसे प्राथमिक समितियां गांव स्तर पर काम करती है जबकि केन्द्रीय समितियां शहर स्तर पर काम करती है आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न समितियों को मिलाकर एक समिति बनायी जाय और इसके कार्यों में समानता लायी जा सकें।

3. सस्ते दर पर विपणन वित्त की आवश्यकता: विपणन समितियों के पास पूंजी बहुत कम होती है जिससे कि वे अपने सदस्यों की उचित आर्थिक सहायता नहीं कर पाती है। इसके लिये रिजर्व बैंक, व स्टेट बैंक द्वारा कम

दर पर प्राथमिक समितियों को सीधी आर्थिक सहायता देनी चाहिये । इस समय रिजर्व बैंक इन समितियों व संघों से वही ब्याज की दर वसूल करता है जो अन्य साधारण प्रकार के ग्राहकों से ली जाती है ।

5. <u>सीधी खरीद की आवश्यकता:</u> आज कल भारत में अधिकतर सहकारी विपणन संगठन कमीशन पर वस्तु को बेचने का कार्य करते हैं जिससे उत्पादक को अधिक लाभ नहीं होता । इसलिये संगठनों को चाहिये कि उत्पत्ति की खरीद उत्पादक से स्वयं करें । इसके लिये तीन तरीके हैं (1) प्राथमिक समितियों द्वारा खरीद (2) केन्द्रीय समितियों या प्रान्तीय समितियों के द्वारा प्राथमिक समितियों के माध्यम से खरीद तथा (3) प्राथमिक व केन्द्रीय या प्रान्तीय समितियों द्वारा संयुक्त रूप से खरीद । इस प्रकार की खरीद में बिक्री के समय हानि हो सकती है जिसके लिये प्रत्येक प्रान्तीय स्तर पर एक मूल्य उच्चावचन फण्ड बनाया जाना चाहिये जिसमें सरकार आर्थिक सहायता दें ।[90]

6. <u>कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता:</u> सहकारी विपणन के लिये कुशल एवं अनुभवी कर्मचारियों की आवश्यकता है । इसके लिये यद्यपि सरकार ने पूना में अखिल भारतीय सहकारी प्रशिक्षण कालेज की स्थापना कर दी है, लेकिन यहाँ पर सरकारी संगठनों के केवल उच्च अधिकारियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है । अतः इस बात की आवश्यकता है कि सरकारी संस्थाओं के कर्मचारियों को भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ।

---

90 सहकारी समितियों के वार्षिक सम्मेलन एवं सहकारी मंत्रालय, लखनऊ द्वारा प्रकाशित फरवरी 1963

7. सरकारी सहायता: सरकार को निम्न प्रकार की सहायता करनी चाहिये ।

-सरकार को विपणन समितियों की पूंजी में धन विनियोग करना चाहिये ।

-प्रमाणीकरण व वर्गीकरण तथा अन्य क्रियाओं के लिये योग्य व्यक्तियों की सेवाएं उपलब्ध करनी चाहिये ।

-विपणन समितियों को सरकारी पूर्ति के कार्यों में प्राथमिकता देनी चाहिये एवं

-सरकारी खरीद समितियों के माध्यम से होनी चाहिये ।

8. साख और विपणन को मिलाने की आवश्यकता: सहकारी विपणन के विकास के लिये यह आवश्यक है कि साख को विपणन के साथ मिलाया जाय । यदि साख और विपणन का समन्वय नहीं हो सकता तो विपणन अधूरा ही रहेगा । अत: विपणन समितियों व साख समितियों के कार्यों में समन्वय होना चाहिये ।

9. विभिन्न स्तरों पर उचित सहयोग की आवश्यकता:- सहकारी विपणन के विभिन्न स्तरों पर प्राथमिक, केन्द्रीय, प्रान्तीय व अखिल भारतीय स्तर में उचित सहयोग की आवश्यकता है । इनके लिये विभिन्न प्रकार के नक्शे, प्राथमिक समितियों व अन्य संगठनों के द्वारा प्रयोग में लाये जाने चाहिये जिससे उनकी खरीद, बिक्री, स्टाक व ऋण आदि का अनुमान लगाया जा सके और उनकी बिक्री आदि का उचित प्रबन्ध किया जा सके ।

10. <u>अन्य सुझाव:</u> अन्य सुझाव इस प्रकार है:-

-सदस्य केवल किसान एवं उपभोक्ता ही हो, व्यापारी इसके सदस्य न बनाये जायें ।

-केन्द्रीय व प्रान्तीय समितियों की सदस्यता शुल्क कम रखी जाय जिससे छोटी से छोटी प्राथमिक समिति भी सदस्य बन सके ।

-प्राथमिक समितियां ऐसे स्थान पर हो जहां उनके सदस्य आसानी से पहुच सकें और समितियां अपना माल शहरी क्षेत्रों या मण्डियों में भी आसानी से भेज सकें ।

-प्रत्येक समिति का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिये जिससे बड़ी मात्रा में व्यापार किया जा सके, आदि ।

(ख) सरकार एवं उपभोक्ता सहकारिता

आधुनिक परिवेश में विभिन्न देशों की सरकारे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक कल्याणकारी योजनाएं बनाती है, जिससे उपभोक्ताओं को सभी वस्तुये उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके । यह निर्विवाद है कि उपभोक्ता विपणन का आधार होता है । दूसरे शब्दों में उपभोक्ता को विपणन का बादशाह कहा जाता है । सरकार मध्यस्थों के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से उपभोक्ता सहकारी भण्डार के विस्तार पर अधिक बल देती है

एवं विभिन्न योजनाओं में इसके विकास एवं विस्तार पर ध्यान दिया है । प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से ही सरकार की नीतियों का एक महत्त्व पूर्ण भाग यह था कि यह आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को उचित मूल्यों पर निरन्तर बनाये रखे, जिससे कि समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर कमजोर वर्ग को आवश्यक वस्तुयें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सके । उपभोक्ताओं को मध्यस्थों के चंगुल से मुक्त करने के लिये उपभोक्ता सहकारिता की स्थापना की गयी । इसने सरकारी नीतियों के परिणाम स्वरूप एक अग्निदमन के रूप में कार्य किया और इससे उत्पादन वितरण व मूल्य नीतियों में स्थिरता लाने के लिये महत्त्व पूर्ण ढंग से कार्य किया जाता है उपभोक्ता सहकारिता, उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकताओं के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्थापित की गयी । इस प्रकार का भण्डार लोक व्यवसाय के साथ-साथ फुटकर व्यवसाय तथा कुछ स्थानों पर तो वस्तुओं के उत्पादन तक की क्रियाओ को करने लगा है । इस प्रकार के भण्डारों का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना तथा उनके वस्तुओं तथा सेवाओं, को उचित समय व स्थान पर उपलब्ध कराना है । ये समिति तथा भण्डार मुक्त सदस्यता, प्रजातांत्रिक नियन्त्रण, बाजार मूल्यों पर नकद व्यापार पूंजी पर निश्चित आय तथा क्रयों पर लाभांश इत्यादि सिद्धान्त पर आधारित होती है । इस प्रकार के भण्डारों का निर्माण व संचालन, उपभोक्ताओं के द्वारा ही होता है । प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है चाहे उसने कितने ही अंश क्यों न खरीदे हो । सदस्यता के लिए कम से कम एक अंश खरीदना आवश्यक है । जो लाभ होता

है उसे सदस्यों के बीच अंशधारिता के आधार पर बांट दिया जाता है । इस प्र कार सरकार ऐसे भण्डार का विकास एवं विस्तार करके मध्यस्थों के नापाक इरादों को समाप्त करती है जिसमें कि उनका उद्देश्य जनता का शोषण करना होता है ।

सहकारिता का अर्थ तथा मूल भावना सहकारिता शब्द सहानुवर्तिता के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस शब्द का तात्पर्य साथ=साथ कार्य करना, या मिलजुलकर किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति अनुसार होना ही सहकारिता शब्द से उपलक्षित है । आधुनिकता तथा युग विशेष के दायरे में अलग मानव चेतना की सृस्टि के साथ ही इसकी उत्पत्ति हुयी । सृष्टि और सभ्यता की प्रथम किन्तु सर्वश्रेष्ठ पहचान को प्रस्तुत करने वाले वैदिक साहित्यों में भी सहकारिता के ही विकल्प समाजवाद की भावना को साकार करते है । देवताओं की उपासना के समय भौतिक अभ्युदय सुख शान्ति की कामना व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषियों ने कहीं भी व्यक्तिगत उपलब्धि की कामना व्यक्त नहीं की है । इस प्र कार भारत में अनंत काल से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में सहकार भावना का दर्शन होता है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण समाज गतिमान हो रहा है, इतिहास व वैदिक साहित्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है, कि सहकारिता के उसी आधार पर भारत वैभव के शिखर पर पहुंचा था, जिस प्रकार कि निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है :-

ओइम् सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु सहवीर्य करवाव है ।
तेजस्वि नाव धीतमस्तु या विद्विषाव है ।।
ओइम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

"ईश्वर हम दोनों की साथ-साथ रक्षा करे, हम दोनों का साथ-साथ पालन करें । विद्या प्राप्ति के लिए हम दोनो साथ-साथ परिश्रम करें । हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी । पराक्रमपूर्ण हो । हम दोनों एक दूसरे से द्वेष न करें । हमारे सभी दुःखों की शान्ति हो ।

वैदिक साहित्य के उपबृहित और परमपुष्प व ज्ञानकाण्ड के सर्वेक्षण भूत कपेयनिषद का यह मंत्र गुरू तथा शिष्य समुदाय अध्यापक एवं अध्येयता दोनों उपलब्धि के प्रति सहभावना को व्यक्त करता है जिसे कि हम सहकारिता का मूल स्त्रोत कह सकते हैं ।

उपभोक्ता सहकारिता का उद्‌गम व विकास

उपभोक्ता सहकारिता का उद्‌गम एवं विकास सर्व प्रथम इग्लैण्ड के रोशडेल शहर में 1844 में हुआ । धीरे-धीरे यूरोप महाद्वीप के अन्य देशों में भी इसका विकास होता गया, इसने युद्धकाल में वस्तुओं के मूल्यों को स्थिर रखने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस प्रकार के भण्डारों ने स्वीडेन, डेनमार्क रूस तथा इ ग्लैंड में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की । भारत में इस प्रकार के भण्डारों की स्थापना सर्व प्रथम 1904 में मद्रास में हुई । उस समय यह आवश्यकता महसूस की गई कि युद्ध के समय उपभोक्ता वस्तुओं सेवाओं के मूल्यों में आश्चर्यजनक वृद्धि से उपभोक्ताओं को संरक्षण किस प्रकार प्रदान किया जाये । प्रारम्भ में उपभोक्ता सहकारी भण्डार ने एक साख समिति के रूप में कार्य किया

परन्तु बाद में वह अन्य कार्यों को भी करने लगी । 1914 में इस प्रकार के भण्डारों की संख्या चौदह थी । प्रथम विश्व युद्ध के साथ ही साथ इसकी संख्या बढ़कर 103 हो गयी और इस प्रकार के भण्डारों का विकास मुख्यतया मद्रास, मैसूर, बम्बई व पश्चिमी बंगाल में हुआ । 1929 की महान आर्थिक मंदी के परिणाम स्वरूप इनके विकास में अवरोध उत्पन्न हुआ क्योंकि उस समय उपभोक्ताओं वस्तुओं की पूर्ति की कोई समस्या ही नही थी, इस लिए इसका विकास उत्तरोत्तर नही हुआ ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात इन भण्डारों में बहुत तेजी के साथ विकास हुआ । ब्रिटिश सरकार ने भी द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान राशन वस्तुओं के वितरण को प्रोत्साहन देने के लिए उपभोक्ता सहकारिता को बढ़ावा देना प्रारम्भ किया, जिनसे कि उनके विकास में पर्याप्त सहायता मिली । 1952 में मूल्य नियंत्रण और राशनिंग के समाप्त होने के कारण वस्तुयें खुले बाजार में पर्याप्त रूप से प्राप्त होने लगी 1958 में इसकी संख्या बढ़कर 6407 हो गयी, जिसकी को कुल बिक्री 225 करोड़ रूपये थी । प्रथम दो पंचवर्षीय में इसके विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया गया परन्तु यह मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र तक ही सीमित था । तृतीय पंचवर्षीय योजना में इसके महत्व को सरकार ने स्वीकार किया और योजनाबद्ध तरीके से उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का संगठन करने के लिए कहा । इस प्रकार का कार्य मुख्य रूप से आवश्यक वस्तुओं का उचित मूल्य और समान रूप से वितरण करना, के उद्देश्य को लेकर या जिससे उपभोक्ता वस्तुये, समाज के कमजोर वर्ग को पर्याप्त रूप से प्रदान की जा सके । इसमें

2,200 प्राथमिक भण्डारों को पुर्नजीवित करने तथा योजना के दौरान प्रत्येक राज्य में एक शीर्ष में थोक भण्डार स्थापित करने का प्रावधान था। इस प्रकार की योजना मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तुओं के फुटकर मूल्यों पर नियंत्रण करना तथा खाद्य पदार्थों में मिलावट को रोकना था। 1962 में चीन के आक्रमण के परिणाम स्वरूप, मूल्यों में पुनः बहुत तेजी के साथ वृद्धि होने लगी। उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में असमान रूप से वृद्धि होने लगी, विक्रेता लोग उपभोक्ता वस्तुओं को एकत्रित करने लगे जिससे कि उपभोक्ताओं में असन्तोष व्याप्त हुआ। इस लिए सरकार ने केन्द्रीय स्तर पर योजना को प्रायोजित किया जिसमें कि उपभोक्ता सहकारी भण्डारो का विकास बड़े पैमाने पर करना था।

चौथी योजना में 50,000 जनसंख्या वाले शहर में एक केन्द्रीय भण्डार की स्थापना नगर स्तर पर तथा एक प्राथमिक उपभोक्ता भण्डार की स्थापना स्थानीय स्तर पर होना था। जून 1974 के अन्त तक लगभग 400 केन्द्रीय थोक उपभोक्ता सहकारी भण्डार और लगभग 13,150 प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी भण्डार 14 उपभोक्ता सहकारी भण्डार का राज्य स्तर पर तथा शीर्ष पर राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ताओं का संघ था। इस योजना में 700 करोड़ रू. के फुटकर विक्रय के लक्ष्य को उपभोक्ता सहकारिता प्राप्त नही कर सकी। 1973-74 में वास्तविक फुटकर विक्रय 325 करोड़ रूपये था। इस कमी का कारण खाद्यान्नों और चीनी पर से सरकार द्वारा नियन्त्रण हटा लिया जाना था।

पांचवी योजना को उपभोक्ता सहकारिता को सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करना था जिससे कि उपभोक्ता अभिमुख वितरण व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में कार्य कर सके । उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुये उचित मूल्यों पर उपलब्ध करायी जा सके । शहरी उपभोक्ता भण्डारो के विक्रयों को 60 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 300 करोड़ रूपये करना था । इसमें 50 बड़े विभागीय भण्डार और 150 छोटे विभागीय भण्डार खोले जाये । इसके अतिरिक्त योजना में केन्द्रीय थोक भण्डारों द्वारा 1,300 फुटकर भण्डार खोले जाने का प्रावधान था ।

वर्तमान समय में सरकार उपभोक्ता सहकारी भण्डार के पर्याप्त विकास एवं विस्तार पर ध्यान दे रही है । अक्टूबर 1974 में भारत सरकार ने खाद्यान्नों तथा साधारण व्यक्ति या उपभोक्ता के उपभोग की अन्य आवश्यक वस्तुये के वितरण के लिए सन्तोषजनक और पर्याप्त व्यवस्था करने के लिये नागरिक आपूर्ति एवं सहकारिता विभाग की स्थापना की, जिससे कि उप-भोक्ता सहकारिता का विकास सक्षम रूप से किया जा सके । 1981-82 में उत्तर प्रदेश में लोक उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की संख्या 60 थी जो कि अन्य राज्यों की तुलना में सर्वाधिक थी । तालिका नं. 10 भारत के द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद से उपभोक्ता सहकारी भंण्डारोंको प्रगति दिखायी गयी है ।

तालिका नं. 10

उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की योजनाकाल में प्रगति

विवरण	1961-62	1965-66	1970-71	1975-76	1980-81	1987-88
भण्डार						
1. संख्या	107	351	383	449	576	689
2. शाखाएं	14	1631	2379	2842	4129	5023
3. सदस्यता (लाखों में)	0.31	5.46	9.52	15.28	26.19	28.79
प्राथमिक भण्डार						
क- संख्या	7276	13077	13156	18093	15558	18003
ख- सदस्यता (लाख में)	13.95	19.33	34.84	55.05	46.9	49.7
सम्बद्ध उपभोक्ता परिवार (लाख में)	-	-	42	51	64	72

स्रोत-मुख्य कार्यालय, राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ लिमिटेड, नयी दिल्ली

उपभोक्ता सहकारिता के उद्देश्य

उपभोक्ता सहकारिता का प्रमुख उद्देश्य शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है । समाज के सभी वर्ग के लोगों विशेषकर पिछड़े व कमजोर वर्ग के लोगो को वस्तुये उचित मूल्यों पर प्रदान हो सके । उपभोक्ता इस को आशा करते हैं कि इसके माध्यम से उनको वस्तुये सस्ते दामों पर प्राप्त हो सकेगी । इसके साथ ही साथ वस्तुओं में मिलावट उनकी उचित किस्म तथा उसके उचित तौल के सम्बन्ध में भी अनियमितता न होगी । इन प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये निम्न कार्य किये जाते हैं ।

(अ) मध्यस्थों का उन्मूलन: व्यवसाय के मध्यस्थों का उन्मूलन द्वारा, इनके बुराइयों से उपभोक्ताओं की रक्षा करना, जिससे कि उनको वस्तुये उपलब्ध करायी जा सके । उपभोक्ता सहकारी भण्डारो को सीधे निर्माताओं से विविध उपभोक्ता वस्तुओं के प्रर्याप्त और नियमित प्रवाह को निश्चित करने के लिये सरकार ने कई कदम उठाये है । नागरिक आपूर्ति आयुक्त और अन्य सम्बन्धित मंत्रालयों की सहायता से कई आवश्यक वस्तुओं जैसे-खाने का तेल, बच्चों का दूध, साइकिल तथा स्कूटरो के टायर, ट्यूब , बिजली के बल्ब, कागज, दवाइयों आदि के निर्माताओं से सीधी पूर्ति की व्यवस्था की गयी है । कपड़ों के संदर्भ में सभी मिश्रित मिलों ने अपने उत्पादन का 10% भाग को उपभोक्ता सहकारी भण्डारो द्वारा वितरण के लिए प्राथमिकता दी है । इससे मध्यस्था का उन्मूलन संभव हो सकेगा ।

(ब) मूल्यों में स्थिरता बनाये रखना: उपभोक्ता सहकारी भण्डार द्वारा सरकार इस बात का हमेशा ध्यान रखती है कि मूल्यों में स्थिरता बनी रहे । वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि न हो । मध्यस्थों का उन्मूलन कर देने से अपने आप वस्तुओं के मूल्यों में कमी आयेगी, क्योंकि इन मध्यस्थों द्वारा जिन वस्तुओं में वृद्धि कृत्रिम अभाव पैदा करके की जाती है उससे उपभोक्ता वर्ग को संरक्षण मिलेगा । जब मध्यस्थों का उन्मूलन दूसरे उपभोक्ता सहकारी भण्डार इन मूल्यों में अपना लाभ नहीं रखते तथा न ही लाभ के आधार पर काम करते है ।

वर्तमान अर्थव्यवस्था के परिपेक्ष्य में क्या उपभोक्ता सहकारिता मूल्यों में वृद्धि होने पर नियंत्रण पा सकती है ? प्रारम्भ में किसी भी व्यवसाय द्वारा यह सोचना कि वह बिना लाभ कमाये कार्य करती रहेगी एक तथ्य विहीन सत्य है । मूल्य वृद्धि को रोकने में केवल सहकारी भण्डार अपनी भूमिका निभा सकते हैं न कि पूर्ण रूप से इस बात पर काबू प्राप्त कर सकते है । इसको रोकने के लिये कई प्रशासनिक, वित्तीय एवं कानूनी कदम उठाने आवश्यक होते हैं । उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य कई तथ्यों से प्रभावित होता है जैसे उत्पादन का स्तर, उत्पादन की लागत, कर तथा कर-नीतियां, सरकारी व्यय, मुद्रा-स्फीति का दबाव तथा देश की सामान्य आर्थिक दशा । इन सब तथ्यों पर सहकारी भण्डारो का कोई भी नियंत्रण नही होता और इसलिये वे मूल्य वृद्धि रोकने में असमर्थ रहते है । ये केवल अपने व्ययों को कम करके अपने लाभ की सीमा कम करके वस्तुओं का कुछ हद तक मूल्य कम कर सकते हैं । इस संदर्भ में सहकारी भण्डारो को यह परामर्श दिया गया कि वे मूल्यों की

अपेक्षा माल की किस्म तथा सेवा पर अधिक बल दे । सहकारी भण्डारो से उपभोक्ता को उचित मूल्य पर उचित किस्म की वस्तुओ के मिलने की आशा की जाती है । उपभोक्ता भण्डारो की सफलता उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये माल और सेवाओ की मात्रा तथा वसूल किये जाने वाले मूल्यो के सम्बन्ध में क्रेताओ के विश्वास पर निर्भर करती है ।

सहकारी भण्डार कुछ सीमा तक, फुटकर व्यापार का तुरन्त उपचार करने में सक्षम है । प्रत्येक शहर में इन भण्डारो कीस्थापना के लिए जनता में वास्तविक उन्माद था और जनता ने असाधारण उत्साह प्रदर्शित किया, उपभोक्ताओ की यह इच्छा है कि विभागीय भण्डारो की महत्वपूर्ण शहरो में शाखायें हो, जिससे कि विभागीय भण्डारो द्वारा उपभोक्ताओ को प्रत्येक वस्तुये उचित मूल्यो पर प्राप्त हो सके । सुपर बाजार व्यापारियों के मार्ग दर्शन का कार्य करते है, फुटकर व्यापारी इस बाजार की अपेक्षा नही कर सकते, इन भण्डारो के माध्यम से राजकीय आय में भी वृद्धि होती है क्योकि इन भण्डारो ने कर की चोरी को कम करने में सहायता प्रदान की और इन भण्डारो द्वारा बेचे गये माल का पूरा लेखा रखा जाता है जिससे कि सरकारी करों का सम्पूर्ण भुगतान किया जाता है । परिणाम स्वरूप सरकार की आय में भी वृद्धि होती है ।

जून 1975 में आपात कालीन स्थिति की घोषणा के साथ तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरागांधी ने 20 सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की । 20

सूत्री कार्यक्रम में इस बात का पर्याप्त ध्यान रखा गया कि समाज के निर्धन व कमजोर वर्ग के लोगो को आवश्यक वस्तुये उचित मूल्य पर दिलायी जाय । इसका उद्देश्य यह था कि मूल्यो को स्थिर रखना तथा आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो में गिरावट, उत्पादन बृद्धि मूल्यों में बृद्धि न होने के कारण उसको एकत्रीकरण करके पर्याप्त रूप से वितरण करना । उस समय यह आदेश था कि सभी व्यापारी अपनी-अपनी दुकानो पर मूल्यो व स्कंधो की सूची लगाये ऐसा न करने और कृत्रिम अभाव पैदा करना, जमाखोरी उत्पन्न करने वालो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करना । निर्धन व कमजोर वर्गों को बड़ी मात्रा में आवश्यक वस्तुये नियत्रित मूल्यों पर उपलब्ध करना । इस प्रकार की सूचना पाक्षिक रूप से राज्य सरकार को भेजी जायेगी, राज्य सरकार इसकी सूचना केन्द्रीय नियंत्रण नागरिक आपूर्ति विभाग को दे, जिसकी को स्थापना आपात काल में की गयी थी । इस प्रकार का नियंत्रण विकास का कार्य यह होगा कि वह वस्तुओ में बृद्धि की जांच करे और यह स्पष्ट रूप से बताये कि वस्तुओ में बृद्धि क्यों हुई और जहां पर आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो वहां पर उन वस्तुओं की पूर्ति कराये जिससे कि वहां पर मूल्यो में बृद्धि न होने पावे ।

उपभोक्ता सहकारिता का ढांचा:

वर्तमान समय में उपभोक्ता सहकारिता के चार स्तर है । जिन्हें निम्न चित्र द्वारा चित्रित किया जा सकता है:-

सहकारी क्षेत्र में इस प्रकार की संरचना, आर्थिक व उपयुक्त रूप से व्यवसाय के क्षेत्र में सिद्ध करने के उद्देश्य से लेकर की गयी थी । उपभोक्ता सहकारिता को एक व्यवसायिक संगठन के दृष्टिकोण से देखने पर यह होता है कि इसकी संरचना या ढांचा भी उसी स्तर का हो । इसके लिये दो आवश्यक स्तरो का होना आवश्यक है प्रथम थोक व्यवसाय एवं द्वितीय फुटकर व्यवसाय । एक उपयुक्त व आदर्शात्मक ढांचा उसी के चारो ओर चक्कर लगायेगा जो कि व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य है । नीति के निर्माण में भी इस प्रकार के ढांचो की नीतियो को ध्यान में रखना होगा तथा उसी के अनुरूप ऐसा संगठन बनाया जाना चाहिये जो एक थोक विक्रेता का कार्य करे तथा दूसरा फुटकर विक्रेता का । इस प्रकार का थोक व्यवसाय कार्य करने वाला संगठन राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ है, जो कि उसी वस्तु की खरीददारी राष्ट्रीय स्तर पर करता है जिसमें कि उसे लाभ होता है, इसी प्रकार राज्य स्तर पर राज्य उपभोक्ता, सहकारी संघ, राज्य स्तर पर काम करता है । इस प्रकार की खरीददारी करने का एक अर्थ यह होता है कि बड़ी मात्रा में वस्तुओ को खरीद लिया जाता है जिससे कि उसका लाभ प्राप्त होता है और फिर उस वस्तु को एक राज्य से दूसरे राज्य भेजा जाता है । इस प्रकार का कार्य वस्तुओ के मूल्यों में एकरूपता लाना, तथा आवश्यक वस्तुओ की पर्याप्त पूर्ति बनाये रखना है जिससे कि वस्तुओ के मूल्यो में वृद्धि नही होने पाती ।

आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति के लिए थोक एजेन्सियां अपने एक निश्चित

क्षेत्र के अन्तर्गत क्षेत्रीय गोदाम व वितरण केन्द्र स्थापित कर देती है जिससे कि आवश्यक वस्तुओ को फुटकर व्यवसायियों को दी जा सके । वस्तुओ का स्कंध उसी गोदाम में रखा जाता है जहां से वस्तुओ कि फुटकर व्यवसायियो के द्वारा वस्तुये प्राप्त की जा सकती है । इस प्रकार की एक मुख्य फुटकर शाखा एक शहर में एक होती है, ये शाखाएं अपनी वस्तुये इन मुख्य फुटकर शाखाओ से प्राप्त करती है । छोटी-छोटी शाखाये अपने द्वारा वस्तुओ को बिक्री हेतु विभागीय भण्डार जोकि मुख्य-मुख्य शहरो में होते है उनसे प्राप्त करते है ।

उपरोक्त ढांचा जो उपभोक्ता सहकारिता के विकास के स्तर में तो बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है परन्तु इसे कम समय में तेजी से विकास कर लेना बहुत ही कठिन कार्य है । केवल ढांचा अच्छा हो तो विकास हो जायेगा यह केवल भ्रम मात्र है । इसके लिये यह आवश्यक है कि सरकार सरकारी संस्थाओ को नीति के संदर्भ में स्पष्ट निर्देश देती रहे और इससे इसका कार्य तेजी से बढ़े तभी यह सफल हो सकता है ।

उपभोक्ता सहकारिता के असफलता के कारण:

उपभोक्ता सहकारी भण्डारो की स्थापना करने का प्रमुख उद्देश्य यह है कि इन भण्डारो के माध्यम से मूल्यों में एक रूपता व स्थिरता आयेगी और मूल्य वृद्धि पर रोक लगेगी लेकिन दुर्भाग्य से यह अपने लक्ष्य से सफल न हो सकी ।

इसमें आशा के अनुरूप विकास नहीं हो पाया और न ही उपभोक्ता में अपने प्रति विश्वास की भावना ही उत्पन्न कर पाये । इसकी असफलता के कारणों में मुख्य कारण निम्नलिखित है:-

1. अकुशल प्रबन्ध: भण्डारो का संचालन ऐसे व्यक्तियों द्वारा होता है जो कि प्रशिक्षित नहीं होते हैं । उन्हें व्यवसाय का बिल्कुल भी ज्ञान नही होता वे बहुत कम शिक्षित अथवा अशिक्षित होते है इसके साथ ही साथ उनमें व्यवहार कुशलता का अभाव रहता है । वास्तव में प्रशिक्षण के अभाव में ये अपना कार्य भी उचित ढंग से नहीं कर पाते और न ही निजी व्यवसायियों से प्रतिस्पर्धा करने में ही सफल हो पाते है जिसके परिणामस्वरूप इन्हें अपना व्यवसाय बंद करना पड़ता है ।

2. धन की अपर्याप्तता: किसी भी कार्य को करने के लिये पूंजी की आवश्यकता होवी है । और इनके पास पूंजी का सदैव अभाव रहता है क्योंकि एक तो इनकी पूँजी बहुत कम रहती है तथा दूसरा इनके लाभों में प्रतिशत बहुत कम होता है, परिणाम स्वरूप ये उस लाभ को अपने पास सुरक्षित भी नहीं रख पाते, आर्थिक रूप से बीमार होने के कारण, बैंको द्वारा ऋण मिलने में भी इन्हें परेशानी होती है जिसके कारण ये अपने कार्यक्रमों को लागू करने में असफल रहे हैं ।

3. संकीर्ण क्षेत्र: उपभोक्ता भण्डारो का व्यापार कुछ निश्चित वस्तुओं तक ही सीमित रहता है और वे उसी वस्तुओं के सम्बन्ध में पर्याप्त ध्यान

रखते हैं । उपभोक्ता की सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति, इन भण्डारों के माध्यम से नहीं हो पाती परिणाम स्वरूप उनको अन्य दुकानों का सहारा लेना पड़ता है जिससे कि वे इन भण्डारों के प्रति उदासीन रहते है । और इसी संकीर्णता के कारण इनका उत्तरोत्तर विकास नहीं हो पाया और न ही ये अपने व्यवसाय को फैला सके हैं ।

4. अन्य सहकारी भण्डारों से संपर्क का अभाव: उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का उत्पादक या विपणन सहकारी भण्डारों से कोई सम्पर्क नहीं होता अतः यदि कोई भी उत्पादक सहकारी संस्था ऐसे माल का उत्पादन करती है जो उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सकती है, लेकिन सम्पर्क के अभाव के उपभोक्ता भण्डार उनसे वह वस्तु नहीं मंगा सकते है तथा वे उस वस्तु को बाजार से क्रय करते है और वह वस्तु मंहगी पड़ती है इस लिए उपभोक्ता अपने भण्डार से उन वस्तुओं को नहीं खरीदते ।

5. सहयोग व समन्वय का अभाव: एक ओर तो उपभोक्ता सहकारी भण्डारों में समन्वय व सहयोग का अभाव रहता है तथा दूसरी ओर थोक भण्डार जो अपनी शाखाएं तथा विभागीय भण्डार खोलते हैं वे अपने से सम्बद्ध प्राथमिक भण्डारों की उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति पर ध्यान नहीं देते । इस कारण से प्राथमिक भण्डार अपने क्षेत्र में थोक भंडार की शाखा खोलने का विरोध करते है । इसके साथ ही साथ थोक भण्डार जो माल प्राथमिक उपभोक्ता भण्डार को देते हैं उनका समय पर भुगतान करने में वे असफल रहते है अतः इनका आपस में सहयोग नहीं होता ।

6. अनार्थिक इकाइयों का संचालन: अधिकांश प्राथमिक भण्डारों का आकार छोटा, कम सदस्यता, अपर्याप्त पूंजी, तथा न्यून औसत विक्रय होता है। जिससे कि इन भण्डारों में लाभ की मात्रा से या तो बहुत कम होती है। यदि होती भी है तो नहीं के बराबर। जिससे कि यदि पूरे संगठन के स्तर पर लाभ भी होता है तो वह हानि में परिवर्तित हो जाता है। इस कारण से भी इनको सफलता नहीं हो सकी।

7. कृषि वस्तुओं में असामायिक उच्चावचन: बहुधा कृषि पदार्थों में वर्ष में कई बार उच्चावचन होता है, उसका मूल्य फसल के समय तो कम हो जाता है, परन्तु उसके बाद उसके मूल्य में बहुत तेजी से बृद्धि होती है, इसलिये उपभोक्ता सहकारिता को एक मूल्य स्तर पर वस्तुओं को बेचने में अत्यन्त ही कठिनाई होती है क्योंकि इसका व्यवसाय मुख्यतया कृषि पदार्थों से ही सम्बन्धित होता है।

8. अत्याधिक व्यय: इसके व्यवसाय में सबसे बड़ी बाधा यह है कि इसकी लागत सदा ऊँची रही है निजी व्यापारी ऐसे कई ऊपरी व्ययों से मुक्त होता है जो अधिकांश उपभोक्ता के भण्डारों में बहुत ही सामान्य है। एक सर्वेक्षण के अनुसार उपभोक्ता भण्डारों की कार्यशील लागत 8.7 प्रतिशत है जब कि औसत फुटकर व्यवसाय में यह प्रतिशत है।

9. भण्डार नियन्त्रण और सत्यापन का अभाव: उपभोक्ता सहकारी व्यापार में भण्डार नियन्त्रण तथा स्कन्ध के सत्यापन के समुचित व्यवस्था अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है । यदि इसमें भण्डारो का नियन्त्रण न किया जाय और अनावश्यक रूप से स्कन्ध भण्डारों में पड़ा रहे फलस्वरूप माल नष्ट हो जायेगा या उसमें पूँजी फंसी रहेगी, उसका सदुपयोग नहीं हो पायेगा, इसके साथ ही साथ स्कन्ध के उचित रूप से सत्यापन न होने के कारण प्रबन्धको द्वारा गबन व बेईमानी के अवसर बढ़ जायेंगे जब कि उपभोक्ता सहकारी भण्डारों में इसका नितांत अभाव है । इससे भी उपभोक्ता सहकारिता के प्रगति में एक बाधा होती है ।

10. दोषपूर्ण मूल्य निर्धारण व क्रय नीति: अविवेक पूर्ण ढंग से क्रय करने से एक तो उपभोक्ता सहकारिता में उसके व्यापार में अत्याधिक पूंजी लगानी पड़ती है तथा इसको ओर अत्याधिक क्रय करने से वस्तुओ का स्कंध पड़ा रहता है और वस्तुओ को कीमत अधिक होने से व अपने सदस्यों व जनता को अधिक मूल्यों पर ही वस्तुओ की पूर्ति कर पाते है । इसलिए इस नीति को तकनीकी दृष्ट का ज्ञान रखने वाले प्रबन्धको के द्वारा ही कराया जाना चाहिए ।

उपभोक्ता सहकारिता के सुधार हेतु सुझाव:-

उपभोक्ता भण्डारो के सफलता पूर्वक चलाने तथा वांछित लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिये इसके प्रबन्धको को सहकारिता के सिद्धांतों को अच्छी तरह से समझना चाहिये जिससे कि उनको प्रबन्ध कार्य में किसी भी प्रकार की

कठिनाई न हो । ये थोक स्तर पर वस्तुएं खरीदकर फुटकर रूप में वस्तुये बेचते हैं वास्तव में यह एक अत्यन्त दुरूह कार्य है । सरकार ने उपभोक्ता सहकारी भण्डार के विकास एवं विस्तार के लिए अनेक प्रभाव शाली कदम उठाये है किन्तु भण्डार के सदस्यो में शिक्षा, व्यवसाय एवं सामंजस्य के अभाव के परिणाम स्वरूप भण्डार को सफलता प्राप्त नही हो पायी है । वास्तव में भण्डारो को सफलतापूर्वक चलाने तथा उपभोक्ता भण्डारो में सुधार के लिए निम्न सुझाव किये जाते हैं जिससे कि उनकी कार्य क्षमता में बृद्धि हो सके:-

1. <u>वित्तीय व्यवस्था:</u> भण्डार की वित्त की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अपने सदस्यों से जमाओ को आकर्षित करना चाहिये तथा इसके साथ ही साथ उस पर उदार ब्याज की दरें होनी चाहिये । सरकार की सहभागिता नई की पूँजी में होनी चाहिये । इन भण्डारो को ऋण व अग्रिम देने के लिए सरकार को वित्तीय संस्थाओ पर दबाव डालना चाहिये । रिजर्व बैंक को चाहिये कि वह इन वित्तीय संस्थाओ को अतिरिक्त कोष उपलब्ध कराये, जिससे कि ये वित्तीय संस्थाएं इन भण्डारो को ऋण उपलब्ध करा सके ।

2. <u>आर्थिक क्षमता:</u> किसी भी भण्डार को स्थापित करते समय इस तथ्य का पर्याप्त विश्लेषण कर लेना चाहिये कि उसमें कितनी पूँजी विनियोजित होगी । पूँजी का निर्धारण विभिन्न स्थानो के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है । इसकी न्यूनतम पूँजी 5 हजार रूपये तक तथा ग्रामीण क्षेत्र में न्यूनतम सदस्य

संख्या 500 होनी चाहिये । कोष भण्डार की पूँजी 50 हजार कार्यशील पूँजी 2 लाख रूपये तथा लगभग 100 प्राथमिक भण्डार इसके सदस्य होने चाहिये तथा वार्षिक विक्रय लगभग 12 लाख रूपये । इसके साथ ही साथ कमजोर समितियों की छंटनी करने तथा उन्हें मजबूत बनाने की भी व्यवस्था होनी चाहिये ।

3. भण्डारो के प्रवर्तन में सुधार: उपभोक्ता भण्डारो की स्थापना के पूर्व यह सुनिश्चित करना होगा कि जिस क्षेत्र में भण्डारो की वास्तविक रूप में आवश्यकता है, उसी क्षेत्र में भण्डार स्थापित किये जा रहे है या किसी अन्य क्षेत्र में भण्डारो की स्थापना करने वाले को उपभोक्ता सहकारिता के सिद्धांतो और नीतियों को पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है । उन्हे यह सुनिश्चित करना चाहिये कि भण्डारो की स्थापना तथा संचालन के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध होना चाहिये । योग्य प्रबंधकीय कर्मचारी की सेवाएं प्राप्त कर ली गयी है ।

4. विक्रय कला व ग्राहकों की सेवा में बृद्धि: उपभोक्ता सहकारी भण्डारो को अपने वस्तु की अधिक से अधिक बिक्री करने के लिये आधुनिकतम तथा नयी-नयी विक्रय कला की तकनीकियों को अपनाना चाहिये, जिससे कि नये-नये वस्तुओ की जानकारी उपभोक्ता को प्राप्त होती रहे और वे उसका उपभोग कर सके । इसके साथ ही साथ इनको ग्राहकों को सेवा में बृद्धि करना चाहिये चाहे उनका लाभ इस संदर्भ में कम क्यों न हो दूसरे शब्दो में इन्हें लाभ की

अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता देना चाहिये जब ग्राहकों की सेवा में वृद्धि होगी तो ग्राहक इन्ही भण्डारो से वस्तुओं का क्रय करेंगे ।

5. प्रबन्धकों को प्रशिक्षण देना: भण्डारों के कुशल प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि इसका संचालन भी कुशल प्रबंधकों के द्वारा ही किया जाय ये प्रबन्धक तभी इसका संचालन सफलता पूर्वक कर सकते हैं जब कि इनको प्रशिक्षण दिया जाये । सरल शब्दों में प्रशिक्षण के अभाव में ये प्रबन्धन का कार्य सफलता पूर्वक संचालित नहीं कर सकते क्योंकि बदलते परिवेश में प्रबन्धकीय दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है । अप्रशिक्षित प्रबन्धकों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये । वास्तव में उन्हें व्यक्तियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जिन्हें कि सहकारिता के दर्शन, सिद्धान्तो, व्यवहारो तथा इसके साथ ही साथ व्यापारिक अनुभव हो ।

6. महिलाओं का सक्रिय सहयोग: इसके सफल संचालन में यह आवश्यक है कि महिलाओ को दैनिक आवश्यकता के संबंध में ज्ञान होता है इसमें महिलाओं की रूचि को जागृति करना आवश्यक है । इस संदर्भ में महिलाओं को अधिक से अधिक संख्या में सदस्य बनाना चाहिये । महिलाओं की समितियां बनाकर अन्य महिलाओ से व्यक्तिगत सम्पर्क करना चाहिये तथा इसके साथ ही साथ इसके द्वारा प्राप्त सुझावों पर विचार करना चाहिये ।

7. प्रशासकीय व लेखा विधि में एकरूपता: सभी भण्डारों के प्रशासकीय स्तर के निर्णयो व लेखाविधियों में एकरूपता होनी चाहिए । जिससे कि सभी भण्डारो

में एक समान रूप से निर्णय का ज्ञान हो सके । इसके साथ ही साथ लेखा विधियों में एक रूपता लाने से सम्पूर्ण भण्डारो का अंकेक्षण करने के लिए एक समिति पर्याप्त होगी जो कि इन भण्डारो का अंकेक्षण करे और सदस्यो को अंकेक्षण में पायी जाने वाली कमियों को बताये । तभी ये भण्डार अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ।

8. उपयुक्त क्रय नीति को लागू करना: इसके सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि इन भण्डारों द्वारा एक उपयुक्त क्रय नीति अनायी जाये, जिससे कि उनके द्वारा क्रय किये गये वस्तु का स्कंध, भण्डारो में न पड़ा रहे और वस्तु की कम से कम कीमत पर उचित किस्म का माल उपभोक्ताओ को उपलब्ध कराया जा सके । जब उचित क्रय नीति लागू की जायेगी तो स्कंध आवश्यकता से अधिक न होगा और नही उसमें भण्डारो की पूंजी बंद होगी परिणामस्वरूप इनके ऊपर वित्तीय संकट भी उत्पन्न न होने पायेगा ।

उपरोक्त सभी सुझावों पर विचार करने के पश्चात ही उपभोक्ता सहकारी भण्डारो को व्यापार आरम्भ करना चाहिये । यदि उपभोक्ता सहकारी संस्थाये ग्राहको की सेवाओ में वृद्धि, प्रशासकीय क्षमता में वृद्धि तथा इसके साथ ही साथ अपनी क्रय नीति को सुदृढ़ अपने अतिरिक्त संसाधनों के माध्यम से कर ले तो निश्चय ही यह अपने कार्य में काफी प्रगति कर सकता है । सरकार ने इसकी प्रगति के लिए कई योजनाये तैयार की हैं जिसके अन्तर्गत इनके सदस्यों को व्यवसायिक एवं प्रबन्धकीय कुशलता के लिए विभिन्न प्रशिक्षण स्कूल

सरकार की ओर से चलाये जा रहे है । सरकार ने महिला सदस्यों के उत्थान के लिये उन्हें प्रेरणा प्रद सुझाव पेश किये हैं । इस प्र कार यदि सरकार द्वारा दी गयी सुविधाओ एवं सुझावो को उपभोक्ता सहकारी भण्डार अमल करते हैं तो इन भण्डार का भविष्य निश्चय ही उज्जवल हो सकता है ।

चतुर्थ सर्ग

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

चतुर्थ सर्ग

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

कल्याणकारी राज्य में सुरक्षा व न्याय दिलाने के साथ ही साथ आवश्यक वस्तुएं उचित व्यवस्था द्वारा जनसाधारण को सुलभ कराना सरकार का दायित्व है । प्रकृति से प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता है और प्रत्येक उपभोक्ता स्वभाव से उचित मूल्यों पर अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु वस्तुओं की अनियमित पूर्ति के कारण होने वाली मूल्य वृद्धि उपभोक्ता वर्ग को झकझोर देती है । अभावों की दशा में जीवन उपयोगी वस्तुओं की उपलब्धता भी दुर्लभ हो जाती है । इस परिस्थिति में समाज के निर्बल वर्ग को अत्यधि कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । दूसरी ओर व्यवसाय में लगे विक्रेता स्थिति का दुरूपयोग कर उपभोक्ताओं का अधिकतम शोषण करने लगते हैं । ऐसे समय में एक ऐसी वितरण व्यवस्था की आवश्यकता होती है जो स्थायी रूप से समाज के सभी वर्गों के उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण कर सके ।

प्रत्येक सरकार को जनता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उसको आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना उसका दायित्व होता है ।

सामान्य वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादक से उपभोक्ता के बीच मध्यस्था की एक लम्बी जंजीर होती है, जिसके फलस्वरूप वस्तुओं की कीमतें अपने आप बढ़ जाती हैं, क्योंकि ये मध्यस्थ अपनी विनियोजित पूंजी का अच्छा प्रतिफल, अपनी सेवा व जोखिम का पुरस्कार तथा बढ़े हुए अन्य खर्चे वस्तु के मूल्यों में जोड़कर प्राप्त कर लेता है । अन्त में इसका भार उपभोक्ता को ही वहन करना पड़ता है । उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तुयें पहुंचने में मध्यस्थों की संख्या कम से कम होने पर मूल्यों पर नियंत्रण के साथ ही साथ उनकी शुद्धता और नियमित पूर्ति संभव है । इस कारण से मध्यस्थों पर अंकुश होना आवश्यक है । सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रत्यक्ष रूप से इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उपभोक्ताओं विशेषकर समाज के कमजोर वर्ग को उनकी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को उचित मूल्य, उचित स्थान, उचित किस्म तथा उचित समय पर उपलब्ध करना है । निहित स्वार्थपूर्ण व्यापारी वर्ग द्वारा निर्भर उपभोक्ताओं के शोषण का बलवती संभावना को तभी समाप्त किया जा सकता है । सरकार इसमें काफी प्रयत्नशील है और समस्त देश के सभी भागों में इसका लाभ पहुंचाने के लिये कृतसंकल्प है । सार्वजनिक वितरण व्यवस्था विशुद्ध रूप से सामाजिक वितरण व्यवस्था है न कि सरकारी वितरण व्यवस्था जबकि यह प्रणाली सरकार के पूर्ण नियंत्रण व मार्ग दर्शन में चलती है । इसके अन्तरगत एक उत्पादक से लेकर उद्योग पति किसान से लेकर मजदूर, फेरीवाले से लेकर

सुपर बाजार तक शामिल है । इसके माध्यम से सरकार का उद्देश्य यह होता है कि वह उपभोक्ता को अच्छी वस्तुयें उचित समय व स्थान तथा उचित मूल्य पर उपलब्ध कराये जिससे कि वे व्यापारी वर्ग द्वारा किये जा रहे दुष्कर्म से प्रभावित न हो । इसके साथ ही साथ व्यवसाय में जो कुरीतियाँ हैं जैसे चोर बाजारी, वस्तुओं का संग्रह करके अभाव पैदा कर देना जिससे कि मूल्यों में वृद्धि अपने आप से हो जाय और वे अत्यधिक लाभ कमायें । इन सब व्यापारिक कुरीतियों को समाप्त करना, मध्यस्थों का उन्मूलन करना जिससे कि वस्तुयें कम लागत पर उपभोक्ताओं को उपलब्ध करायी जा सके । वस्तुओं में हो रही मिलावट को रोकना जिससे कि उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने पाये । इसके साथ ही साथ यदि देश का उत्पादन अभाव की दशाएं आन्तरिक उपभोग को पूरा करने में पर्याप्त नहीं है तो विदेशों से वस्तुओं का आयात करना जिससे कि पर्याप्त स्टाक बनाया जा सके । फलस्वरूप अभावों की दशा में वस्तुयें उपभोक्ताओं को उचित रूप से उपलब्ध करायी जा सके ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की परिभाषा

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से दी है ।

"सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुयें उस मूल्य पर उपलब्ध कराना है, जिसको कि वे सुविधा पूर्वक वहन कर सकते हैं।"91

आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिये हर व्यक्ति प्रयत्नशील होता है। अभावों की दशा में जीवनोपयोगी वस्तुओं की पूर्ति भी दुर्लभ हो जाती है। विशेषकर ऐसी परिस्थिति में समाज के कमजोर एवं निर्धन वर्ग को अत्यन्त परेशानी का सामना करना पड़ता है, आर्थिक विषमता बढ़ने लगती है। धनी और धनी एवं गरीब और गरीब होते जाते हैं। सरकार सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के माध्यम से इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती है। उसका यह दायित्व हो जाता है कि सभी आवश्यक वस्तुयें, उपभोक्ताओं को उचित मूल्यों पर उपलब्ध कराना है, जिससे कि वे अपना जीवन यापन कर सकें। इस संदर्भ में हमारी सरकार प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही क्रियाशील है कि देश के सभी उपभोक्ताओं को सही समय एवं सही मूल्य पर आवश्यक वस्तुयें उचित मात्रा में प्राप्त है।

"भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली वह फुटकर व्यवस्था है, जो राज्य के निरीक्षण एवं मार्गदर्शन में चलती है।"92

---

91. इण्डियन जर्नल आफ मार्केटिंग, जनवरी फरवरी 1981

92. ढोलकिया एन, एण्ड खुराना, पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम आक्सफोर्ड

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विचार कुछ विशिष्ट अनुमानों पर आधारित है । न तो यह समाजवादी देशों की भांति राज्य स्वामित्व वितरण व्यवस्था है और न ही स्कैंडिनेवियन देशों की भांति उपभोक्ता सहकारिता की स्वतंत्र योजना । सार्वजनिक वितरण प्रणाली लगभग विश्व के अधिकांश देशों में प्रचलित है । चाहे उसे विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से क्यों न पुकारा जाता हो । समाजवादी देशों में जो समाजवाद में विश्वास रखते हैं । कि हर व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु, उचित मात्रा, उचित स्थान पर समान रूप से प्राप्त करायी जायें । कहीं भी किसी भी प्रकार की असमानता दृष्टिगोचर न हो, जिससे कि जनता का अधिकतम कल्याण हो सके । अन्य देशों में यह प्रणाली स्वतंत्र रूप से काम करती है, इस प्रणाली में किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं लगाया जाता क्योंकि वस्तुओं के पर्याप्त उत्पादन व पूर्ति के परिणाम स्वरूप देश में किसी भी प्रकार की वस्तु का अभाव नहीं होता, जिससे कि वितरण व्यवस्था स्वतंत्र रूप से कार्य करती रहती है । जबकि भारत में यह प्रणाली एक पुटकर व्यवस्था है जो कि राज्य के निरीक्षण में तथा राज्य जिस-जिस वस्तु के व्यवसाय को उसको सौंपता हैं, उसको करती है ।

"सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आशय आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के स्थान, समय एवं आर्थिक पहलू की उपयोगिता का ध्यान रखते हुए न्यायपूर्ण कीमत तथा उपर्युक्त आधार पर सामान वितरण की समुचित व्यवस्था है।"[93]

---

93. उद्योग व्यापार पत्रिका, जुलाई 1982

सार्वजनिक वितरण प्रणाली वितरण के क्षेत्र में समाज के कमजोर एवं निर्धन वर्ग के उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार दैनिक उपभोग की वस्तुयें उचित मूल्य एवं उचित समय पर उपलब्ध कराने का प्रयास करती है।[94]

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि "सार्वजनिक वितरण प्रणाली सभी उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन व उनकी गुणवत्ता के आधार पर उचित मूल्य एवं उचित समय तथा उचित मात्रा में उपभोक्ता तक पहुंचाने की वह प्रक्रिया है जिस पर सरकार का नियंत्रण रहता है ।

(ख) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लक्षण

परिभाषाओं के विश्लेषण करने पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के निम्न लक्षण दर्शित होते हैं :-

2. आवश्यक वस्तुयें

इस प्रणाली का प्रमुख लक्षण यह है कि वह प्रणाली केवल आवश्यक वस्तुओं से सम्बन्धित होती है न कि आरामदायक या विलासिता की वस्तुओं, उपभोक्ता जिस वस्तु को दैनिक आवश्यक आवश्यकता के रूप में

---

94. योजना 31 मार्च 1987 पृष्ठ 22

चाहता है जिसके बिना उसका जीवन नहीं चल पायेगा जैसे गेहूं, चावल, चीनी, दाल, कपड़ा इत्यादि से सम्बन्धित है न कि विलासिता की वस्तुओं जैसे कार, स्कूटर, टेलीवीजन इत्यादि ।

2. उचित समय तथा उचित मूल्य

इस प्रणाली का एक प्रमुख लक्षण यह भी है कि सभी उपभोक्ताओं को उचित समय तथा उचित मूल्य पर ही वस्तुओं की पूर्ति की जायेगी । कहने का तात्पर्य ऐसा न हो कि जब इन वस्तुओं की आवश्यकता न हो तब, और जब आवश्यकता हो तब नहीं । उचित समय पर वस्तुयें उपलब्ध करायी जायेगी । इसके साथ ही साथ "उचित मूल्य" जितना कि उपभोक्ता आसानी से दे सके जिससे कि उसको किसी भी प्रकार की असुविधा न उठानी पड़े । ऐसा न हो कि अत्यधिक ऊंचे मूल्यों पर वस्तुयें उपलब्ध करायी जायेगी तो इस प्रणाली का उद्देश्य ही पूरा न होगा ऐसी अवस्था में इस वितरण व्यवस्था की आवश्यकता ही क्या है ।

3. अन्तिम उपभोक्ताओं के प्रति सेवा

इसका सम्बन्ध अंतिम उपभोक्ता से ही होता है न कि मध्य उपभोक्ताओं से, अर्थात जिन उपभोक्ताओं को इन वस्तुओं की पूर्ति करायी जाती है, वही इसका उपभोग भी करते हैं, ऐसा नही है कि वे इसका पुनः विक्रय करें, इसमें सीधा सम्बन्ध उत्पादक से अंतिम उपभोक्ता का होता है।

4. सार्वजनिक हित

यह वितरण प्रणाली सम्पूर्ण समाज के लिये होती है न कि समाज के एक वर्ग के लिये। समाज का चाहे वह निर्धन वर्ग हो या धनी वर्ग सभी को इस व्यवस्था से लाभ होता है। सरकार इस प्रकार का कोई भी बन्धन नहीं रखती, जिससे केवल निर्धन वर्ग को ही इस प्रणाली से वस्तुयें प्राप्त होगी। यह व्यवस्था सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए लागू की जाती है।

5. वितरण व्यवस्था

इस प्रणाली का सम्बन्ध जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह प्रणाली वितरण व्यवस्था से सम्बन्धित है न कि उत्पादन से, जितना उत्पादन होता है उसी के अनुरूप वितरण किया जाता है। उत्पादन से इसका कोई सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नहीं होता। इसका सीधा सम्बन्ध वितरण व्यवस्था से ही है।

§ग§ भारतीय सन्दर्भ में सार्वजनिक वितरण की अवधारणा

आवश्यक वस्तुओं की उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ वितरण की उपयुक्त व्यवस्था के द्वारा ही उपभोक्ता को सही वस्तुयें उचित मूल्यों पर उपलब्ध करायी जा सकती है। भारत अभी तक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में आत्म निर्भर नहीं बन पाया है, जिसके परिणाम स्वरूप

अनिवार्य वस्तुओं के अभाव की समस्या बनी रहती है । इसके अतिरिक्त मध्यस्थों द्वारा जमाखोरी की प्रवृत्ति अपनाकर कृत्रिम अभाव पैदा कर दिया जाता है । इस समस्या के समाधान के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली का समय-समय पर प्रयोग किया गया है ।[95] अभावों की दशा में प्रणाली का व्यापारी वर्ग, जमाखोरी करके वस्तुओं की कीमतों को बढ़ाने में सहयोग करते हैं, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है जिससे कि कमजोर वर्ग के उपभोक्ताओं को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । मंहगाई की दशा में अधिक आय भी कम महसूसहोता है । अतः आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति सुलभ बनाकर उनके मूल्यों पर नियंत्रण अनेक कारणों से अनिवार्य है । वास्तविक अर्थों में "संतोषजनक वितरण प्रणाली सरकार की मजदूरी आय, व मूल्य नीति का एक अंग होती है ।" इसका तात्पर्य यह है कि मजदूरी व वेतन का निर्धारण कुछ हद तक मूल्य स्तर से होता है । मूल्य स्तर पर प्रभावी नियंत्रण सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से ही संभव है ।

हमारी सरकार समाजवाद की स्थापना करने में कृत संकल्प है । इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु का न्यायोचित वितरण हो जिससे कि प्रत्येक उपभोक्ता को आवश्यक वस्तुयें, सही समय तथा उचित मूल्य पर प्राप्त हो । इसके लिये यह आवश्यक है कि हमें न केवल सार्वजनिक क्षेत्र पर

---

95. इण्डियन जर्नल आफ मार्केटिंग, अक्टूबर, नवम्बर 1981

ही अंकुश लगाना पड़ेगा बल्कि सम्पूर्ण निजी क्षेत्र पर भी अंकुश लगाना आवश्यक होगा। इसके साथ ही साथ वितरण व्यवस्था में लगी सम्पूर्ण ईकाइयों पर भी पर्याप्त नियंत्रण रखना पड़ेगा, जिससे कि इस वितरण व्यवस्था में संलग्न ईकाइयों व्यवस्था का दुरूपयोग न कर सकें। यह तभी संभव हो सकता है जब हम उपरोक्त सभी कार्यों को ठीक ढंग से सम्पादित करें उसके साथ ही साथ जन सहयोग का भी होना नितांत आवश्यक है। यदि जन सहयोग न होगा तो लोगों में जागरूकता नहीं होगी तो इस दशा में कोई भी प्रणाली या अर्थ व्यवस्था अपने उद्देश्यों में पूरी तरह सफल नही हो सकती। इन सब उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये सरकार ने वितरण के क्षेत्र में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अपनाया जिससे कि उपभोक्ता के हितों का संरक्षण ही तथा दुर्बल वर्ग के उपभोक्ता का कल्याण हो सके।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली सरकारी वितरण व्यवस्था न हो कर शुद्ध रूप से सामाजिक वितरण व्यवस्था है जिसको सशक्त बनाने व सुचारू संचालन के लिये सरकार का सहयोग अपेक्षित है। इस प्रणाली में सरकार भी अपना सहयोग देती है। परन्तु इसके साथ ही साथ इसमें किसान से लेकर बड़े-बड़े उद्योगपति तक, प्रत्येक उत्पादक को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन करने की, और फेरी वाले से लेकर सुपरवाइजर तक सभी वितरकों को नैतिकता के आधार पर उचित वितरण की व्यवस्था करनी होती है। यदि इन उपरोक्त वर्गों में से कोई भी एक वर्ग अपनी जिम्मेदारी

को ठीक ढंग से निष्पादित नहीं करता तो सम्पूर्ण वितरण व्यवस्था विफल हो जाती है। इसलिये इस सार्वजनिक वितरण प्रणाली को प्रभावी बनाने के लिये यह नितांत आवश्यक है। कि सभी का सहयोग प्राप्त होता रहे, तभी यह सफल हो सकती है।

(घ) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के उद्देश्य

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल उद्देश्य उपभोक्ताओं विशेषकर समाज के कमजोर वर्ग की उनकी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को उचित मूल्य, उचित स्थान, उचित किस्म तथा समय पर उपलब्ध कराना है। आवश्यक वस्तुओं के अभाव तथा मूल्य वृद्धि की दशा में निर्बल व मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं को दैनिक उपभोग की वस्तुयें प्राप्त करने में अनेक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। वस्तुओं की पूर्ति व उनके मूल्य उत्पादन की मात्रा पर निर्भर होते हैं किन्तु अनेक दशाओं में पर्याप्त उत्पादन के उपरान्त सभी वितरण व्यवस्था के न होने के कारण उपभोक्ताओं को वस्तुयें उपलब्ध नहीं हो पाती और यदि उपलब्ध भी होती है तो ऊँचे मूल्य पर। अतः सार्वजनिक वितरण प्रणाली जिसका प्रमुख उद्देश्य समानता के आधार पर आवश्यक वस्तुओं का वितरण करना है जिसमें कि सभी वर्गों के उपभोक्ताओं को इससे लाभ हो। इस प्रकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रयोग समय-समय पर विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य जनता को आवश्यक उपभोक्ता वस्तुयें केवल उपलब्ध करना मात्र ही था,

उस समय वस्तुओं के मूल्यों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था । क्योंकि अभाव की अवस्था में वस्तुयें उपलब्ध करना ही मुख्य उद्देश्य था । वर्तमान में इसके निम्न उद्देश्य है :-

1. उपभोक्ताओं के कल्याण हेतु सुविधा प्रदान करना

समाज के कमजोर वर्ग के उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि सही स्थान व उचित मूल्य पर कराना इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है । समाज में प्रत्येक स्तर के व्यक्ति होते है । कुछ अमीर होते हैं और कुछ गरीब । परन्तु सभी को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है । भोजन के साथ ही साथ उसकी कुछ दैनिक आवश्यकता इसके अतिरिक्त अनुभव होती है इन सभी दैनिक उपभोग की वस्तुओं को समाज के कमजोर वर्ग को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना, जिससे कि वह व्यापारी वर्ग के द्वारा किये गये कृत्रिम अभावों के परिणाम स्वरूप मूल्य वृद्धि से प्रभावित न हो । केवल उचित मूल्य पर ही वस्तुयें उपलब्ध कराना इसका उद्देश्य नहीं है वरन् उचित किस्म व उचित समय पर उपलब्ध कराना भी है । ऐसा नहीं है कि जब किसी वस्तु की आवश्यकता का अनुभव किया जाये उस समय वस्तु की प्राप्ति न हो ऐसा नहीं, वरन् समय से प्रत्येक वस्तु उपलब्ध कराना और उपलब्ध वस्तुयें उचित किस्म की हो, ऐसा न हो कि ये वस्तुयें खाने योग्य न हो, उसकी किस्म पर भी पूरी तरह नियंत्रण होगा । इन्ही उद्देश्यों को लेकर सार्वजनिक वितरण

प्रणाली का उद्गम एवं प्रादर्भाव हुआ जिससे कि उपभोक्ताओं का अधिकतम कल्याण किया जा सके ।

2. मूल्य वृद्धि पर नियंत्रण

जब बाजार में व्यापारी वर्ग द्वारा कृत्रिम अभाव, जमाखोरी करके पैदा कर दिया जाता है तब कृत्रिम अभाव के परिणाम स्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में असामाजिक रूप से वृद्धि होती जाती है क्योंकि वस्तुओं की पूर्ति कम होती जाती है, मांग में इसकी पूर्ति की तुलना में कोई भी कमी नहीं आती । वस्तुओं के मूल्यों पर नियंत्रण करने के प्रमुख उद्देश्य को लेकर ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अपनाया गया है । इसके माध्यम से इन अभावों की दशा में वस्तुओं की निरन्तर पूर्ति बनायी रखी जाती है परिणाम स्वरूप वस्तुओं के मूल्य वृद्धि पर नियंत्रण कर लिया जाता है । और प्रत्येक उपभोक्ताओं की आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्यों पर उपलब्ध करायी जाती है ।

3. उपभोक्ताओं को पर्याप्त संरक्षण देना

इस व्यवस्था द्वारा उपभोक्ताओं को वस्तुओं के सम्बन्ध में पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाता है, ताकि उनको आवश्यक वस्तुएं उचित समय व उचित मूल्यों पर प्राप्त हो सके । इसके साथ ही साथ मिलावट को रोकने के लिये इस प्रकार से अधिनियम पारित किये जाते है और उन अधिनियम को कड़ाई के साथ लागू किया जाता है, जिससे कि व्यापारी वर्ग उपभोक-

ताओं का शोषण न कर सके और उनके हितों का अधिकाधिक समबर्द्धन किया जा सके ।

4. व्यवसायों की कुरीतियों का अन्त करना

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एक उद्देश्य यह भी है कि जब समाज में व्यवसायी वर्ग कृत्रिम अभाव पैदा करके, उपभोक्ताओं का अधिकतम शोषण करके, अत्यधिक लाभ कमाने लगते है उस दशा में वस्तुओं का कृत्रिम अभाव हो जाता है मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि होने लगती है उस दशा में वितरण प्रणाली के द्वारा जो वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति की जाती है दूसरी ओर इस प्रकार के व्यवसायियों के विरुद्ध अधिनियम पारित करके इस प्रकार के मूल्य वृद्धि में रोक लगाते है । इन अधिनियमों को कड़े रूप से लागू करके मूल्यों में वृद्धि होने से रोक लगाती है ।

5. मध्यस्थों का उन्मूलन करना

सार्वजनिक वितरण प्रणाली मध्यस्थों का उन्मूलन करके उपभोक्ता व उत्पादन के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है । इन मध्यस्थों के फल-स्वरूप उत्पादक व उपभोक्ता के मध्य जितनी कड़ी होती है उसको समाप्त करने से वस्तु की लागत अपने आप कम हो जाती है । प्रत्येक मध्यस्थ अपनी लगायी गयी पूंजी का कुछ न कुछ लाभ अवश्य चाहता है । और वह अपनी पूंजी का लाभ अपने द्वारा बेची गयी वस्तु में सम्मिलित कर लेता है । इस

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उद्देश्य यही है कि सभी मध्यस्थों थोक विक्रेता आढ़तिया तथा कमीशन एजेण्टों को समाप्त करना, जिससे कि वस्तु की लागत में कमी आये और वस्तुयें सभी उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर उपलब्ध करायी जा सके ।

6. रोजगार के अवसर प्रदान करना

इस वितरण प्रणाली का उद्देश्य यह भी है कि इसके माध्यम से रोजगार के अवसर में वृद्धि की जाय । उचित मूल्य की दुकाने इस, जन वितरण प्रणाली का मुख्य आधार स्तम्भ है क्योंकि इन्हीं दुकानों के माध्यम से सरकार सभी उपभोक्ताओं को वस्तुओं की पूर्ति करती है । इसके साथ ही साथ सहकारी भण्डार, राशनिंग व्यवस्था की सम्पूर्ण मशीनरी में लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है । इस तरह सार्वजनिक वितरण प्रणाली रोजगार के अवसर प्रदान करने में सहायक होती है ।

7. वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति बनाये रखना

देश में वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति बनाये रखने के लिये, विदेशों से आवश्यक वस्तुओं का आयात किया जाता है । जब देश में अकाल महामारी या युद्ध की स्थिति में जब सारी अर्थव्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है । तो अभाव पैदा हो जाता है ऐसी दशा में वस्तुओं की पूर्ति निरन्तर बनाये रखने के लिये विदेशों से आयात करना पड़ता है । सार्वजनिक वितरण प्रणाली

के माध्यम से वस्तुयें विदेशों से आयात, अभाव की दशा में की जाती है । इस प्रणाली के अन्तर्गत न केवल विदेशों से पर्याप्त आवश्यक वस्तुओं का आयात ही करना पड़ता है वरन् उसका पर्याप्त भण्डार भी अपने यहां रखना पड़ता है जिससे कि वस्तुयें धूप या वर्षा से नष्ट न हो ।

(च) भारत में वितरण प्रणाली का विकास

वितरण प्रणाली का जितना महत्व वर्तमान समय में है, उतना महत्व प्राचीन समय में नहीं था । वितरण व्यवस्था का उद्गम एवं प्रादुर्भाव मनुष्य के विकास क्रम के साथ हुआ । विकास के प्रारम्भिक चरण में मनुष्य असभ्य था । उसकी आवश्यकतायें अत्यन्त ही सीमित थी । सीमित आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप उसे जो भी प्राप्त होता था, उसी से अपना पेट भर लेता था । अत: वितरण व वितरण की समस्या का प्रश्न ही नही था । विकास की अवस्था के साथ जब मनुष्य ने परिवार व्यवस्था को अपनाया और कृषि करना आरम्भ कर दिया, उस समय प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की कृषि को ही करता था और आपस में वस्तु की अदला बदली, आवश्यक वस्तु से कर लेता था । इस समय भी आवश्यक वस्तु का महत्व कम नही था वस्तु विनिमय प्रथा इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही आवश्यक वस्तुओं के प्रति सचेत रहा है ।

पुराणों में वितरण के संदर्भ में स्पष्ट संकेत मिलता है । समुद्र मंथन के समय सुर और असुर मिलकर समुद्र का मंथन किया था और उससे अमूल्य

वस्तुयें सागर की गर्भ से निकली थी जिनका वितरण देवताओं और दानवों के मध्य किया गया । यद्यपि वितरण का वह स्वरूप आज के वितरण से भिन्न है तथापि उस समय भी वितरण की स्थिति दृष्टिगोचर होती थी ।[96] वास्तव में सामान वितरण व्यवस्था के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उद्गम हुआ और मनुष्य के कृमिक विकास के साथ साथ इसका विकास होता रहा ।

प्राचीन काल में सार्वजनिक वितरण

वैदिक काल में पशु पालन व कृषि जीविका के आधारभूत साधन थे । आवश्यकता सीमित होने के कारण जो व्यक्ति जिस वस्तु का उत्पादन करता था, उसका कार्य उसी से चल जाता था । अर्थात् उत्पादक ही स्वयं उपभोक्ता थे । विकास क्रम के साथ-साथ व्यापार वाणिज्य उद्योग और प्रत्यक्ष सेवाओं के विस्तार का इतिहास साक्षी है । कालान्तर में भारतीय समाज व्यवस्था वर्णों के आधार पर विभक्त हो गयी । तीसरे वर्ग पर आने वाले वैश्य वर्ग को पशुपालन, कृषि, वाणिज्य आदि कार्यों का दायित्व सौंपा गया । वैश्य अन्य वर्गों के उपयोग का आयोजन करने लगे । वैदिक युग की समाप्ति के बाद नागरिक जीवन का विकास हुआ । श्रेणी समूहों ने व्यक्तिगत कार्य व्यवस्था का स्थान ले लिया । वाणिज्य की उन्नति नगरों के साथ हुयी । ग्रामों व नगरों में प्रचलित सामान्य वस्तुओं का व्यापार

---

96. प्रो.जी.सी.अग्रवाल, व्याख्यान, विपणन की आधुनिक विचारधारा 23 मार्च 1987

दुकानों के माध्यम से या फेरीवालों के माध्यम से होता था। स्थानीय आवश्यकतानुसार देश के समस्त भागों में भेजा जाता था। परिवहन की सुविधा की अनुपलब्धता के कारण वस्तु वितरण में बहुत कठिनाई होती थी।

भारत में कौटिल्य जैसे महान व्यवस्थाकार ने भी सदैव वाणिज्य में उचित मूल्य पर ही बल दिया। धर्म-सूत्रों में वस्तुओं के भावों में अति वृद्धि की निंदा की है। इसी के फलस्वरूप व्यवसाय में उचित मूल्य तथा उचित लाभ ने तत्कालीन शासननीति के उद्देश्यों के अन्तर्गत प्रमुख स्थान ग्रहण किया। कौटिल्य ने भी वाणिज्य एवं व्यवसाय पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण स्वीकार किया है। उन्होंने व्यापारियों को चोर की भांति माना है। अनुचित लाभ से आय वृद्धि करने के परिणाम स्वरूप राज्य सदैव उन्हे संदेह की दृष्टि से देखता था। व्यापारियों एवं व्यवसायियों के कार्यों में सदैव राज्य हस्ताक्षेप करता था। बहुत से आवश्यक वस्तुओं के व्यापार व उत्पादन के सम्बन्ध में राज्य को विशेष अधिकार प्राप्त थे। राज्य की ओर से बराबर यह प्रयत्न किया जाता था कि प्रजा को अधिकाधिक वस्तुयें कम मूल्य पर प्राप्त हो सके। उसने यह भी बताया कि सभी कारखाने राजा अपनी पूंजी लगाकर स्वयं खोले, जिससे देश में कारीगरों व मजदूरों को उनके श्रम का उत्तम प्रयोग हो। इसी कारण कोई भी व्यवसायी बिना राजाज्ञा प्राप्त किये हुये कोई भी व्यापार प्रारम्भ नही कर सकता

था । यदि वह ऐसा करता था तो उसका माल जब्त कर लिया जाता था । वितरण व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से कौटिल्य काल में पर्याप्त नियन्त्रण लगाये गये थे । इस वितरण व्यवस्था तथा राज्य द्वारा लगाये गये अंकुशों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का किंचित दर्शन होता था ।[97] प्राचीन काल में वितरण व्यवस्था से बुराइयाँ दूर करने के लिए अनेक व्यवस्थायें अपनायी गयी थी जो निम्न है :-

(क) वस्तु की किस्म पर नियंत्रण :- किस्म के नियंत्रण के विषय में भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था । कोई भी माल बिकने से पूर्व राज्याधिकारियों को दिखाया जाता था और उनकी स्वीकृति के पश्चात् ही वह माल बिकने के लिये बाजार में आता था, तथा इसके साथ ही साथ उसकी कीमत भी निश्चित कर दी जाती थी । उपभोक्ता के हितों का पर्याप्त संरक्षण किया जाता था । मिलावट करने वालू को दण्ड दिया जाता था । एक अबोध बालक भी बाजार से वस्तु खरीद लाता था, उसके भी ठगे जाने का कोई भय नहीं होता था ।

(ख) नाप-तौल सम्बन्धी नियंत्रण :- नाप व तौल में राज्य का पूर्ण नियंत्रण था । इसको दूर करने के लिये एक तौल-नाप राजकीय अधिकारी की नियुक्ति होती थी जो कि तुला और बांट बनवाकर उसे उचित दाम पर बेचता था तथा इन बांटों का प्रत्येक व्यवसायी चार महीने के अन्दर परिशोधन कराते

---

97. जगन प्रसाद गुप्त एवं भगवानदास केला कौटिल्य के आर्थिक विचार

थे । वे समय-समय पर इसका आकस्मिक निरीक्षण भी करते थे । अनियमितता पाये जाने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था थी ।

§ग§ लाभ व उचित मूल्य :- शासन नीतियों के अन्तर्गत इसका बहुत ही प्रमुख स्थान था नीच प्रवृत्ति वाले व्यापारी वस्तुओं का अधिक मूल्य बता कर ग्राहकों को धोखा दिया करते थे । कौटिल्य उनकी स्वार्थपूर्ण नीति जानकर उनको "चोर न कहे जाने वाले चोर" की संज्ञा देता था उसका अर्थ यह था कि ऐसे व्यवसायी व कारीगर से देश की रक्षा करनी चाहिये । इस प्रकार की बुराइयों से बचने के लिये कीमते निश्चित कर दी जाती थी । व्यापारी की लाभ की दरें भी निश्चित कर दी जाती थी । तथा अधिक मूल्य लेने वाले व्यापारी दण्डित किये जाते थे । यदि कोई व्यापारी अधिक मूल्य पर माल को बेचता था तो जितनी अधिक आमदनी होती थी और उसका शुल्क दोनों पर बेचने में कोई लाभ नहीं होता था इस लिये कोई भी व्यापारी अपना माल अधिक कीमत पर नही बेचता था ।

§घ§ धोखाधड़ी पर नियन्त्रण :- घटिया वस्तुओं को धोखे से बढ़िया बता कर बेचने पर दण्ड का प्राविधान था । जो वस्तु जहाँ उत्पन्न नहीं हुयी, वहाँ की बताकर बेचने पर दण्ड था । अन्य कीमती वस्तुओं को भी गलत बताकर बेचने पर भी यथेष्ट नियंत्रण रखा गया था । किसी भी उपभोक्ता से छल करके वस्तुओं को बेचने पर भारी दण्ड की व्यवस्था थी ।

§च§ <u>जमाखोरी व सट्टेबाजी पर नियंत्रण</u> :- जो व्यापारी माल का कृत्रिम अभाव बना देता था और वस्तुओं का मूल्य अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करता था । उन व्यापारियों की वस्तुओं को मनमाने मूल्यों पर बेचने पर भारी दण्ड देने की व्यवस्था थी ।

§छ§ <u>मांग पूर्ति पर नियंत्रण</u> :- आवश्यक जीवनोपयोगी वस्तुओं विशेष रूप से खाधान्न की उपलब्धता समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये जरूरी है अन्यथा अभावों की दशा में असामाजिक पृवित्तयां विकसित होने लगती है । मांग के अनुरूप वस्तुओं का संग्रह किया जाता था । कौटिल्य के अनुसार प्रत्येक नगर में अन्न, घी, तेल, नमक, सूखे मांस, औषधि, चारा, लोहा, लकड़ी, कोयला, चमड़ा इत्यादि आवश्यक पदार्थों का इतना संग्रह कर लिया जाये कि वह समय पर काम दे । ऐसा माल जो देश में कठिनता से प्राप्त होता हो, वह प्रजा के लिये आवश्यक हो, ऐसे माल पर चुंगी न ली जाय जिससे कि ऐसा माल अधिक मात्रा में आ सके ।

दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति ग्राम नगर स्वावलम्बी होता था, उसे दूसरों के ऊपर आश्रित नहीं होना पड़ता था, भारत के कुछ विभिन्न स्थान कुछ विशेष पैदावार के लिए, उद्योग धन्धों के लिये प्रसिद्ध थे । व्यापारी लोग विभिन्न पदार्थों को देश में भिन्न-भिन्न स्थानों में ले जाकर बेचते थे । इस प्रकार देश में कहीं भी किसी भी वस्तु का अभाव नही था । जनता के हितों को ध्यान में

रखते हुये वह राजकीय हस्तक्षेप के पक्ष में था । उसे प्रजा की भलाई का यथेष्ट ध्यान था । वह कहता है कि - "राजा को अपने देश में उत्पन्न तथा विदेश से आयातित वस्तु का इस प्रकार विक्रय व वितरण करना चाहिये जिससे कि प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो ।" सभी व्यवस्थाओं का एक ही उद्देश्य था कि "खरीदने वालों का सदैव नियत मूल्य पर अच्छा माल मिले, जिससे कि उन्हें माल की परीक्षा करने, मूल्य निश्चित कराने आदि की कठिनाइयों से मुक्ति मिल सके । इससे स्पष्ट है कि उस समय भी सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए वितरण व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था ।

मुगल काल में सार्वजनिक वितरण व्यवस्था

शासक बदलते रहने के कारण देश की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आता गया । परिणामस्वरूप व्यापार व वाणिज्य में भी बदलाव आता रहा । मुगलकाल में व्यापारियों को राज्य के अधिकारियों व कर्मचारियों से हमेशा भय बना रहता था । उस समय के कर्मचारी व अधिकारी व्यापारी से मनमाने ढंग से लगान वसूल करते थे, जो वे कहते थे वही सब उन सब को देना पड़ता था । बड़े-बड़े सूबेदारों व मनसूबेदारी के हाथ व्यापारियों को अपना माल बेचने के लिए विवश होना पड़ता था । यहाँ तक कि वे अपनी लागत से कम पर माल बेचते थे । इस समय शासन का व्यापारिक नीति तथा उचित नियन्त्रण की

अभाव की दशा में उत्पादक व उपभोक्ता आपस में एक दूसरे को दुश्मन की नजर से देखते थे। जिसका कि लाभ शासक वर्ग को प्राप्त होता था। वस्तुओं का उत्पादन समाज को आवश्यकतानुसार न होकर, अमीर वर्ग या शासक वर्ग की इच्छा पर होता था। उपभोक्ता वर्ग कई वर्गों में विभक्त था, जिससे कि वे संगठित न हो पाते थे। अमीर लोग, धन लोलुपता एवं विलासिता के शिकंजे में बुरी तरह जकड़े थे। उन्हें यह महसूस ही नही होता था कि गरीब बेचारी अभाव की दशा में अपना जीवन तो नही खो बैठ रहे है। इस समय साधारण औसत दैनिक वस्तुएं सस्ती थी तथा मनुष्य की आवश्यकताएं कम थी, उन्हें पर्याप्त मात्रा में दैनिक वस्तु की प्राप्ति हो जाया करती थी, जिससे कि उन्हें अभाव का अनुमान ही नही होता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का विकास

अंग्रेजों के शासन काल में उनकी दमन व शोषण नीति के परिणाम स्वरूप भारतीयों की अत्यन्त दयनीय दशा थी। आवश्यक वस्तुओं का सर्वथा अभाव था। नैसर्गिक प्रकोपों से सुरक्षा का उपाय न किये जाने के कारण भारतीयों को खाद्यान्नों के लिये भी तरसना पड़ता था। शासन की ओर से आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन व वितरण की कोई भी समुचित व्यवस्था न थी, बल्कि इसके विपरीत 1770 में भयंकर बंगाल अकाल के कारण वस्तुओं के मूल्यों में इतनी वृद्धि हो गयी कि जनता के पास इतना

धन नही था कि वे वस्तुओं को खरीद सके, इसके बावजूद भी सरकार ने कड़ाई के साथ लगान वसूल किया । जब 1876-77 में अकाल पड़ रहा था । तो माल लाभ कमाने के लिए यूरोप को गेहूं निर्यात किया जा रहा था । ब्रिटिश काल में आम भारतीयों के लिए उत्पादन-वितरण के प्रति पूर्ण उपेक्षा की नीति को अपनाया गया था जब कि राज्य का दायित्व मानवीय नैतिक मूल्यों के आधार पर जनता की सुरक्षा और न्याय दिलाने के साथ - साथ उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उचित ढंग से आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराना भी होता है ।

बीसवीं शताब्दि के दूसरे दशक में प्रथम विश्वयुद्ध के कारण वस्तुओं के अभावों की पूर्ति और मूल्य वृद्धि पर नियंत्रण के लिये भारत में कोई विशेष व्यवस्था नही बनायी गयी । 1929-30 की व्यापक आर्थिक मंदी का प्रभाव काफी समय तक बना रहा । लोगों की क्रय शक्ति काफी कम हो गयी । द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व निर्धनता अधिक होने के कारण मांग कम रहती थी जिससे वस्तुओं के कमी का अभाव नहीं होता था । उपभोक्ता अभावों में भी गुजारा कर लेते थे । फलस्वरूप जमाखोरी और मुनाफाखोरी को प्रोत्साहन नही मिल पाता था, न ही वस्तुओं के वितरण की कोई समस्या ही थी । प्राकृतिक कमी और उपभोक्ता की मनोवृत्ति के कारण भी वितरण की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गयी थी । उत्पादक व व्यवसायी, वर्ग, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति को जमा करके, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों

को बढ़ाने में सहयोग कर रहे थे । इस समय खाद्य सामग्री की वृद्धि असमान रूप से हो रही थी । वस्तुओं के मूल्यों में नवम्बर 1942 से लेकर मई 1943 तक निरन्तर वृद्धि होती रही । इन छह महीनो में से प्रथम दो महीनों में तो वस्तुओं के मूल्यों में कुछ हद तक स्थिरता रही, परन्तु शेष चार महीनों में तो अकाल के कारण सबसे बुरा समय रहा क्योंकि वस्तुओं की कीमते बहुत तेजी के साथ बढ़ रही थी । मूल्यों के बढ़ने के कारण, सबसे अधिक प्रभाव गरीब व निर्धन वर्ग पर पड़ा तथा भूखो मरने लगे । अकाल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार जो भी कीमते बढ़ी इसके पीछे प्राकृतिक कमी, जमाखोरी, खाद्यान्नों के अधिलाभ मुख्य तत्व थे जो कि असमान रूप से कीमतों के बढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे ।

भारत के इतिहास में बंगाल अकाल के कारण सर्वप्रथम 1943 में खाद्यान्नों के मूल्य को नियन्त्रित करने के लिये सरकार ने प्रयास किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अकाल के कारण वह निरर्थक हो गया । इसके पश्चात् यह विचार व्यक्त किया गया कि सरकार अनाज या खाद्यान्नों के व्यापार व मूल्य में हस्तक्षेप न करे बल्कि वह खाद्यान्नों के मूल्यों को निश्चित दर पर उपलब्ध कराने के लिये प्रयत्न करे । जापान ने जब युद्ध घोषित किया तो उस समय बंगाल सरकार खाद्य सामग्री को बढ़ाने के लिये कृत संकल्प थी । उसने जनता में यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि सभी लोग अपने - अपने घरों में दो महीने की खाद्य सामग्री रख ले । यह सर-कार की सबसे प्रथम व महत्वपूर्ण गलती थी, परिणामतः लोगों ने अपने -

"डेनियल नीति" के अन्तर्गत रखे गये स्टाक के कारण सरकार ने मूल्यों को बढ़ने पर रोक लगाने में सफल तो होती, क्योंकि जब व्यापारी वर्ग जमाखोरी की प्रवृत्ति अपनाकर मूल्यों को बढ़ाने लगते थे, तो सरकार अपने द्वारा रखे गये स्टाक से खाद्यान्न की पूर्ति बाजार में बढ़ा देती थी, जिसके परिणामस्वरूप मूल्य अपने स्थान पर आ जाता था । सरकार ने इसी समय एक खरीद एजेन्सी की स्थापना करने का विचार किया, उसका काम यह था कि आधिक्य फसलों को किसानों से खरीदकर इकट्ठा कर ले जिसका कि वितरण शहरी क्षेत्रों में किया जा सके, परन्तु अभावों के कम होने पर सरकार ने अपने कर्तव्यों में थोड़ी ढील दे दी । जिसके कारण यह असफल रहा दिसम्बर 1942 तक कोई भी खरीद एजेन्सी की स्थापना नही की गयी थी । इस कारण स्थिति अपने आप हाथ से निकल गयी थी, जमाखोर व्यापारियों ने खरीदना प्रारम्भ कर दिया इस कारण पूर्ति अव्यवस्थित हो गयी, मूल्यों में पुनः दिसम्बर 1942 में वृद्धि होने लगी । मूल्य वृद्धि में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बड़े पैमाने पर खरीद, वृहतरूप से असामान्यवादिता तथा जमाखोरी थी ।

खरीद कार्य सर्वप्रथम राजशाही मण्डल में 22 दिसम्बर 1942 से प्रारम्भ हुआ इसका लक्ष्य 7.400 टन था । प्रत्येक जिला के जिलाधिकारी द्वारा खरीद कार्य निर्धारित कर दिया गया । अधिकारियों द्वारा धीमी खरीद के कारण इस योजना को समाप्त कर दिया गया । इस समय सरकार ने सारे नियंत्रण वापस ले लिये । सरकार ने इस समय स्थिति को देखते

हुए यह समझा कि बाजार में जो मूल्य नियंत्रण की कमियां है वह यह है कि वे असमान्य रूप से लाभ कमा सकते है सरकार का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि जहां पर वस्तुओं का अभाव है वहां पर आधिक्य वाले क्षेत्रों से वस्तुओं को पहुंचाना, जिससे कि उस क्षेत्र से वस्तुओं की पूर्ति समय पर की जा सके ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भिक दिनों में ही आवश्यक वस्तुओं का अभाव उत्पन्न होने के कारण उनके मूल्यों में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि होने लगी, परिणामस्वरूप सरकार ने अपना ध्यान इस ओर लगाया । इस स्थिति से निपटने के लिये तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुयें उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का प्रारम्भ नियंत्रण तथा उचित मूल्य की दुकानों के रूप में बम्बई में 1939 में किया गया । 1943 में बंगाल अकाल के कारण भारत को गंभीर रूप से खाद्य समस्या का सामना करना पड़ा, इससे न निपट पाने के कारण सरकार मूल्य वृद्धि को न रोक पायी जिससे कि मूल्य वृद्धि प्रारम्भ हो गयी । इस दिशा में प्रथम खाद्य नीति समिति की स्थापना प्रथम मूल्य नियंत्रण सम्मेलन 1943 में की गयी, जिसकी सिफारिशों के आधार पर खाद्यान्न के सामान वितरण के लिये राशनिंग व्यवस्था प्रारम्भ की गयी अगस्त 1947 में 5.4 करोड़ लोग, स्थायी रूप से राशनिंग व्यवस्था के अन्तरगत थे तथा 90 मिलियन लोग सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के विभिन्न

रूपों में शामिल थे । ब्रिटेन ने द्वितीय विश्वयुद्ध काल में अस्थायी रूप से सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को अपनाया गया । इस सम्बन्ध में भारत में भी ब्रिटिश शासन ने खाद्यान्नों के अभाव की दशा में उनके उत्पादन वितरण एवं व्यापार में हस्तक्षेप की स्पष्ट नीति को स्वीकार किया है । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भी बाढ़ अकाल, एवं अन्य प्राकृतिक प्रकोपों से निपटने के लिए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का सहारा राशनिंग के रूप में लिया जाता रहा है । अभाव की दशा में सरकार निजी व्यापारी वर्ग या विक्रेताओं को वस्तुओं को उचित वितरण के लिये सचेत कर के आदेश देती है तथा इसकी उपभोक्ताओं की वस्तुओं का वितरण करने के लिए आवश्यक कदम उठाती है ।

युद्ध समाप्त होने के तुरन्त बाद भारतीय रक्षा अधिनियम की धारा 81 के अन्तर्गत सरकार ने मूल्य नियंत्रित करने और वितरण को नियमित करना प्रारम्भ कर दिया । इस संदर्भ में अधिक "अन्न उपजाओं" आन्दोलन 1941 में चलाया गया । जापान के युद्ध के बाद सरकार ने मूल्य वृद्धि की ओर पर्याप्त ध्यान दिया । सरकार ने उस समय "स्वतंत्र व्यापार नीति" को अपनाया, जिसमें कि वस्तु के मूल्यों एवं वितरण पर कोई प्रतिबन्ध नही होता था । सरकार सभी व्यक्तियों को किसी भी मूल्यों पर वस्तुयें उपलब्ध कराने के लिए कृत संकल्प थी चाहे वह वस्तु किसी भी मूल्यों पर प्राप्त न हो, इसी उद्देश्य को लेकर इस व्यवस्था को अपनाया गया । यह भी देखा गया कि लाभ अधिक से अधिक कमाया जाता

था, तथा इस कमाये गये लाभ पर सरकार कर लेती थी, परिणामस्वरूप सरकार की आय में भी वृद्धि होती थी । सामाजिक आवश्यकताओं को देखते हुये यह अत्यन्त ही आवश्यक था कि सरकार इस सम्बन्ध में ऐसी कोई नीति अपनाये जिससे कि जनता के हितों का सम्वर्द्धन हो सके ।

विकासशील देशों का आर्थिक एवं ऐतिहासिक अनुभव इस बातकी पुष्टि करता है कि मूल्यों को एक निश्चित क्रम में रखना चाहिए, सोवियत संघ में हुयी एक कठिन अभाव इसका ज्वलंत उदाहरण है । इसमें कृषि मूल्य को निर्धारित करना जिससे कि कृषि उत्पाद एवं बाजार मूल्यों में समन्वय रहे । इससे ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में उत्पादों की पूर्ति का भी संतुलन बना रहे । किसानों को उनके पारिश्रमिक का उचित मूल्य मिलना ही चाहिए इस संदर्भ में मूल्यों को नियंत्रित करना एक महत्वपूर्ण कदम है । यद्यपि उपभोक्ता के हित में, खाद्य सामग्री के मूल्यों को निश्चित करना, जिससे कि उनको उचित दर पर खाद्य सामग्री प्राप्त हो सके, उसी तरह आवश्यक है जिस तरह एक न्यूनतम मूल्य निर्धारित कर दिया जाये, जिससे कि किसानों को अपने उत्पादों को उचित मूल्य पर बेचने में किसी भी प्रकार की हानि की आशंका न हो । वे स्वेच्छापूर्वक अपने उत्पाद का विक्रय करें, जिससे कि पूर्ति पर कोई भी प्रभाव न पड़े । विकासशील देशों, विशेषकर भारत के संदर्भ में एक बुद्धिमत्ता पूर्ण एवं नियंत्रित कृषि मूल्य नीति होना, अपनी एक महत्व पूर्ण भूमिका रखता है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् विकास

वर्तमान समय में खाद्य उत्पादन का कम होना, मांग का कम होना, दोनों में एक सापेक्षिक सम्बन्ध रखता है, जिससे कि मूल्यो में बहुत तेजी के साथ वृद्धि होती हैं । बंगाल अकाल से हमको इस बात का अनुभव होता है कि खाद्य सामग्री के मूल्यो में निरन्तर वृद्धि होती रही है । नवम्बर 1947 में महात्मागांधी के नेतृत्व में एक नियंत्रित नीति को सरकार ने अपनाया । अनियंत्रित नीति का परिणाम यह हुआ कि प्रसार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया और उस समय खाद्य सामग्री की कीमतें भी बहुत ही असामायिक रूप से बढ़ी । जुलाई 1948 में पुनः नियंत्रित प्रणाली अपनायी गयी, जिससे कि खाद्य सामग्री के मूल्य अस्थायी रूप से थोड़े समय के लिए स्थिर रहे, परन्तु यह मूल्यों में स्थायित्व अधिक समय तक न रह सकी । 1949 में भारतीय रुपये का अवमूल्यन और 1950 में कोरियाई युद्ध के कारण खाद्य सामग्री के मूल्यों में बड़ी तेजी के साथ वृद्धि हुई 1951 वर्ष में प्राकृतिक कारण से कृषि के खराब होने, भारतीय रुपये का अवमूल्यन, कोरियर्स युद्ध, अकाल की संदेहात्मक पुष्टि देश में मूल्यों को बढ़ाने में सहायक हो गयी और इसने मूल्यों को बढ़ाने के लिये प्रेरित किया ।

स्वतंत्रता के पूर्व सरकार ने युद्ध के समय के अतिरिक्त किसी भी समय मूल्य नीति को नहीं अपनाया था, और न ही किसी भी प्रकार का नियंत्रण किसी भी वस्तु पर लगाया गया था । राशनिंग प्रणाली

को सरकार ने जनता के सम्मुख द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रखा । इसके पूर्व सरकार ने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया और न ही उस समय इस प्रकार की कोई प्रणाली प्रचलित थी । स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने एक "खाद्य सामग्री खरीद समिति" 1950 में खाद्य नीति के रूप में अपनाया, जिसके एकाधिकारी खरीद एवं राशनिंग व्यवस्था पर बल दिया गया । यह संस्तुति उचित खाद्य स्थिति की पूर्ति को बनाये रखने के लिये की गयी थी । प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान खाद्य सामग्री के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई । इसका परिणाम यह हुआ । कि संख्या में सार्वजनिक वितरण के सम्बन्ध में जो भी संभव था, उसको अपनाया 1955-56 में आवश्यक वस्तुओं की कमी का अनुभव किया जाने लगा, और इसके मूल्यों में भी बहुत तेजी के साथ वृद्धि होने लगी । इससे निपटने के लिए सरकार ने 1057 में एक खाद्य समिति श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में नियुक्त की । इसका कार्य यह था कि वो मूल्यों के दामों के कारणों का पता लगावे । उत्पादन के बढ़ने पर भी मूल्यों में क्यों वृद्धि होती है, समिति को समय-समय पर सरकार को सलाह भी देना था कि किन कारणों से असमायिक रूप से जमाखोरी बढ़ती है । इस समिति का विचार था कि जब तक सरकार व्यापार पर पूर्ण सामाजिक नियंत्रण नही करती तब तक वह मूल्यों में स्थायित्व नहीं ला सकती । थोक व्यापारी जब अपने मूल्यों को बढ़ा देंगे । तो फुटकर व्यापारियों को अपने मूल्यों को बढ़ाना ही होगा । इसका सुझाव यह भी था कि खाद्य सामग्री के मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए खाद्य

सामग्री का बजट स्टाक काफी हद तक सहायता प्रदान करेगा । यह मूल्यों में स्थायित्व लाने में एक यंत्र के रूप में कार्य कर सकता है । इसके सुझाव को देखते हुए अमेरिका से पी.एल. 480 समझौता गेहूं के आयात के सम्बन्ध में किया गया । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने और आवश्यक वितरण में हस्तक्षेप की नीति निम्न कारणों से स्वीकार की ।

1. निर्धनता या निर्धन देश
2. प्राकृतिक प्रकोप
3. आर्थिक विकास की धीमी गति
4. उत्पादन में क्षेत्रीय विषमता
5. मानसून पर निर्भरता
6. व्यापारियों का गलत दृष्टिकोण

1. निर्धनता या निर्धन देश :- भारत एक गरीब देश है जहाँ पर कि अधिकांश लोग गरीब है । आय की असमानता के परिणामस्वरूप यहाँ पर गरीब और गरीब तथा धनी और धनी होते जा रहे है । एक गरीब देश होने के कारण यहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति को उचित दर पर वस्तुये उपलब्ध कराना सरकार का कर्तव्य हो जाता है ।

2. प्राकृतिक प्रकोप :- प्राकृतिक प्रकोप भारत में आये दिन आते रहते है कहीं अकाल पड़ रहा है तो कहीं सूखा, कहीं बाढ़ आ रही है तो कही भूकम्प । इन प्राकृतिक प्रकोपों से उत्पादन निश्चित प्रभावित होता है ।

जब कम उत्पादन होगा तो वस्तुओं की पूर्ति अपने आप कम हो जायेगी, आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जायेगा, जिसमें कि समाज के कमजोर वर्ग का शोषण होगा । इससे बचने के लिए हमारी सरकार ने हस्तक्षेप की नीति कोस्वीकार किया है ।

3. आर्थिक विकास की धीमी गति :- भारत जैसे विकासशील देश में विकास की गति अत्यन्त धीमी रही है, परिणाम स्वरूप यहाँ के निवासियों में आज भी वही जीवन मापन की स्थिति दर्शित होती है । इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि यहाँ के लोगों की आय बहुत कम रही है ।

4. उत्पादन में क्षेत्रीय विषमता :- यहाँ पर उत्पादन में क्षेत्रीय विषमता विद्यमान है । जहाँ पर गेहूं का उत्पादन होता है वहाँ पर चावल का उत्पादन नहीं होगा, किसी एक विशेष स्थान पर ही किसी विशेष वस्तु का उत्पादन संभव होता है । किसी क्षेत्र में कम उत्पादन होता है तो किसी क्षेत्र में अधिक, । क्षेत्रीय विषमता के परिणाम स्वरूप हस्तक्षेप की नीति व्यापार में लागू की गयी । ताकि आधिक्य वाले क्षेत्रों में से वस्तुओं का हस्तान्तरण कमी वाले क्षेत्रों में हो सके और कहीं पर भी वस्तुओं का अभाव न होने पाये ।

5. मानसून पर निर्भरता :- यहाँ के कृषक अधिकांशतः मानसून पर ही निर्भर रहते है । जब वर्षा होगी तभी उनको पानी मिलेगा और वे अपने खेतो में बीज बोयेंगे । सिंचाई के पर्याप्त साधन न होने से तथा मानसून

के असमय से आने के परिणाम स्वरूप उत्पादन भी प्रभावित होता है । इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार व्यापार में हस्तक्षेप की नीति स्वीकार करके, समाज के सभी वर्गों को वस्तुयें उपलब्ध करायें ।

<u>व्यापारियों का गलत दृष्टिकोण</u> :- व्यापारियों द्वारा प्रकोपों की दशा में मूल्य वृद्धि करके अधिक लाभ कमाने का गलत दृष्टिकोण होता है । ये व्यापारी वस्तुओं को अपने यहां संग्रह करके कृत्रिम अभाव पैदा कर देते है, फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और वे समाज में वस्तुओं को बेचकर उपभोक्ताओं का अधिकतम शोषण करने लगते हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् खाद्य नीति के द्वारा खाद्यान्न के मूल्यों में स्थिरता लाने का प्रयत्न किये गये हैं । जिससे एक ओर तो उत्पादकों को अपने उत्पाद का उचित मूल्य मिल सके तथा दूसरी ओर उपभोक्ताओं, विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण किया जा सके । यही सार्वजनिक प्रणाली का आधार है । उपभोक्ताओं द्वारा की जाने वाली वस्तुओं के मांग की पूर्ति ठीक प्रकार से न हो ।

<u>खाद्यान्न की पूर्ति बनाये रखना</u> :- देश में खाद्यान्नों की पूर्ति बनाये रखी जाये जिससे किसी भी वस्तु का अभाव न हो, प्राकृतिक प्रकोपों की दशा में आवश्यक वस्तुओं को बाहर से आयात करके अपने देश में उनका भण्डारन करना, जिससे अभाव की दशा में या कृत्रिम अभाव की स्थिति में उपभोक्ताओं को पर्याप्त वस्तुओं की पूर्ति की जा सके ।

उपरोक्त सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये सरकार प्रयत्नशील है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निम्न प्रयास किये गये है ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को उचित मूल्य की दुकानों एवं राशनिंग के द्वारा अपनाना :- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अपनाने के लिए अधिक मात्रा में उचित मूल्य की दुकाने खोली जाये, जिससे अधिक से अधिक उपभोक्ताओं को उससे सहायता प्राप्त हो । जब अधिक दुकाने खोली जायेगी तो अधिक उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण होगा अधिक लोगों को वस्तुयें सही मात्रा तथा सही मूल्य पर प्राप्त होगी । इसको अपनाने में राशनिंग प्रणाली को अपनाया जाये ।

वस्तुओं की खरीद एवं भण्डारण :- वस्तुओं की पर्याप्त खरीद की जाये तथा उसके साथ ही साथ उसका भण्डारण किया जाय । यदि देश में वस्तुओं की कमी होती है तो बफर स्टाक से वस्तुओं के अभाव को समाप्त कर दिया जाता है । यदि देश में उत्पादन अच्छा नहीं हुआ है तो उस वस्तु का विदेशों से आयात करके भण्डारण करना जिससे कि उसका भण्डारण अभाव की दशा में कार्य कर सके ।

राज्यों में खाद्य का हस्तान्तरण :- यदि किसी राज्य में खाद्यान्न का उत्पादन कम हुआ है तो उसके क्षेत्र से आधिक्य वाले क्षेत्रों से वस्तुओं का हस्तांतरण करना, जिससे कि वहाँ पर अभाव की समस्या ही पैदा न हो, और इसके

कारण अभावों की स्थिति उत्पन्न होती है और मंहगाई बढ़ जाती है । यह स्थिति उत्पादन में कमी अथवा उचित वितरण के अभाव में होती है । साधारणतया विकसित देशों में अभाव की स्थिति उत्पन्न नहीं होती । इसी कारण वहाँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आवश्यकता का अनुभव भी नहीं किया जाता ।

1965 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि खाद्य सामग्री का अभाव अभी थोड़े समय तक बना रहेगा, इस अभाव की पूर्ति हमारा उत्पादन नहीं कर सकता अर्थात हमारा उत्पादन मांग की पूर्ति करने में सक्षम नहीं है क्योंकि एक तो हमारा उत्पादन कम है, दूसरे प्राकृतिक प्रकोप, मानसून का अभाव, बाढ़, सूखा इत्यादि । सरकार ने इस समय बहुत ही समझदारी से कार्य किया और इस सम्बन्ध में अच्छी भूमिका अदा की । इस सम्मेलन में निम्न महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर बल दिया गया ।

(क) <u>उपभोक्ताओं का अधिकतम कल्याण</u> :- उपभोक्ताओं के कष्टों को कम करने के लिये उनको सभी आवश्यक वस्तुयें एक निश्चित समय एवं स्थान पर तथा उचित मूल्यों पर उपलब्ध कराना जिससे कि उपभोक्ताओं का अधिकतम कल्याण हो सके । इस संदर्भ में आवश्यक कानून बनाना जिससे कि व्यापारी वर्ग द्वारा उनका शोषण न किया जा सके ।

(ख) मूल्यों में एकरूपता लाना :- इस बात पर पर्याप्त बल दिया गया कि सम्पूर्ण देश के मूल्यों में एकरूपता हो । ऐसा न हो कि कहीं पर मूल्य कुछ हो, कहीं पर कुछ पूरे देश में किसी विशेष वस्तुओं के संदर्भ में एक मूल स्तर हो उसी पर सरकार उपभोक्ताओं को वस्तुयें उपलब्ध कराये ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वर्तमान स्थिति

1962 के चीन युद्ध के बाद सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत उचित मूल्य की दुकाने बहुत तेजी के साथ खोली गयी और उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का भी केन्द्र प्रायोजित योजना के अन्तर्गत तीव्र गति से विस्तार हुआ जिससे कि आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति युद्ध कालीन प्रभाव को निरस्त करके नियमित रूप से हो सके और निजी व्यापारी परिस्थिति का दुरूपयोग कर उपभोक्ताओं का शोषण न कर सके । युद्ध के समाप्त होते ही परिस्थितियां सामान होती गयी जिससे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का कार्य भी शिथिल हो गया और इसके अन्तर्गत वितरण कार्य में संलग्न ईकाइयां पृथक होकर निष्क्रीय हो गयी जुलाई 1979 के पूर्व तीन दशकों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए किए जाने वाले सभी प्रयत्न केन्द्र व राज्य सरकारों की आपसी सम्बन्धों की कमी और वस्तुओं के प्रति आभाव उन्मुख दृष्टिकोण के कारण अस्थायी और सामयिक होकर ही रह गये । 1963 में इस प्रकार की दुकानों की संख्या 60500 थी जो कि 1965 में बढ़कर 105000 हो गयी । इस समय सरकार ने यह

निश्चय किया कि उचित मूल्य की दुकानों को नहीं खोला जायेगा जो क्षेत्र अधिशाषित है ताकि उन क्षेत्रों में इन दुकानों के माध्यम से उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध करायी जा सके ।

1965 में भारत पाक युद्ध के बाद उचित मूल्य की दुकानों की संख्या में पुनः तेजी से वृद्धि हुयी । 1975 तक इनकी संख्या दुगनी से भी अधिक हो गयी । देश में 1965 में प्रति लाख जनसंख्या के आधार पर 23 दुकानें थी जो 1975 में बढ़कर 39 प्रतिलाख जनसंख्या के आधार पर हो गयी । 1974 में उत्तर प्रदेश में 16903 उचित मूल्य की दुकाने वितरण प्रणाली के कार्य में संलग्न थी । जिनके द्वारा 5-90 करोड़ जनसंख्या को वस्तुयें उपलब्ध करायी जा रही थी । देश में उचित मूल्य की दुकानों की संख्या में वृद्धि के बाद भी वितरण कार्य में कमी आयी । 1965 में इन दुकानों के माध्यम से औसत रूप से लगभग 92 लाख टन खाद्यान्न का वितरण हो रहा था जो घटकर 1975 में लगभग 48 लाख टन तथा 1983 में लगभग 62 लाख टन रह गया । सार्वजनिक वितरण प्रणाली में निरन्तर विकास होता रहा और आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन वितरण व मूल्य उपभोक्ता वर्ग आदि पक्षों में अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जाता रहा है । समाज के कमजोर वर्ग को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति उचित मूल्य पर कराने का उद्देश्य रखा गया है । इसके लिये सार्वजनिक वितरण व्यवस्था विशेष रूप से श्रमिक प्रधान शहरी क्षेत्रों में तथा ग्रामीण पर्वतीय पिछड़े क्षेत्रों में की गयी । समय-

समय पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली को स्थायी व सुदृढ़ स्वरूप होने के लिये उपाय किये जाते हैं ।

वर्तमान में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को स्थायी सशक्त व प्रभावी बनाये रखने के लिये विशेष प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये गये । यह अनुभव किया जाने लगा कि कितनी आवश्यकता "सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अभाव की दशा में हैं, उतनी ही आवश्यकता वस्तुओं की सामान्य पूर्ति की दशा में भी है । क्योंकि निजी क्षेत्र के व्यापारियों की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतंत्र रूप से छोड़कर मूल्य स्तर को नियंत्रित करना संदेहजनक सा होता जाता है । वितरण व्यवसाय में लगे व्यवसायी अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से अनेक अनियमितताओं एवं काले बाजारों के माध्यम से उपभोक्ताओं का शोषण करने लगते है । इस आशय से आवश्यक वस्तुओं की उचित मूल्य पर पूर्ति करने के लिए जुलाई 1977 मे तत्कालीन वाणिज्य मंत्री ने सरकार की ओर से बनायी जाने वाली सार्वजनिक वितरण योजना का संकेत दिया जो । जुलाई 1979 से राष्ट्रीय उत्पादन व वितरण योजना के रूप में क्रियान्वित हुई । इससे पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण को प्रभावी बनाने के लिए राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ने वर्ष 1976 में ग्रामीण उपभोक्ता योजना आरम्भ की । इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर विद्यमान सहकारी विकास के माध्यम से ग्रामीण उपभोक्ता वस्तु व्यापार के विकास को प्रोत्साहन दिया जाये । ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का एक

प्रभावी एवं नियमित क्षेत्र निर्मित किया जाय । ऐसा करने से ग्रामीण उपभोक्ताओं के साथ ही मूल्य वृद्धि, मिलावट व कम नाप-तौल जैसी अनियमितताओं से सुरक्षा प्रदान की जा सकती है । इस दृष्टि से इस योजना को प्रारम्भ करने का मूल उद्देश्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ एवं प्रभावी बनाना है । भारत सरकार ने 1977-78 वर्ष में समाज के निर्बल वर्ग को आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराने हेतु उपरोक्त सहकारी समितियों के माध्यम से जनता दुकाने संचालित करने की एक विशेष योजना प्रसारित की है ।

सार्वजनिक उत्पादन व वितरण योजना :- स्वतंत्र बाजार प्रणाली में न्यून आय के उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण की कमी को देखते हुये आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद ने मार्च 1978 में प्रस्ताव किया कि न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम के अन्तर्गत परिषद आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की सार्वजनिक वितरण प्रणाली की तुरन्त विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण की स्वीकृति देती है । जनवरी 1979 में आयोजित मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में इस पर विस्तार से विचार किया गया । इस सम्मेलन में इस योजना का सर्वसम्मति से स्वागत किया गया और इस योजना को अंतिम रूप देने और इसके कार्यान्वयन के उपायों पर राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के नागरिकों ने आपूर्ति मंत्रियों के सम्मेलन पर विचार किया गया और अंत में 1 जुलाई 1979 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की घोषणा "उत्पादन व

वितरण योजना के रूप में इस विश्वास के साथ कर दी गयी कि देश भर में उपभोक्ताओं की विशेष रूप से आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोगों की आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर स्थायी रूप से निरन्तर उपलब्ध होती रहे । इस प्रणाली को स्थायी व व्यापक रूप प्रदान करने के लिये इसे एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत किया गया । यह पूर्व दशकों में समय - समय पर प्रयोग की जाने वाली अस्थायी सार्वजनिक वितरण व्यवस्था से सर्वथा भिन्न है । यह योजना आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण की समस्याओं का स्थायी समाधान है । उत्पादन एवं वितरण योजना एक वृहत योजना है, जिसके अन्तर्गत आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, वसूली, भण्डारण, परिवहन, एवं वितरण की प्रक्रिया भी शामिल है । जिससे कि समाज के कमजोर वर्ग के आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके । मूल्यवृद्धि, जमाखोरी, मुनाफाखोरी जैसी अनियमितताओं पर भी रोक लगायी जा सके, यह लोगों की आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध कराने का एक मिला जुला कार्यक्रम है इसके द्वारा पहली बार व्यापार के आधार पर उत्पादन और वितरण में सीधा सम्बन्ध स्थापित किया गया । योजना को प्रभावी बनाने के लिए वाणिज्य व नागरिक आपूर्ति मंत्रालय के अतिरिक्त कृषि, उद्योग, रेलवे इस्पात, व खान मंत्रालयों का सहयोग प्राप्त करने के लिये इनकी पूर्व सहमति प्राप्त कर ली गयी है ।

उत्पादन व वितरण योजना के उद्देश्य

उत्पादन व वितरण योजना में केवल उपभोक्ताओ को वस्तुओं की पूर्ति से ही सम्बन्ध नहीं है । इसका सम्बन्ध उत्पादन से लेकर वितरण तक

की समस्त क्रियाओं से है । यह व्यवस्था सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संशोधित रूप है । इसके मुख्य उद्देश्य है "आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति बनाये रखना, व्यापारियों की कुरीतियों को समाप्त करना, वस्तुओं के उत्पादन वसूली, परिवहन तथा वितरण में समन्वय स्थापित करना, ग्रामीण क्षेत्र में वस्तुयें उपलब्ध कराना, उचित मूल्य की दुकानों द्वारा वितरण, रोजगार के अवसर में वृद्धि कराना ।

ये सभी उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण योजना तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली दोनों के लिये है । उत्पादन व वितरण योजना सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संशोधित एवं परिमार्जित रूप है । यह योजना 1979 से लेकर अब तक अपने उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में कृत संकल्प है । सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने व उसके सफल क्रियान्वयन में बराबर प्रयत्नशील है । इसका विशेष ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक से अधिक उचित मूल्य की दुकाने को खोलने की ओर है । जिससे कि समाज के कमजोर वर्ग को वस्तुयें उपलब्ध करायी जा सके ।

उत्पादन व वितरण योजना के मुख्य आयाम

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिए तथा उत्पादन व वितरण योजना के सफल क्रियान्वयन के लिये इस योजना में निम्नलिखित व्यवस्थाओं को सम्मिलित किया गया है ।

1. जनसंख्या और क्षेत्र आच्छादन की दृष्टि से प्रत्येक 2000 या इससे अधिक जनसंख्या वाले गांव या गांव के समूह के लिए एक उचित मूल्य की दुकाने खोली जाने की योजना थी जो कि कार्यान्वित की जा रही है किन्तु पर्वतीय दूरवर्ती क्षेत्रों में प्रत्येक 1,000 की जनसंख्या पर ही एक दुकान खोली जा सकती है ।

इस आधार पर देश में लगभग 3.5 लाख ऐसी दुकानों की आवश्यकता होगी । योजना के प्रारम्भ के समय देश में 2.41 लाख ऐसी दूकाने निजी तथा सहकारी क्षेत्रों में कार्यरत थी 1979 के अंत तक देश में 9.77 लाख उचित दुकाने राज्य सरकार के सहयोग से खोली जा चुकी थी । जिनकी संख्या 1981 में बढ़कर 2.98 लाख हो गयी । इनमें से 72000 दूकाने ग्रामीण सुदूत गांवों के लिए सफल दुकानो की व्यवस्था की जा रही है ।

2. आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि के लिए केन्द्र, तथा राज्य सरकारों के सम्बन्धित विभागों द्वारा यथोचित प्रोत्साहन किया जावेगा ।

3. इस योजना के पहले चरण में 13 वस्तुओं को वितरण के लिए चुना गया । इनमें गेहूं, उत्पाद, चावल, मोटा अनाज, खाद्य तेल, मिट्टी का तेल, कपड़ा, माचिस, नहाने व धोने का साबुन, चाय, काफी, और विद्यार्थियों के लिए कापियां शामिल है ।

कुछ वस्तुयें सार्वजनिक वितरण प्रणाली में पूर्व ही सम्मिलित थी तथा कुछ वस्तुओं के बाद में शामिल किया गया है इन वस्तुओं के अति - रिक्त कुछ वस्तुओं को भी स्थानीय आवश्यकताओं को देखते हुए शामिल किया जा सकता है । वस्तुओं की संख्या राज्यों के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है । सभी वस्तुयें देश भर में एक ही मूल्यों पर बेचने की व्यव- स्था है ।

4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में निजी सार्वजनिक व सहकारी क्षेत्र सम्मिलित है । यदि निजी व्यवसायी, अनुशासित ढंग से कार्य करता है तो उसका अधिग्रहण नही किया जायेगा । उचित दर की दुकानों को लाइसेंस देने में सहकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता दी जायेगी ।

5. वितरण प्रणाली के सफल संचालन के लिए चयनित वस्तुओं की वसूली और उसका पर्याप्त भण्डारण आवश्यक है । इसके लिए राज्यों में भण्डारण एवं वितरण केन्द्र बनाने की व्यवस्था है । मूल्य स्थिर बनाये रखने के लिए बफर स्टाक के अतिरिक्त जहाँ जरूरी हो, एजेन्सियों के द्वारा भी आयात किये जा सकते हैं ।

6. आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि तथा उत्पादन पर निरन्तर नियंत्रण बनाये रखने के लिए राज्य सरकारों को संचार व्यवस्था प्रभावी बनाये रखना अत्यन्त ही आवश्यक है जिससे सुधार के लिए शीघ्रातिशीघ्र कार्यवाही की जा सके ।

7. आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन व वितरण में लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए राज्य सरकारों को विश्वास के आधार पर समुचित व्यवस्था करनी चाहिये ।

8. जिन वस्तुओं को इस योजना में शामिल किया गया है उनमें से अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय आधार पर कराये जाने का प्रस्ताव है वितरण के लिए शेष वस्तुओं उत्पादकों से लेवी के रूप में वसूली जायेगी जिसमें किन्द्र सरकार का पूर्ण सहयोग रहेगा ।

9. वितरण प्रणाली के निरीक्षण तथा समायोजन के लिए केन्द्र तथा राज्य स्तर पर उच्च अधिकार प्राप्त समितियों को बनाने की व्यवस्था है ।

10. उचित मूल्य की दुकानों को सुचारू रूप से चलाने के लिए स्थानीय आधार पर राशन कार्ड, धारकों की चौकसी समितियां बनाने की व्यवस्था की गयी है । राज्य सरकारे उचित मूल्य की दुकानों को लाइसेन्स देने में उचित व अनुचित के आधार पर कुछ शर्तों को निर्धारित करती है इनमें चौकसी समितियों का भी निर्णय लिया जायेगा ।

11. उचित मूल्य की दुकानों को कोई आर्थिक सहायता नही दी जायेगी किन्तु सार्वजनिक वितरण के लिए आवश्यक वस्तुओं के भण्डारण के लिए धन सुलभ किया जायेगा । युवा बेरोजगार व्यवसायी को दुकान

खोलने के लिये सस्ती ब्याज दर पर ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जायेगी ।

राज्य सरकारों की इस योजना को लागू करने के लिए आवश्यक वस्तुओं के वितरण का कार्य इन दुकानों के माध्यम से करना होगा । राज्य सरकारें आवश्यकता पड़ने पर उचित मूल्य की दुकानों को सचल रूप से अन्य दुकानों को भी खोल सकती है । जब यह उत्पादन का वितरण योजना लागू की गयी थी तब उस देश में लगभग 1,45,000 कुल दुकाने थी जिनमें से 1,88,000 दुकाने ग्रामीण क्षेत्र में थी । तालिका 11 में राज्यवार दुकानों की उपलब्धि की स्थिति स्पष्ट की गयी है ।

तालिका नं. 11

राज्यानुसार उचित मूल्य की दुकानों का आबंटन

राज्य	उचित मूल्य की दुकानों की संख्या
बिहार	27000
हरियाणा	4000
जम्मू व काश्मीर	867
कर्नाटक	14000
मध्य प्रदेश	11384
पंजाब	11384
राजस्थान में	9172
तामिलनाडु	13400

इन दुकानों के साथ-साथ बहुत संख्या में उपभोक्ता सहकारी भण्डार तथा सुपर बाजार कार्यरत थे । इनके माध्यम से सम्पूर्ण देश में एक अच्छी योजना लागू करने में सहायता प्राप्त होती है । इनके अतिरिक्त राज्य व्यापार निगम और भारतीय खाद्य निगम, आवश्यक वस्तुओं की खरीद व उनके वितरण कार्य में संलग्न है । यह वस्तुओं की खरीद और आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक वस्तुओं का विदेशों से आयात करके उसका पर्याप्त भण्डारण करता है तथा अभाव की दशा में उनका वितरण समाज के कमजोर वर्गों में इन दुकानों के माध्यम से करता है ।

जनता की दुकानों की स्थापना

तत्कालीन केन्द्रीय वाणिज्य एवं सहकारिता मंत्री श्री मोहन धारिया ने जनता दुकानों की सुस्पष्ट क्रिया कलापों को बताते हुए जुन 1979 में एक योजना घोषित की जिसके अनुसार 1000 जनता दुकानों को समाज के कमजोर वर्गों एवं गंदी व मलिन बस्तियों में स्थापित करने का निश्चय किया गया । इस जनता दुकान के प्रमुख उद्देश्य निम्न थे ।

1. जनता दुकानें समाज के कमजोर व निर्बल वर्ग को तथा जहाँ पर गंदी बस्तियां है वहां पर आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध करायेगी, जिससे कि उनका शोषण व्यापारी वर्ग न कर सके । और उन्हें उचित मूल्य पर वस्तुयें प्राप्त होती रहे ।

2. सुपर बाजारों की तरह ये दुकानें ग्रामीण व अर्द्ध विकसित क्षेत्रों में आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध कराने में सरकार की सहायता करेगी।

3. शिक्षित बेरोजगार नवयुवकों को इस योजना को चलाने के लिए प्रोत्साहित करेगी, जिससे कि रोजगार की समस्या का कुछ हद तक समाधान किया जा सके।

4. इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक व्यवसाय प्रारम्भ करने वाले व्यवसायी को 2000 रुपये की प्रारम्भिक पूंजी अनुदान के रूप में दी जायेगी, जिससे कि उनको व्यापार या इन दुकानों को चलाने में किसी भी प्रकार की कठिनाई महसूस न हो।

(ज) सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सातवीं पंचवर्षीय योजना

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को देश की सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90 में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन वसूली, परिवहन, भण्डारन व वितरण में समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से योजना में अनेक प्रावधान किये गये जो निम्न है :-

1. योजना में नागरिक आपूर्ति निगमों को उपभोक्ता वस्तुओं के संग्रह हेतु ऐसे उपयुक्त स्थानों पर गोदाम निर्माण करने को कहा गया है जहां पर केन्द्रीय एवं राज्य भण्डार-गार निगमों तथा सहकारी संस्थाओं

ने भण्डारन की सुविधा नही जुटा पायी है । उचित भण्डारों के न होने से देश में आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त संरक्षण नहीं हो पाता और अभाव की दशा में वस्तुओं के वितरण में कठिनाई होती है ।

2. वर्तमान समय में सहकारी समितियाँ और नागरिक आपूर्ति निगम दोनो मिलकर उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के बहुत ही कम अंश की पूर्ति कर पा रहे है । अतः योजना अवधि में अनिवार्य वस्तुओं के व्यापार में इनके योगदान में पर्याप्त वृद्धि की व्यवस्था है । इसलिए उचित मूल्य की दुकानों में पर्याप्त वृद्धि की व्यवस्था की गयी है । योजना के प्रारम्भ में इन उचित मूल्य की दुकानों की संख्या 3.5 लाख रखा गया जो बाद में अपने लक्ष्य को पूरा कर दिया गया ।

3. इस योजना में राष्ट्रीय एवं राज्यीय दोनों स्तरों पर सार्वजनिक वितरण की दुकानों को आवश्यक वस्तुओं को आपूर्ति करने की व्यवस्था की गयी है । इस लिये अलग-अलग वस्तुओं की जिम्मेदारी अलग-अलग सार्वजनिक व सहकारी संस्थाओं को सौंपी गयी है । इसका उद्देश्य प्रणाली की कुशलता में वृद्धि करता है ।

4. सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आधार भूत संरचना का पुर्ननिर्माण एवं सुदृढ़ीकरण करना ताकि यह प्रणाली देश के सभी भागों में विशेष कर पिछड़े सुदूर और दुर्गम स्थानों में उपयुक्त ढंग से काम कर रहे । जब तक

उसकी आधारभूत संरचना में एक क्रांतिकारी परिवर्तन नही होगा तब तक यह सार्वजनिक वितरणप्रणाली वितरण व्यवस्था में जनता को लाभ नहीं पहुंचा सकती ।

5, निजी एवं सहकारी क्षेत्रों के व्यवसायी स्वेच्छा से अगम्य क्षेत्रों, विशेषकर कमजोर वर्ग के क्षेत्रों में जाना नही चाहते । अतः योजना में इन क्षेत्रों के लिए नागरिक आपूर्ति निगमों की स्थापना, गोदामों का निर्माण तथा फुटकर व्यापार के लिए सहायता देने की बात कही गयी है ।

6. 1987 में देशव्यापी भयंकर सूखे के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से समाज के सभी वर्गों के उपभोक्ता-ओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार वस्तुयें उपलब्ध कराने के उद्देश्यों से सरकार ने इस दिशा में अत्यन्त प्रभावशाली कदम उठाया । विदेशों से बड़ी मात्रा में वस्तुओं का आयात किया गया और उनका बड़े पैमाने पर भण्डारन किया गया ।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट किया गया कि उन राज्यों में जहां सहकारी आन्दोलन सक्रिय तथा सशक्त है, उपभोक्ता सहकारी समितियों तथा विपणन सहकारी समितियों की शीर्ष संस्था को आवश्यक वस्तुओं का अधिग्रहण भण्डारण तथा वितरण व्यवस्था का दायित्व संभा-

लना चाहिए तथा अन्य राज्यों में नागरिक आपूर्ति निगमों की स्थापना करके अथवा वर्तमान नागरिक आपूर्ति निगम आवश्यक वस्तु निगम को सशक्त बनाने की आवश्यकता है । इस बात का पर्याप्त प्रयास किया जायेगा कि नागरिक आपूर्ति निगम अथवा सहकारी भण्डारों द्वारा चलायी जाने वाली फुटकर मूल्य की दुकानों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाया जायेगा जिससे कि समाज के कमजोर वर्गों की आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके । सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अर्थव्यवस्था के स्थायी भाग के रूप में मान्यता देकर सातवीं पंचवर्षीय योजना में दी गयी बातों को शामिल किया गया । इस योजना के अन्तर्गत 3 करोड़ के खर्च से पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्यों की सहायता के लिये आपूर्ति निगम की स्थापना निगमों द्वारा गोदामों निर्माण और निगम के कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गयी है ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की संरचना में प्रारम्भ से ही निजी क्षेत्र की उचित मूल्य की दुकान कार्य कर रही है तथा ये निजी क्षेत्र की दुकाने आर्थिक रूप से सक्षम भी है । इसलिये योजना की अवधि में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिये इन दुकानों को समुचित अवसर प्रदान किये जायेंगे । सहकारी क्षेत्रों में भी इनको प्रोत्साहित किया जायेगा । नये लाइसेंस देने में भी सहकारी क्षेत्र की दुकानों को प्राथमिकता दी गयी ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली और बीस सूत्रीय कार्यक्रम

यदि वास्तविक रूप में समाज के कमजोर वर्गों को वस्तुयें उपलब्ध कराना है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही साथ उसके वितरण की भी समुचित व्यवस्था हो । वितरण की समुचित व्यवस्था के बिना उत्पादन का अधिक होना मात्र कुछ विशेष व्यक्तियों के हित में होगा, इस लिए एक प्रभावकारी वितरण व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है । उत्पादन में वृद्धि तथा वितरण व्यवस्था में सुधार से विकासशील अर्थव्यवस्था के दो पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है एक पहलू आर्थिक दूसरा सामाजिक । इन दोनों पहलुओं के प्रभाव के परिणाम स्वरूप निर्धन वर्ग को सस्तें दर पर आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध करायी जाती है तथा दूसरी ओर उनके रहन सहन का स्तर भी ऊंचा उठता है । एक ओर उत्पादन में वृद्धि से पूर्ति में भी वृद्धि होती है और मूल्यों में कमी आती है वहीं दूसरी ओर रोजगार व आय में भी वृद्धि के पर्याप्त अवसर होते है । समुचित वितरण से उपभोक्ताओं को आय अधिक महसूस होगी, जिसके फलस्वरूप बचतें प्रोत्साहित होगी और इन बचतों को देश के विकास कार्यों में लगाया जायेगा । और सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था विकास की ओर तेजी से गतिमान होगी । जुलाई 1975 में देश की समग्र आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए तत्कालीन प्रधान मंत्री द्वारा 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की गयी थी जिसको आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिए निम्न चार सूत्रों को शामिल किया गया था ।

1. आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को कम करने के लिये प्रयास करना तथा इसके साथ ही साथ आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, परिवहन, भण्डारन और वितरण में समन्वय स्थापित करना ।

2. जनता कपड़े की किस्म और आपूर्ति में सुधार करना ।

3. विद्यार्थियों को छात्रावासों में आवश्यक वस्तुयें नियंत्रित भावों पर उपलब्ध कराना ।

4. नियंत्रित भावों पर पुस्तकें व लेखन सामग्री सुलभ कराना ।

बीस सूत्रीय कार्यक्रम के क्रियान्वयन में उपभोक्ता सहकारिताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने हेतु केन्द्र सरकार ने उपभोक्ता सहकारिता के ढांचे को सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन किया जा रहा है । राजनैतिक कारणों से इस बीस सूत्रीय कार्यक्रम के क्रियान्वयन में 1977 से अवरोध आ गया । 14 जनवरी 1982 को इस कार्यक्रम को नया रूप देकर घोषित किया गया । आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण की दृष्टि से इस कार्यक्रम में चार अन्य सूत्र शामिल किये गये वे इस प्रकार है ।

1. दालों व तिलहनों की पैदावार बढ़ाने के लिए विशेष उपाय करना ।

2. उचित मूल्य की दुकानों की संख्या बढ़ाकर और दूरदराज के इलाकों में चलती फिरती दुकानों की व्यवस्था करके, औद्यो-

गिक क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों और छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए दुकाने खोलकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार करना, छात्रों को पाठ्य पुस्तकें तथा कापियां प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराना और उपभोक्ता की जरूरतें पूरी करने के लिए भरसक प्रयास करना ।

3. तस्करों, जमाखोरों और कर की चोरी करने वालों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाई जारी करना और काले धन को रोकना ।

4. सार्वजनिक उद्योगों में कार्यकुशलता क्षमता का उपयोग आन्तरिक साधन जुटाने की शक्ति बढ़ाकर उसकी कार्यप्रणाली में सुधार लाना ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सफल संचालन के लिए वर्तमान संगठन को नया रूप देकर सुदृढ करना आवश्यक है । संशोधित 20 सूत्रीय कार्यक्रम में यह बताया गया कि अधिक दुकाने खोलकर, उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुयें उपलब्ध करायी जायेगी ये दुकाने अधिकतर दुर्गम स्थानों पर और ग्रामीण क्षेत्रों में ही खोली जायेगी । यदि आवश्यकता हुई तो कुछ दुकानों का स्वरूप चलता फिरता होगा, जिससे कि समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक वस्तु की पूर्ति उचित मूल्य पर की जा सके । जिससे कि यह प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था का स्थायी सशक्त और विश्वसनीय पहलू बन सके ।

इसके साथ ही साथ उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम को बढ़ावा देने की भी व्यवस्था की गयी है । इस विशाल देश में परिवहन की कठिनाइयों और अन्य कुछ मूलभूत समस्याओं के कारण कुछ समय तक तो स्थानीय अभाव अवश्य पैदा हो जाता है परन्तु स्थिति की लगातार समीक्षा करते रहने और आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा वितरण एवं उसके मूल्यों पर बराबर नजर रखने की आवश्यकता है । इसके लिए केन्द्र में एक विशेष विभाग की स्थापना की गयी है और वह स्थानीय असन्तुलनों को दूर करने में कारगर सिद्ध हुआ है । इसलिये यह आवश्यक होता है कि इस व्यवस्था को सुदृढ किया जाये और उसके साथ ही साथ उसका बड़े पैमाने पर भी विचार करना आवश्यक है ।

इस 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने का काम सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सौंपा गया है । वर्तमान में शिक्षा मंत्रालयों राज्यों को पाठ्य पुस्तकें छापने और कापियां बनवाने के लिए कागज देता है । 1951 से लेकर अब तक के योजनाबद्ध विकास के वर्षों में शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़कर दुगनी से भी ज्यादा हो गयी है जब कि अध्यापकों और छात्रों की संख्या बढ़कर चौगुनी हो गयी है । भविष्य में भी यह संख्या बढ़ती रहेगी, जिसके फलस्वरूप शिक्षा मंत्रालयों द्वारा दिये जाने वाले कागजों की मात्रा भी बढ़ायी जायेगी, जिससे कि नियंत्रित मूल्यों पर पाठ्य पुस्तकें तैयार कराने के भी उपाय

किये जायेंगे । इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार [98] से प्राविधान किया गया है ।

1. पाठ्य पुस्तकों में बार-बार परिवर्तनों से बचा जायेगा और बार-बार दोहरायी गयी बातों को पुस्तक में से निकालकर पुस्तक को छोटा बनाया जायेगा ।

2. पाठ्य पुस्तकों के मुद्रण के लिए आदेश समय पर दिये जायेंगे । जिससे कि उनके प्रकाशन में देरी न हो ।

3. शिक्षा संस्थाओं में अधिक पुस्तक बैंक खोले जायेंगे । जिससे कि राज्यों को न्यूनतम मूल्यों पर पुस्तक दिलायी जाये और इन पुस्तक बैंकों के माध्यम से निर्धन व जरूरत मंद छात्रों को यह पुस्तकें मुफ्त दी जाये ।

4. मध्यस्थों को कमीशन न देना पड़े इसके लिए कापियां और पाठ्य पुस्तकें स्कूलों की सहकारी समितियों के माध्यम से वितरित की जायेगी, इससे पुस्तकों और लिखने के सामानों का मूल्य कम करने में मदद मिलेगी ।

---

98. विस्तृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली, विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली जुलाई 1982
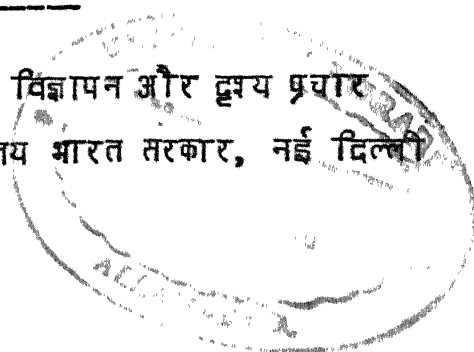
उपरोक्त सभी व्यवस्थायें विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये की गयी, जिससे कि समाज के हर व्यक्ति व वर्ग को सब वस्तुयें उचित मूल्यों पर सुलभ करायी जा सके ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को प्रभावपूर्ण ढंग से चलाने के लिए और उपभोक्ताओं को और अधिक सुरक्षा दिलाने के लिए स्वयं सेवी उपभोक्ता संगठन प्रमुख भूमिका निभाते है । आवश्यक वस्तुओं की मात्रा स्तर और मूल्य वृद्धि स्तर के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए बुनियादी कानूनी ढांचा पहले से विद्यमान है । लेकिन इसको लोकप्रिय बनाने की जरूरत है, जिससे कि उपभोक्ताओं को अपने अधिकारो के बारे में जागरूकता पैदा हो जाये । कानूनों और उपभोक्ताओं की सुरक्षा के विभिन्न उपायों को और अधिक सफल एवं प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने के लिए भी उपाय किये जाने चाहिए । ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्वयं सेवी उपभोक्ता संगठनों और समाज कल्याण संगठनों को आगे बढ़कर सभाओं के माध्यम से उपभोक्ताओं में जागरूकता पैदा करनी चाहिये, और उपभोक्ताओं के हित सम्बन्धी सूचनाओं का प्रचार करना चाहिये । सरकार मुद्रा स्फीती पर नियंत्रण रखने के लिए भरसक प्रयत्न कर रही है और अर्थ-व्यवस्था को काबू में रखने के लिए भरसक प्रयत्न भी अनेक उपाय कर रही है इसके लिए आवश्यक वस्तुओं के भी भण्डार बना रही है । जहां पर कहीं भी जब भी आवश्यक होता है तो समय-समय पर इन भण्डारों में से सामान निकालकर वितरित किया जा रहा है, इससे मूल्य नियंत्रण पर भी प्रभावकारी

नियंत्रण होता है । लोगों को भी प्रशासन के प्रयासों में हाथ बंटाना चाहिए ।[99]

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संदर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते है ।

1. विद्यमान सामाजिक परिवेश में स्वार्थ की जड़े काफी गहरी हो गयी है, उसको उखाड़ फेंकना नितान्त आवश्यक है । इसके लिए लोगों में देशभक्ति व नैतिकता की भावना जागृत करानी चाहिए ।

2. शिक्षा का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया जाये तथा जनता को जनसंख्या वृद्धि से होने वाली हानियों से भली भांति अवगत कराया जाये, जिससे कि वे सीमित परिवार को रख सके ।

3. सरकार को उचित मूल्यों की दुकानदारों की आय में वृद्धि करना चाहिए जिससे कि वे गलत कार्यों को करने के लिए उत्प्रेरित न हो ।

4. इस प्रणाली को सर्वप्रथम उन 240 अनसूचित पिछड़े जिलों में व्याप्त करना होगा जो हमारी कुल जनसंख्या का 60 प्रतिशत है ।

5. इसके सफलतापूर्वक क्रियान्वयन में महिलाओं का सक्रिय सहयोग नितान्त अपेक्षित है ।

---

99. विस्तृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली जुलाई 1982

6. सरकार को ग्रामीण क्षेत्र में अधिक दुकाने खोलने के लिए नव युवकों को उत्प्रेरित करना चाहिये, जिससे कि ग्रामीण क्षेत्र के नवयुवकों को रोजगार भी प्राप्त हो सके तथा उसके साथ ही साथ ग्रामीण क्षेत्र के उप-भोक्ताओं को वस्तुयें भी सुगमता से उपलब्ध करायी जा सके ।

7. सरकार को दुकानदारों द्वारा राजनीतिक पार्टी को दी जाने वाली चंदों पर रोक लगाना चाहिये, जिससे कि उनकी दैनिक कार्य प्रणाली में राजनैतिक हस्तक्षेप बंद हो सके ।

8. दुकानदारों का कमीशन बिक्री के प्रतिशत के आधार पर करना चाहिए तथा यह प्रतिशत सभी वस्तुओं में समान हो ।

9. बाजार मूल्य व उचित मूल्य की दुकानों की वस्तुओं का मूल्य सम होने पर सरकार को किसी न किसी रूप में इन दुकानदारों को वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे वे अपने परिवार का भरण पोषण मंदी के दिनों में भी कर सके ।

10. सरकार को उपभोक्ताओं के साथ होने वाले व्यवहारों तथा उनकी सेवाओं में सुधार की अति आवश्यकता है जिससे कि ये उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से ही क्रय करें ।

11. सरकार का दुकानदारों का दोनों समय ﴾सुबह व शाम﴿ का

खुलना तथा वस्तुओं को गोदामों से एकत्रित करने की अवस्था से वैकल्पित प्रबन्धक करना चाहिए ।

12. उचित मूल्य की दूकानदारों को उनकी दुकान पर ही वस्तुओं की पूर्ति की जानी चाहिये जिससे दुकानदारों के विरुद्ध रोकथाम की जा सके।

13. कार्डों की जांच करते समय प्रवसन व विवाह को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

14. सरकार को कार्डों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए । तथाऐसा करने पर भारी दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिए ।

15. सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाय ये अधिकारी व कर्मचारी मनमानी ढंग से उचित मूल्य के दुकानदारों से पैसा वसूल करते है और इन दुकानदारों को अनुचित कार्य करने के लिए प्रेरित करते है ।

16. उचित मूल्य की दुकानों पर उपलब्ध वस्तुओं को छोटे-छोटे वजन के पैकेटों में जिस पर"भारतीय मानक संस्थान" की मुहर लगी हो, उपलब्ध कराना चाहिये । इसमें एक तो वस्तुओं की किस्म में अपने आप वृद्धि हो जायेगी तथा दुकानदारों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण भी कम माप

तौल के संदर्भ में न हो सकेगा ।[100]

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रत्येक पहलुओं पर विचार कर देने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि इस योजना प्रणाली की सफलता व असफलता सरकार के कड़े कदमों पर निर्भर करती है । यदि इस कार्य में सरकार ने थोड़ी सी ढील बरती तो व्यापारियों की चोर बाजारी का रास्ता खुल जायेगा । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता का आक्रोश सरकार पर ही हो सकता है । वर्तमान समय में राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयों पर नियंत्रण रखना असम्भव सा प्रतीत होता है, परन्तु सुझावों पर गंभीर पूर्वक चिन्तन एवं अध्ययन के पश्चात् इस वितरण प्रणाली को संशोधित एवं परिमार्जित रूपों से लागू करना होगा । व्यवहारिकता के संदर्भ में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वर्तमान स्थिति में अपेक्षित सुधार हेतु निहित दोषों को दूर करने में प्रशासन, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और सामान्य जनता को तन-मन-धन से सहयोग करने के लिए आमंत्रित किया गया है । यह निर्विवाद है कि यदि निहित स्वार्थपूर्ण हिस्सा का समापन और नैतिकता की भावना प्रत्येक व्यक्ति के मष्तिष्क में आ जाये तो यह सार्वजनिक वितरण प्रणाली देश के लिए वरदान सिद्ध होगी ।

---

100. योजना । मार्च, 1987 पृष्ठ 23

पंचम सर्ग

समस्याएं एवं सुझाव

यह निर्विवाद है कि वर्तमान में अर्थ की प्रधानता ने स्वार्थ को सर्वोपरि बना दिया है, नैतिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास होता रहा । व्यापारी वर्ग अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से निकटतम रूप से अनैतिकताओं का सहारा लेकर उपभोक्ताओं का बहुविधि शोषण करता हुआ सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । संगठन शक्ति के अभाव में उपभोक्ता व्यापारी वर्ग द्वारा किये जाने वाले अपने शोषण को परिस्थित जन्म जानकर मूक होकर स्वीकार कर लेता है । परिणाम स्वरूप अनेकानेक नियमन व नियन्त्रण के बाद भी व्यापारी वर्ग दुष्कृत्यों में संलग्न बना रहता है । उपभोक्ताओं की जागरूकता तथा उनके सुदृण संगठन के बिना उपभोक्ता संरक्षण कदापि प्रभावी नहीं हो सकता । राष्ट्रीय नियोजन का सर्वोपरि उद्देश्य उपभोक्ता के हितों का संरक्षण करना है । सरकार द्वारा विपणन में किया जाने वाला हस्तक्षेप व्यवहारिक तथा प्रभावशाली नहीं रहता है । सरकार द्वारा विपणन के संदर्भ में जो भी नीति अपनायी जाती है उनका सफल कार्यान्वयन न होने के कारण विपणन में सरकारी हस्तक्षेप की महत्ता कम हो जाती है ।

भारत सरकार द्वारा विपणन व्यवसाय एवं उपभोग के क्षेत्र में जो हस्तक्षेप किया है उसे विपणन कर्ताओं एवं व्यवसायकर्ताओं का यह कहना है कि अनावश्यक हस्तक्षेप एवं कुछ सरकारी नीतियों से विनियोगों में गिरावट आयी है । सरकार ने औद्योगिक विकास हेतु स्वीकृत नीति का निर्धारण नहीं किया है । सन् 1966-67 के अकाल से लेकर अब तक केन्द्रीय सरकार दमकलों की भांति विभिन्न स्थानों पर लगी आग

बुझाने का ही कार्य करती रही है ।

उदाहरण के लिये अकाल की अवधि में एक ओर सरकार ने साख संकुचन किया और दूसरी ओर मुद्रा स्फीति को बढ़ावा देने वाले राहत कार्यों को ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक पैमाने पर शुरू किया ताकि बढ़ती हुई मंहगाई का जनता पर कम घातक प्रभाव हो । वास्तव में उस समय अनेक आवश्यक पदार्थों की कमी थी और उनके उत्पादन में साख संकुचन की नीति एक अन्य प्रमुख बाधा बन गयी थी । इसी प्रकार विनियोजन हेतु निजी उद्योगों द्वारा दी जाने वाली प्रेरणाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने, बैंक विनियोजकों का आकर्षक होने सी.डी.एस. कार्यक्रमों को लागू करने कुछ आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को उनकी उत्पादन लागतों को ध्यान में रखे बिना निश्चित करने 8.33 प्रतिशत न्यूनतम बोनस के भुगतान के पुनर्निर्णय आदि ने विनियोग में कमी की है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को पीछे धकेला है ।[101]

भारत में विपणन के पर्याप्त कानूनी नियमन व नियन्त्रण के बाद भी विपणन व व्यवसायिक वातावरण समाज के अधिक अनुकूल नहीं है इसका मुख्य कारण कानूनों की संख्यात्मक विस्तार की तुलना में उनका क्रियान्वयन उपेक्षित रहना है । अनेक कानूनों में कुछ छिद्र हैं जिनके कारण व्यवसायियों को अनैतिक व्यवहार करने का रास्ता मिल जाता है । वास्तव में सरकारी कानूनों जो कि हस्तक्षेप का एक साधन है, का स्पष्ट उद्देश्य सामाजिक दृष्टि से हितकारी प्रवाहों को नियमित

---

01. दि इकोनामिक टाइम्स, 13 फरवरी 1978, पृष्ठ-1

करने के लिये मानक निश्चित करना मानकों की व्याख्या करना, तथा व्यवसायिक गतिविधियों का मार्गदर्शन करना होना चाहिए तभी विपणन में प्रभावी हस्तक्षेप सरकार द्वारा किया जा सकता है ।

वितरण प्रणाली को सुगम बनाने तथा समाज के सभी वर्गों के उपभोक्ताओं विशेष कर आर्थिक रूप से कमजोर उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता की वस्तुयें उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अपनाया गया जिससे जनकल्याण में वृद्धि की जा सके । किन्तु यथार्थ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली उपभोक्ताओं के आकांक्षाओं एवं उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने मे विफल रही है । उपभोक्ताओं को न तो उचित मूल्य पर अच्छी वस्तुएं उपलब्ध हो पाती हैं और न ही इस प्रणाली से उपभोक्ताओ के संतुष्टि प्राप्ति हो पाती है । इसका कारण यह है कि वास्तव में इस व्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ताओं को जो भी वस्तुये प्राप्त होती हैं उनकी गुणवत्ता इतनी कम होती है कि उसका उपभोग करना वास्तव में संभव नहीं हो पाता है चूँकि भारत वर्ष में गरीबी अपनी चरम सीमा पर है तथा आय की असमानता के दुष्परिणाम स्वरूप समाज का बड़ा वर्ग गरीब है परिणामतः अपनी न्यूनतम आय के कारण वह उचित मूल्य पर ऐसी वस्तुएं प्राप्त करता है जो वास्तव में उपभोग के लिए पर्याप्त रूप से उपयुक्त नहीं रहती है । अन्ततोगत्वा सरकार द्वारा यह दावा करना कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक सफल प्रणाली है भ्रामक है क्योंकि भारतीय उपभोक्ताओं में खाद्यान्नों के उपभोग में लापरवाही बरती जाती है । वस्तुयें कितनी भी घटिया स्तर की क्यों

किया जाता । वैकल्पिक विपणन नीतियों और व्यवहारों के प्रभावों से किसानों, उपभोक्ताओं और विपणन एजेन्सियों को परिचित कराने के लिये सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण आचार संहिता का अपनाया जाना आवश्यक है किन्तु सरकारी नीतियां इतनी भ्रामक है कि उनका सही कार्यान्वयन नहीं हो पाता । जब तक विपणन के क्षेत्र में पर्याप्त आचार संहिता तैयार नही की जाती तब तक सरकारी हस्तक्षेप अपने वास्तविक उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पायेगा।

2- अधिनियमों की अधिकता

सरकार ने विपणन क्रियाओं को नियंत्रित करने एवं अधिक से अधिक जनकल्याण के उद्देश्यों से विभिन्न अधिनियमों को पारित किया किन्तु ये अधिनियम विपणन एवं व्यवसायिक वातावरण में अधिक सार्थक सिद्ध नहीं हो सके इसका मुख्य कारण अधिनियमों की जटिलता है । इन अधिनियमों मे सामन्जस्य का अभाव है एवं ये स्वचालित नही है । उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखने अधिक से अधिक जनकल्याण को करने तथा समाज में व्याप्त जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं कालाबाजारी को दूर करने व विपणन की क्रियाओं को नियंत्रित करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के अधिनियम पारित किये गये हैं । विपणन के पर्याप्त कानूनी नियमन व नियन्त्रण के बाद भी विपणन व व्यवसायिक वातावरण समाज के अधिक अनुकूल नहीं है । इसका मुख्य कारण कानूनों की संख्यात्मक विस्तार की तुलना में उनका क्रियान्वयन उपेक्षित

रहता है । कानून बनाना ही महत्त्वपूर्ण नही है वरन् उसका सफल कार्यान्वयन अधिक महत्त्वपूर्ण है । भारत वर्ष में सामाजिक कल्याण को ध्यान मे रखते हुए सभी क्षेत्रों मे अधिनियम बनाये गये किन्तु ये अधिनियम सामाजिक बुराइयों को दूर करने मे विफल रहे हैं । अनेक कानूनों मे कुछ बुराइयां अथवा कमी है जिसके कारण व्यवसायियों को अनैतिक व्यवहार करने का रास्ता मिल जाता है । संक्षेप मे निम्न अधिनियमों के पारित होने के उपरान्त भी सामाजिक बुराइयां यथावत हैं ।

- उपभोक्ताओं को शुद्ध सही एवं उचित वस्तुये उपलब्ध कराने तथा खाद्य मिलावट जैसी कुप्रवृत्ति को दूर करने के लिए सरकार द्वारा खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954 पारित किया गया किन्तु आज भी व्यवसायियों द्वारा वस्तुओं में व्यापक मिलावट की जा रही है । उपभोक्ताओं को शुद्ध वस्तुयें प्राप्त नहीं हो पाती है अन्ततोगत्वा आज उपभोक्ता अधिक संतुष्ट नहीं हैं ।

- उपभोक्ताओं को उचित तौल एवं माप के आधार पर वस्तुयें उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार द्वारा बाट एवं माप मान अधिनियम 1976 बनाया गया जिससे उपभोक्ताओं को तोल माप या अंक के माध्यम से वस्तुयें बेची या वितरित की जाती है किन्तु यथार्थ में आज भी व्यवसायियों द्वारा गैर मान बाट माप या अंक के प्रयोग किये जाते हैं । खास तौर से छोटे व्यवसायियों द्वारा गैर-मान के बाट एवं माप का प्रयोग किया जाता है इनके द्वारा अनाधिकृत कैशमेमों बिल या बीजक आदि बनाया जाता है । इस तरह उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है ।

- भारत में ट्रेड मार्क के पंजीकरण के लिए एक अधिनियम है जिसको व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम 1958 के नाम से जाना जाता है । इसके अन्तर्गत निर्माता, अपनी वस्तु की पहचान एवं उसका नाम याद रखने के लिये कोई चिन्ह, नाम शब्द, डिजाइन या इनके सम्मिश्रण से कोई चिन्ह या नाम बनाकर अपनी वस्तुयें पर छाप देता है इसे ब्रांडकहते हैं । ब्राण्ड का पंजीकरण कराने पर इसे ट्रेड मार्क कहा जाता है । जिसकी नकल कोई दूसरा व्यवसायी नहीं कर सकता किन्तु व्यवहार में आज एक व्यवसायी द्वारा दूसरे व्यवसायी के ट्रेड मार्क की नकल की जा रही है यहां तक कि भारत की राजधानी नई दिल्ली में खुले बाजार में विभिन्न ब्राण्ड अथवा ट्रेड मार्क के डुप्लीकेट वस्तुयें सुगमता से मिल जाती है । इस तरह उपभोक्ता ऐसे जालसाजी का सुगमता से शिकार हो जाता है ।

- उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने एवं उन्हें संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 बनाया गया किन्तु इस अधिनियम का व्यवहारिकता यथार्थ में दर्शित नही होती है । आज भी उपभोक्ता न तो संरक्षित है न ही उनमें सामंजस्य है परिणामतः उनका सुगमता से शोषण किया जा सकता है ।

- एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियां अधिनियम 1969 का उद्देश्य इस बात के लिये सुनिश्चित करना है कि देश की आर्थिक प्रणाली सामान्य हितों के विरूद्ध आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं करती हैं और ऐसी एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियों को रोकना है जो जनहित के विरूद्ध है । किन्तु व्यवहार में आज भी व्यवसायिक समाज में एकाधिकारो को प्रवृत्ति दर्शित होती है व्यवसायियों द्वारा मनमानी ढंग से वस्तुओं का मूल्य वसूला जाता है । इस प्रकार आज भी ऐसे व्यवसायियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है ।

- इस प्रकार विभिन्न कानून सरकार द्वारा सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण के उद्देश्य से बनाये गये किन्तु इन कानूनों में कमी एवं छिद्रता होने के कारण व्यवसायियों द्वारा मनमानी को जाती है साथ ही कानूनों के पालन न करने पर समुचित दण्ड की व्यवस्था भी नही है और यदि दण्ड दिये भी जाते हैं तो वह इतने कम होते हैं कि व्यवसायी द्वारा इसका भय कम रहता है ।

3- दोषपूर्ण वितरण प्रणाली

सरकार ने वितरण को सुगम बनाने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अपनाया । किन्तु यथार्थ में यह प्रणाली उपभोक्ताओं के आकांक्षाओं के अनुरूप उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने मे विफल रही है । इस संदर्भ मे निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

– उचित मूल्य के दुकानों की संख्या बहुत कम है खास तौर से ग्रामीण क्षेत्रों में ये दुकाने आवश्यकता के अनुरूप नहीं हैं । इस संदर्भ में जो भी लाइसेंस जारी किये गये वो वास्तव में समानता के आधार पर नहीं बाँटे गये ।

उचित मूल्य के दुकानदारों की मासिक आय बहुत कम है जिससे की दुकानदार अपनी सभी आवश्यकताओं का भरण-पोषण नही कर पाते ।

– दुकानदारों द्वारा राजनैतिक दलों से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध कायम कर लिया जाता है जो वास्तव में गलत है क्योंकि ऐसे दुकानदार अफसरों एवं उपभोक्ताओं को इसका रौब दिखाते हैं ।

– उचित मूल्य की दुकानों द्वारा वितरित की जाने वाली सभी वस्तुओं पर लाभ की दर समान होनी चाहिए । चीनी के सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ है कि उसके विक्रय में कभी-कभी हानि भी होती है जिससे व्यवस्थित होकर दुकानदार को गलत काम करना पड़ता है ।

दुकानदारों की सबसे प्रमुख समस्या योजनानुसार माल का उपलब्ध न होना इस लिए दुकानदारों को कार्यालयों का चक्कर कई बार लगाना पड़ता है दुकाने बन्द रहती है, उपभोक्ताओं को परेशानी उठानी पड़ती है तथा उसके साथ ही साथ परिवहन व्यय अधिक देना पड़ता है । गोदामों के श्रमिक, दुकानदार को माल को लादते समय परेशान करते हैं, । कभी कभी इन्हें माप तौल के सम्बन्ध में भी परेशानी का सामना करना पड़ता है ।

– ग्रामीण क्षेत्र के दुकानदारों को सबसे अधिक समस्यायें होती हैं ये समस्याये अधिकारियों से होती है इसका प्रमुख कारण ग्रामीण दुकान-दारों की अशिक्षा एवं अज्ञानता है ।

– ग्रामीण क्षेत्र के दुकानदार संघ के सदस्य नहीं है जब कि नगरीय क्षेत्र के लगभग सभी दुकानदार संघ के सदस्य है जो दुकानदार संघ के उदासीन है । इस प्रकार एकता का अभाव इन दुकानदारों के मध्य दर्शित होती है।

– उपभोक्ता की एक समस्या मण्डलीय कार्यालयों से होते हैं जहाँ इनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता है ।

उपभोक्ता अपने राशन कार्ड का हस्तांतरण सुविधापूर्वक करते रहते हैं तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति, मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग से राशन कार्ड उधार मांगते हैं इस संदर्भ मे यह अपेक्षित है कि उस पर रोक लगायी जाय इसी प्रकार उपभोक्ता अपने राशन कार्ड मे वास्तविक सदस्यों से अधिक संख्या अंकित कराते है जिससे वास्तविक उपभोग की इकाई का ज्ञान नही हो पाता ।

– सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के अन्तर्गत जिस समय खाद्यान्नों की पूर्ति कम होती है तो इन दुकानों पर कार्ड वालों का दबाव बहुत बढ़ जाता है । और सामान देने में घण्टों लग जाते है किन्तु जब खुले बाजार में भी खाद्यान्न मिलते रहते है तो बहुत अधिक उपभोक्ता खुले बाजार से से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं और कभी-कभी तो राशन की दुकानों पर चीनी को छोड़कर और किसी वस्तु की बिक्री नही होती

है । इन दुकानों को अपना खर्च निकालना मुश्किल पड़ जाता है इसका कारण यह है कि राशन की दुकान चलाने के लिये कम से कम दो आदमियों की आवश्यकता होती है । एक आदमी लेखा-जोखा करता है और मूल्य लेता है और रजिस्ट्रों मे लिखता है दूसरा आदमी तौल नाप कर ग्राहकों को देने का काम करता है । इसके विपरीत छोटे गल्लो की दुकान एक आदमी चलाता है । क्योंकि उसे लेखो-जोखा रखने को आवश्यकता नहीं होती । इस प्रकार यदि माल कम बिकता है तो राशन को दुकान का खर्च भी नही निकलता और उनकी संख्या कम हो जाती है ।

– जब खुले बाजार में वस्तुयें प्राप्त होती है तो लोग खुले बाजार को ही पसन्द करते हैं, राशन की दुकान से नही खरीदना चाहते क्योंकि खुले बाजार में वस्तु की किस्म का चुनाव करने का अवसर प्राप्त है जो राशन की दुकान में नहीं है ।

4– सहकारिता की धीमी प्रगति

सरकार ने सहकारी विपणन के विकास पर बहुत अधिक महत्त्व दिया है किन्तु सहकारिता के विकास में सरकार द्वारा रचनात्मक भूमिका के अभाव के दुष्परिणाम स्वरूप आज भी शोषण, जमाखोरी जैसी प्रवृत्ति देखने को मिलती है । इसकी निम्नांकित समस्याएं है ।

– सदस्यों मे सहकारी विपणन समिति के प्रति वफादारी कम है। वे अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति सदैव इन समितियों के माध्यम से न खरीदते है और न बेचते हैं । जिस समय सदस्यों को समिति के माध्यम से लाभ होने

की संभावना होती है उसी समय ये समिति की सहायता लेते हैं ।

- सहकारिता की धीमी प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि इन समितियों को सरकारी सहायता पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती ।

- इन समितियों के पास इतना धन नही होता कि ये अपने स्वयं के आधुनिक तरीके के गोदाम बनवा सके । अतः यह किराये के मकानों को गोदाम के रूप में प्रयोग करती है । ऐसा करने से एक ओर जहां लाभ कम हो जाता है वही दूसरी ओर गोदाम आधुनिक न होने से पदार्थों को चूहों, आदि से काफी नुकसान होता है ।

- सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति उचित न होने के कारण यह समितियां प्रमाणीकरण व श्रेणीकरण करने वाले यन्त्रों को नही खरीद पाती है फलतः बाजार में इनको अपनी वस्तु का उचित मूल्य नही मिल पाता है ।

5- उपभोक्ता सहकारिता की असफलता

यद्यपि उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य बाजार मे मूल्य निर्धारक के रूप में कार्य करना तथा मूल्य वृद्धि को रोकना था लेकिन यह अपने लक्ष्य मे सफल नही हो सका है । इनका विश्वास आशातीत नही हुआ है । और न ही ये उपभोक्ताओं मे विश्वास ही उत्पन्न कर सके हैं । इसके महत्त्वपूर्ण कारण निम्नवत् हैं :-

- उपभोक्ता सहकारिता की असफलता का सबसे बड़ा कारण राज्य सरकारों की इसके प्रति उपेक्षा तथा उदासीनता है । भण्डारो को आपूर्तियां दी जाती है इससे भण्डारो के सदस्यों को कोई लाभ नही मिलता तथा इनमें उनका विश्वास भंग होता जाता है ।

- पर्यवेक्षण निरीक्षण तथा समय पर अंकेक्षण की कमी होने से भी इसकी प्रगति में बाधा पहुँची है । ऐसी कोई व्यवस्था नही है कि वह जांच की जा सके कि उचित लेखे रखे जा रहे है और सही मूल्य लिये जा रहे है । इससे पदाधिकारी नजायज लाभ उठाते है तथा चोरी आदि के कई मामले होते रहते हैं । इसके साथ ही मिलावट, कम तौल, मूल्यों मे अनियमितता, आदि के कारण उपभोक्ताओं का इसमें विश्वास नही रहा है ।

- उपभोक्ता भण्डार केवल कुछ सीमित वस्तुओ मे ही व्यवहार करते हैं । क्रियाशीलता के इस संकीर्ण क्षेत्र के कारण उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की संतुष्टि इन भण्डारों से नही कर पाते है । इससे वे इन भण्डारों के प्रति उदासीन रहते हैं ।

- सहयोग और समन्वय के अभाव के कारण उपभोक्ता सहकारिता का विकास सम्भव नही हो पाता है ।

सुझाव

लोक कल्याणकारी एवं समाजवादी सरकारें जनोत्थान, जनकल्याण की भावनाओं को ध्यान में रखकर आर्थिक क्रियाओं, में हस्तक्षेप करती है

जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था सुदृढ़ एवं सशक्त होती है । सरकार द्वारा विपणन क्रियाओं मे क्रियाओं में किया जाने वाला हस्तक्षेप एक महत्वपूर्ण यंत्र सिद्ध हो सकता है बशर्ते की इसके लिये आवश्यक है कि उपयुक्त दोषों का निवारण किया जाय और कठिनाइयों को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाय । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं :-

1- विपणन के समुचित विकास एवं उन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने के लिये सरकार को विपणन के क्षेत्र में एक प्रभावी आचार संहिता को बनाना चाहिए तथा इसके सफल कार्यान्वयन के लिये वे भी कार्यवाही किया जाना चाहिए जो बदलती परिस्थिति मे आवश्यक हों ।

2- विद्यमान सामाजिक परिवेश मे स्वार्थ की जड़े काफी गहरी हो गयी है उसको उखाड़ फेंकना नितांत आवश्यक है । इसके लिए देश के लोगो में देशभक्ति व नैतिकता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए ।

3- विपणन की क्रियाओं पर उचित नियन्त्रण के लिए केवल कानून बनाना ही महत्वपूर्ण नही है वरन कानून का क्रियान्वयन एवं प्रभावीकरण परम् आवश्यक है । कानून इस प्रकार का होना चाहिए जिससे जुल्म अत्याचार एवं अनैतिकता फैलाने वाले लोगों को सबक मिल सके और लोगो को इससे प्रेरणा प्राप्त हो सके।

4- सरकार देश के उत्पादन में जो विभिन्नता है उसे समाप्त करना होगा, इस सम्बन्ध मे यह आवश्यक है कि उसे कृषकों को बीज, खाद व सिंचाई की सुविधा सहायता प्राप्त मूल्यों पर करना होगा जिससे

उत्पादन मे विभिन्नता न हो, परन्तु इसके साथ ही साथ यह आवश्यक है कि देश के लोगों में सरकार के प्रति निष्ठा होगी तो वह निश्चय ही उत्पादन के कार्यों मे संलग्न होगा जिससे कि देश का उत्पादन बढ़ेगा ।

5- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विकास एवं विस्तार पर पर्याप्त ध्यान देना होगा । इस संदर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं ।

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली में समाज के निम्नतर स्तर की सुविधा की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देनी चाहिए । इसको सर्व प्रथम उन 240 अनुसूचित पिछड़े जिलों में अनुसंधान एवं विश्लेषण करना चाहिए जो हमारी कुल जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत है और इस प्रकार देश के पिछड़े भागों में भी इस प्रणाली को पहुँचना होगा ।

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत कुछ निश्चित वस्तुओं का ही वितरण किया जाता है । इस प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसमें समस्त दैनिक उपभोग की अधिकाधिक वस्तुओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

- शिक्षा के माध्यम से सार्वजनिक वितरण प्रणाली का ज्ञान कराया जाना चाहिए परन्तु इसके साथ ही साथ व्यवहारिक ज्ञान आवश्यक है । जैसे बढ़ती हुई जनसंख्या मे न्यायोचित वितरण व्यवस्था के लिए कौन कौन से महत्वपूर्ण कदम उठाये जाने चाहिए तथा इसका जनता पर क्या प्रभाव पड़ सकता है इन बातों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है ।

– राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर ऐसे संगठन की स्थापना की जाये जो सार्वजनिक वितरण प्रणाली से सम्बन्धित सूचनाओं को नियंत्रित एवं विधिवत रूप से एकत्रित कर उनका तत्काल विश्लेषण और उन पर अनुसंधान कर इस क्षेत्र के लिए नये-नये आयाम प्रस्तुत कर सके ।

– सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ताओं के आवश्यकता के अनुरूप वस्तुओं का वितरण किया जाय । उपभोक्ताओं को दी जाने वाली सेवाओं मे आवश्यक रूप से वृद्धि करें जिससे कि उपभोक्ता खुले बाजार से वस्तुओं को न खरीदें ।

6- वर्तमान व्यवसायिक कुरीतियों, भ्रांतियों एवं विषम प्रतिस्पर्धा को दूर करने के लिए सरकार को सहकारिता के विकास पर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है । इस संदर्भ मे निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं ।

– सरकार को चाहिए कि सहकारिता की भावना का विस्तार करने के लिए सहकारी विपणन को जो अभी तक स्वेच्छा पर आधारित है, अनिवार्य कर देना चाहिये । कुछ प्रगतिशील देशों मे कुछ क्षेत्रों में सहकारी विपणन कानून आवश्यक कर दिया है जिससे वहाँ प्रगति हुई है । वर्तमान में सहकारी विपणन को परीक्षण के आधार पर किसी एक क्षेत्र में आवश्यक कर दिया जाना चाहिए और जब क्षेत्र मे सफलता मिल जाए तब अन्य क्षेत्र में भी लागू कर दिया जाय ।

– सहकारिता की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सहकारी विपणन के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, केन्द्रीय, प्रान्तीय, व अखिल भारतीय)

में उचित सहयोग की आवश्यकता है । इसके लिए विभिन्न प्रकार के शोध व अनुसंधान इन समितियों व संगठनों में किये जाने चाहिए जिससे उनकी खरीद बिक्री स्टाक व ऋण आदि का अनुमान लगाया जा सके और बिक्री को बढ़ोत्तरी के लिए उचित प्रबन्ध किया जा सके ।

– सहकारी विपणन के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि इसके विचार एवं विकास के लिए पर्याप्त प्रचार किया जाना चाहिए जिससे जन साधारण उनकी कार्यविध के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सके ।

7– विपणन मे सरकार की रचनात्मक भूमिका लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार व राज्य सरकार के मध्य समन्वय हो दोषो एक दूसरे के विपरीत कार्य न करे जब दोनों स्तर के एजेन्सियों में सहयोग होगा तभी विपणन में व्याप्त बुराइयों को सरकार द्वारा समाप्त किया जा सकता है ।

8– उचित विज्ञापन के माध्यम से सरकार उपभोक्ताओं को विभिन्न वस्तुओं तथा उसके उपभोग के तरीकों की जानकारी दे । वस्तुओं के मूल्य किस्म, वजन, पैकिंग एवं पैकेजिंग के संदर्भ में उपभोक्ताओं को परिचित कराये जिससे कि वस्तुओं की प्राप्ति में उपभोक्ताओं का शोषण न किया जा सके ।

9– सरकार को स्थानीय स्तर पर प्रेषक समितियों की स्थापना करनी चाहिये जिससे उपभोक्ताओं के हितों को सुरक्षित रखा जा सके ।

इस समिति में उपभोक्ताओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए । जिससे उपभोक्ताओं मे जागरूकता लायी जा सके ।

10- सरकार का यह परम् कर्तव्य है कि वह व्यवसाय में संलग्न विभिन्न संगठनों एवं संस्थाओं के मध्य सामन्जस्य स्थापित करें । प्रत्येक संगठनों को मौका दिया जाना चाहिये जिससे वह अपनी कार्यकुशलता का सुन्दर प्रदर्शन कर सके । छोटे संगठनों को संरक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि बड़े उद्योगों और छोटे उद्योगों मे प्रतिस्पर्धा हो ।

11- विपणन की प्रत्येक सफलता उपभोक्ताओं को संपुष्टि प्रदान करके संभव है । वितरण व्यवस्था को चुस्त बनाने एवं बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप वस्तुओं के वितरण के लिए उचित मूल्य की दुकाने खोली गयी । लेकिन व्यवहार में इनको बहुत अधिक समस्यायें परिलक्षित होती गयीं । इस सन्दर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

सरकार को उचित मूल्य की दुकानों की संख्या में बृद्धि करनी होगी ताकि उपभोक्ताओं को वस्तुयें प्राप्त करने में असुविधा न हो अथवा उसे बहुत अधिक देर तक कतार में न खड़ा होना पड़े जिससे उसका कीमती समय व्यर्थ न हो सके ।

- सरकार को उचित मूल्य की दुकानदारो की आय में बृद्धि करना होगा जिससे वे अपने कार्यों को ठीक ढंग से कर सके तथा गलत कार्यों को करने के लिए उत्प्रेरित न हों ।

– सरकार को ग्रामीण क्षेत्र में अधिक से अधिक दुकान खोलनी चाहिए । जिससे ग्रामीण बेरोजगारी को कुछ हद तक कम किया जा सके तथा गाँव से शहरों की ओर होने वाले प्रवास कम किये जा सकें ।

– सरकार को दुकानदारों द्वारा राजनैतिक पार्टी को दिये जाने वाले चंदों पर रोक लगानी होगी जिससे कि इसके कार्य प्रणाली में राज नैतिक हस्तक्षेप बंद हो सके ।

–उचित मूल्य के दुकानदारों की आय को बढ़ाने के लिए सरकार को चाहिए कि दुकानदारों का कमीशन बिक्री के प्रतिशत के आधार पर कर दे तथा यह प्रतिशत सभी वस्तुओं में समान रूप से हो जिससे कि दुकानदारों की आय में वृद्धि हो सके ।

– बाजार मूल्य व उचित मूल्य की दुकानों की वस्तुओं का मूल्य सम होने की अवस्था में सरकार को किसी न किसी रूप में इन दुकानदारों को वित्तीय सहायता दी जानी चाहिये जिससे ये अपने परिवार का भरण पोषण कर सके ।

– सरकार को इन दुकानदारों को कुछ अनुदान भी देना चाहिये परन्तु अनुदान का माप सरकार को ही निश्चय करना होगा । सरकार को आवश्यकता पड़ने पर इन दुकानदारों को ऋण की सुविधा भी उत्पन्न करानी होगी, यह ऋण व्याज मुक्त या सस्ते व्याज दरों पर उपलब्ध कराना होगा और इसकी वापसी आसान किस्तों पर की जानी चाहिए ।

– उचित मूल्य की दुकानों का निरीक्षण कार्य हेतु पूर्ति पर्यवेक्षक के ऊपर के अधिकारी नियुक्त किये जायें जिससे कि पूर्ति पर्यवेक्षक दुकानों का उचित व भली प्रकार से निरीक्षण करें और दुकानों पर अनियमितता पाये जाने पर पूर्ति पर्यवेक्षक के ऊपर भी अनुशासन कार्यवाही की जाये ।

– निरीक्षण व्यवस्था को चुस्त व प्रभावी बनाना अत्यन्त ही आवश्यक है, इस कार्य हेतु उड़न दस्ते द्वारा आकस्मिक जाँच तथा मोहल्ला समितियां का निर्माण महत्वपूर्ण साबित होगा।

– उचित मूल्य की दुकानों पर उपलब्ध वस्तुओं को छोटे-छोटे वजन के पैकेटों में जिन पर भारतीय मानक संस्थान की मुहर लगी होनी चाहिए इससे वस्तुओं की किस्म में अपने आप वृद्धि हो जायेगी तथा दुकानदारों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण कम तौल के संदर्भ में न हो सकेगा।

12– भारतीय विपणन व्यवस्था में राज्य व्यापार निगम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । निगम ने विपणन में प्रत्येक क्षेत्रों में अपनी अलग से पहचान स्थापित किया है । किन्तु व्यवहार में निगम को वो वांछित सफलता नहीं मिल सकी जो कि अपेक्षित थी । इस संदर्भ मे निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं ।

– राज्य व्यापार निगम को चाहिये कि वो अपनी लागतों तथा व्ययों में कमी करें जिससे वस्तु के मूल्य में कमी हो सके ।

– अधिकारियों की नियुक्ति करते समय उनमें व्यापारिक, योग्यता का अंकन करना आवश्यक है जिससे वे वर्तमान प्रतिस्पर्धा मे निगम को सफलता पूर्वक संचालित कर सके ।

– देश के उद्योग एवं व्यापार से निगम का व्यापारिक सम्बन्ध बना रहना चाहिए ।

– राज्य व्यापार निगम के अन्तर्गत विभिन्न सहायक निगमों को अलग-अलग कार्य करने के स्थान पर इसके संभाग के रूप में कार्य करें ।

– निगम व्यापारिक सिद्वान्तों के अनुरूप कार्य करें जिससे यह जन कल्याण के साथ-साथ लाभ अर्जित करे तथा अपने कर्मचारियें को अधिक से अधिक संतुष्टि प्रदान करें ।

– निगम को यथार्थवादी व्यापारिक मूलनीति अपनानी चाहिए ।

13- देश में खाद्यान्नों की खरीद कार्य को व्यवस्थित करने एवं उनके वितरण कार्य को सुगम बनाने में भारतीय खाद्य निगम की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । इसके सफलता के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं ।

– भारतीय खाद्य निगम को चाहिये कि वह फसलों व तकनीकी के बारे में अनुसंधान करे तथा कृषकों को नवीनतम वैज्ञानिक विधियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करे ।

– किसानों द्वारा लिये जाने वाले ऋणों के संदर्भ मे खाद्य निगम को गारंटी देनी चाहिए ।

– भारतीय खाद्य निगम को चाहिये कि वह देश की आवश्यकता को ध्यान मे रख कर वफर स्टाक बनाये जिससे मूल्यों में स्थिरीकरण हो ।

14- सरकार को विपणन के पर्याप्त विकास के लिए यातायात के साधनों का समुचित विकास करना होगा । उचित मूल्यों पर यातायात के

श्रेष्ठ साधनों की व्यवस्था करनी चाहिये ।

15- सरकार को वैकल्पिक विपणन नीतियों और व्यवहारों के प्रभावों से किसानो, उपभोक्ताओं और विपणन एजेन्सियों को परिचित कराने के लिये उचित विस्तार गतिविधियां पूरी करनी चाहिए ।

16- भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में विपणन के विकास में आत्म-अनुशासन अधिक प्रभावी हो सकता है । इसी से सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है ।

17- सरकार का यह कर्तव्य है कि विपणन में सुधार करने के लिए नये नये तरीके खोजें और इसके लिए शोध करें ।

18- सरकार को बुद्धि वस्तुओं की सीधी कार्यवाही करना चाहिए । यह सरकार की विपणन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्यवाही कही जा सकती है ।

19- सरकार को विपणन पद्धति नीति को अधिक व्यवहारिक बनाने तथा विपणन के क्षेत्र में आवश्यक पांच महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं (प्रोडक्ट, प्राइस, प्रमोट, फिजिकल, डिस्ट्रीब्यूशन व पर्सनल रिलेशन) में सामंजस्य स्थापित करे जिनसे विपणन की क्रियाएं बिना विघ्न बाधाओं के संचालित की जा सके ।

20- विज्ञापनों एवं प्रचार के माध्यम से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की जानकारी उपभोक्ताओं को देनी चाहिए इसके साथ ही साथ वस्तुओं के समुचित उपयोग के लिए उसके प्रयोगों पर संचार माध्यमों से प्रकाश डालना चाहिए ।

21- विपणन क्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए उन व्यक्तियों या संस्थाओं पर जुर्माना लगाना चाहिए जो विपणन संहिताओं का पालन नहीं करती है ।

सरकार वर्तमान में विपणन के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक भूमिका अदा कर रही है यद्यपि आज भी विपणन की क्रियायें अनियंत्रित है तथापि इसके लिए हमारी सरकार काफी प्रयत्न कर रही है । यह निर्विवाद है कि हमारे देश में मुख्य समस्या राष्ट्रीय चरित्र के अभाव की है । जिस कारण व्यवसायी आत्म केन्द्रित होकर अपने हित का ही विचार करते हैं । आवश्यकता ऐसे वातावरण को उत्पन्न करने की है जिससे व्यवसायी एवं विपणनकर्ता देश और समाज हित का विचार करते हुए व्यवसाय करें । सरकार और कानून की भी विपणन से यही अपेक्षा है ।

संदर्भिका

संदर्भिका

1. अग्रवाल आर.सी. एवं कोठारी एन. एस. – विपणन प्रबन्ध, नवयुग साहित्य सदन, आगरा
2. उपाध्याय जी. शर्मा आर. एल. एवं सुधा जी एस – व्यवसाय समाज एवं सरकार, रमेश बुक डिपो, जयपुर 1988-89
3. कोटलर फिलिप – मार्केटिंग मैनेजमेण्ट, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया, नई दिल्ली
4. कुम्भट जे.आर. एवं अग्रवाल जी.सी. – विपणन प्रबन्ध, किताब महल, इलाहाबाद 1981
5. गुप्ता के.आर. – वर्किंगड आफ स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया, एस चांद एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 1970
6. गुप्ता एम. एल. – स्टेट ट्रेडिंग इन इण्डिया, साहित्य भवन आगरा
7. चटर्जी, आर. एन. – प्राइस कन्ट्रोल एण्ड राशनिंग इन इण्डिया, कलकत्ता, 1970
8. चौधरी बी.जी. – लॉ आफ मोनोपोली एण्ड रिसट्रेक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज इन इण्डिया, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया । प्रा. लिमिटेड नई दिल्ली 1930
9. जार्डर, ई. टी. – मार्केटिंग एण्ड पब्लिक पालसी सहाल
10. जैन, एस.सी. – विपणन प्रबन्ध, साहित्य भवन, आगरा 1989
11. जे.पी. कक्कड़ एवं शुक्ल – राज्य एवं व्यवसाय, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1988

12. ढोलकिया, एन. खुराना राकेश – पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम आक्सफोर्ड एण्ड आई.वी.एच. पब्लिशिंग कं., नई दिल्ली 1979

13. देसाई, एस. एस. एन – इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया

14. फिलिप एण्ड डंकन – मार्केटिंग प्रिंसपल एण्ड मैथड

15. बजाज, आर.के. एवं पोरवार बी.एल. – सरकार समाज एवं व्यवसाय, रिसर्च पब्लिकेशन इन सोसल साइंस, 1979

16. मेमोरिया, सी.बी. एवं जोशी आर.एल. – प्रिंसिपिल एण्ड प्रेक्टिस आफ मार्केटिंग इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद

17. मैसन एवं रथ – मार्केटिंग एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन

18. माथुर एस.जी. – कोआपरेटिव मार्केटिंग इन यू.पी.

19. सक्सेना, के.के. – इव्यूलशन आफ कोआपरेटिव बाट, सोम्या पब्लिकेशन, प्राइवेट लिमिटेड बम्बई 1974

20. शर्मा तुलसीराम एवं जैन सुभाष चन्द्र – बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन आगरा 1979

संदर्भिका

1. अधिनियम

- औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम - 1951
- अग्रिम प्रसंविदे नियमन अधिनियम 1952
- खाद्य मिलावट निवारण अधिनियम 1954
- आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955
- प्रतिभूति अनुबन्ध नियमन अधिनियम 1956
- कम्पनी अधिनियम 1956
- व्यापार एवं व्यापारिक चिन्हन अधिनियम- 1958
- एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक पद्धतियाँ अधिनियम 1969
- विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973
- पैकेज्ड वस्तु नियमन अधिनियम 1975
- बाट एवं मापमान अधिनियम 1976
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

2. पत्रिकायें एवं जर्नल

- इण्डियन जर्नल आफ मार्केटिंग एसोसियेटेड
- मैनेजमेण्ट कारपोरेशन नयी दिल्ली
- इकोनामिक सर्वे गवर्नमेंट आफ इण्डिया
- सहकारिता यू.पी. कोआपरेटिव यूनियन लखनऊ
- दि कामर्स जर्नल वाणिज्य प्रशासन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

- योजना पब्लिकेशन डिवीजन पटियाला, नयी दिल्ली
- कुरुक्षेत्र
- इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली

3. वार्षिक प्रतिवेदन
- भारतीय खाद्य निगम
- भारतीय राज्य व्यापार निगम
- उत्तर प्रदेश राज्य व्यापार निगम

4. समाचार पत्र
- एकोनामिक टाइम्स नयी दिल्ली
- नार्दन इण्डिया पत्रिका इलाहाबाद
- टाइम्स आफ इण्डिया, लखनऊ
- नवभारत टाइम्स लखनऊ
- अमृत प्रभात, इलाहाबाद
- दैनिक जागरण, वाराणसी